मेरे बचपनकी कहानी

मेरे बचपनकी कहानी

[श्रीमती विजयालक्ष्मी पण्डितकी पुत्री **श्रीमती नयनतारा सहगल** द्वारा रचित पुस्तक 'प्रिजन एण्ड चाकलेट केक' का अनुवाद]

अनुवादक

मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव

वाराणसी

ज्ञानमण्डल लिमिटेड

विषय सूची

प्रस्तावना

हम तीन बहिनें हैं—लेखा मुझसे बड़ी और रीता छोटी है। हमारा लड़कपन ऐसे समय बीता जब भारतके रंगमंचपर एक महत्त्वपूर्ण राजनीतिक नाटक खेला जा रहा था। हमने जो कुछ देखा-सुना उससे हमें स्तब्ध रह जाना पड़ता था और हमारा ख्याल है कि हमारी यह आश्चर्य-भावना सतत बनी रहेगी। हमारे जीवनपर उसका क्या असर पड़ा, उसीकी यह कथा है। इसलिए ऐसे बहुतसे लोगोंके लिए भी यह कथा मनोरंजक हो सकती है जिनका बचपन हमारी अपेक्षा दूसरी तरहका रहा हो।

यों तो हमारे माता-पिताने बराबर इस बातकी चेष्टा की कि हमारा बचपन भी वैसा ही सामान्य हो जैसा अन्य बच्चोंका, किन्तु यह उनके बसकी बात न थी। उन्होंने स्वेच्छासे इस नाटकमें हिस्सा लेना स्वीकार किया था इसलिए हम तीनों बहिनें बिलकुल उस तरह नहीं ही रह सकती थीं जिस तरह अन्य बच्चे रहते हैं। हमारा पालन-पोषण कुछ असाधारण-सी पृष्ठभूमिमें हुआ और शायद इसीके परिणामस्वरूप हमें ऐसे अवसर भी प्राप्त हुए जो अन्योंको नहीं हुए।

यदि घटनाओंका वर्णन मैंने मनमाने ढंगसे किया है तो इसका कारण सिर्फ यही है कि मुझे जो बातें जैसे-जैसे याद आती गयीं वैसे-वैसे ही मैं लिखती गयी। यह आवश्यक नहीं है कि वे उसी क्रमसे हुई हों जिस क्रमसे मैंने यहाँ उनकी चर्चा की है। यह काम लकड़ीके बने उन छोटे-छोटे टुकड़ोंको बटोरकर इस तरह जमा देनेके समान है जिनसे विभिन्न प्रकारके चित्र तैयार हो जाते हैं। आवश्यक हिस्सोंको यथास्थान बैठा देनेसे ही आकृति अपने आप तैयार हो जाती है। सुन्दर और उचित ढंगसे, जैसा कि वांछनीय है, आगे बढ़नेकी आवश्यकता नहीं पड़ती। बचपनके समयका वह वातावरण जो हमने देखा था, अब तेजीसे तिरोहित होता जा रहा है, क्योंकि गांधीजीका नाम अब इतिहासकी वस्तु रह गया है और इलाहाबादका हमारा वह

घर—आनन्दभवन अब परित्यक्त और वीरान-सा हो गया है। एक जमानेमें उसकी जो शान और ठसक थी, उसकी अब स्मृति ही शेष रह गयी है। मैंने विलुप्तसे होते जानेवाले उस अतीत गौरवका छोटा-सा चित्र पुनः आँखोंके सामने ला खड़ा करनेका प्रयत्न किया है।

मैं ऊपर कह चुकी हूँ कि कितनी ही बातोंमें हमारा जीवन अन्य बच्चोंके जीवनसे दूसरे ढंगका रहा है। ऐसी ही एक बात जो हमें अन्य बालक-बालिकाओंसे पृथक् करती है, हमारे माता-पिताका सन् १९४३ में हमें अमेरिका भेज देनेका निश्चय था। अन्तर हमारे अमेरिका भेज दिये जानेमें नहीं वरन् उसके प्रेरक कारणमें था। एक तो उस समयकी राजनीतिक स्थिति बड़ी गम्भीर और विद्याध्ययनके अननुकूल थी, दूसरे शिक्षा-प्राप्तिपर उस समय तरह-तरहके प्रतिबन्ध लगे हुए थे।

असहयोग आन्दोलनका दौर जो अगस्त १९४२ में शुरू हुआ था, पूरे जोरपर था और सारे देशमे हर उम्रके हजारों स्त्री-पुरुष जेलोंके भीतर बन्द थे। लेखा भी गिरफ्तार कर ली गयी थी और सात महीनेके कारावाससे उसकी महाविद्यालयकी पढ़ाईमें बाधा उपस्थित हो गयी थी। जब वह जेलसे छूटी तो हमारे नगरके पुलिस अधिकारियोंने उससे इस आशयका लिखित आश्वासन माँगा कि भविष्यमें वह किसी भी राजनीतिक कार्यावली या प्रदर्शनमें सम्मिलित न होगी। यदि वह भारतके अन्य किसी स्थानमें जाकर विद्याध्ययन करना चाहती तो यह अपेक्षित था कि वहाँ भी उससे इसी तरहकी प्रतिज्ञा करायी जाती। ऐसी ही प्रतिज्ञा मुझे भी करनी पड़ती, क्योंकि अब मैं भी कालेजकी पढ़ाई शुरू करनेवाली थी और लेखाकी तरह मैं भी एक "संदिग्ध" परिवारकी सदस्या थी। पहले लेखाको आक्सफोर्ड (इंगलैण्ड) भेजनेका विचार था किन्तु सन् १९४१ में जब उसे कालेज-में प्रवेश करना था, लन्दनपर भीषण हवाई हमले हो रहे थे और दो वर्ष बाद भी स्थिति वैसी ही भयावह थी। ऐसी स्थितिमें हमारा ध्यान अमेरिकाकी ओर गया, क्योंकि वह एक ऐसा देश था जिसपर युद्धका अपेक्षाकृत कम ही प्रभाव पड़ा था।

हमारे माता-पिता नहीं चाहते थे कि हमारा शिक्षाक्रम ऐसे समय भारतमें जारी रहे जब वह एक विशाल बन्दी-शिविर बना हुआ था।

उनकी इच्छा थी कि हमें जीवनमें पहली बार संकटसे मुक्त परिस्थितियोंमें काम करने, खेलने और जीनेका अवसर मिले, हमारे विकासके समय उन घटनाओंका अवांछनीय प्रभाव हमपर न पड़े जो उस समय हमारे देशमें हो रही थीं और इन सबसे अधिक उनकी इच्छा थी कि हमारा किशोर जीवन ऐसी स्थितिमें बीते जिसका स्मरण बादमें प्रसन्नताके साथ किया जा सके। घरपर रहनेसे यह सब सम्भव न होता।

मम्मी (माँ) और पापू (पिता) को जेल-जीवनमें जब बीच-बीचमें थोड़ी देरके लिए एक दूसरेसे भेंट-मुलाकात करनेकी अनुमति मिलती थी, तब वे हमारे भविष्यकी योजनापर विचार-विनिमय करते थे। दोनों एक ही बन्दी-गृह 'नैनी सेण्ट्रल प्रिजन' में कैद थे किन्तु उन्हें अलग-अलग बारिकोंमें रहना पड़ता था। उस वर्ष मार्चमें माताजी रुग्णताके कारण पैरोलपर छोड़ दी गयीं और उन्हें हमारी यात्राके लिए शीघ्रतापूर्वक थोड़ी सी तैयारी कर देनेका अवसर मिल गया।

जब हमारे प्रस्थान करनेका समय आया, तब भी पापू बन्दीगृहमें ही थे। अधिकारियोंने कृपाकर हमें उनसे आध घण्टे बातचीत करनेकी अनुमति प्रदान की, जिसमें शर्त यह थी कि मुलाकातके समय जेलके अधीक्षक (सुपरिन्टेण्डेण्ट) तथा अन्य अधिकारी भी उपस्थित रहेंगे।

आनन्दभवनसे नैनी सेण्ट्रल जेल काफी दूर पड़ता है। अप्रैलके मध्यमें जब बहुत गरमी पड़ रही थी, लेखा, रीता और मैं ताँगेमें बैठकर वहाँके लिए रवाना हुई। इस स्थानकी यात्रा हमने पहले भी कई बार की थी, कभी तो उन अमेरिकन मित्रोंसे मिलनेके लिए जो नैनीके जमुना मिशनमें रहते थे और कभी अपने परिवारके उन सदस्यों से भेंट करनेके लिए जो नैनी जेलमें कैद थे। एक बार फिर हम जमुना नदीके ऊपरका बेढंगा-सा बना लाल फुल पार करती हुई नैनी पहुँचीं और हमारा ताँगा बन्दीगृहकी ऊँची दीवारोंका चक्कर काटता हुआ, बाहरी फाटकोंसे होकर जेलके मुख्य प्रवेश-द्वारपर पहुँच गया।

मुश्किलसे दो महीने पहलेकी बात है जब लेखाके जेलसे मुक्त होने पर मैं उसे लानेके लिए गयी थी, प्रतीक्षा करते समय मैंने फाटकमें लगे लोहेके सीखचोंके उस पार, अधीक्षकके कमरेमें, अपने पिताको

देखा। एकाएक मैं उनके वहाँ, सीखचोंके पीछे, होनेके विरुद्ध बिगड़ उठी थी और हृदयमें पीड़ाका अनुभव करते हुए विवशतापूर्ण क्रोधमें बकने-चिल्लाने लगी थी। मेरी आवाज सुनकर पापूको फाटकपर आना पड़ा था और उन्होंने लोहेके छड़ोंके पीछेसे शान्तिपूर्वक मुझे समझाया था।

स्नेहपूर्वक झिड़कते हुए उन्होंने मुझसे कहा था कि "हमें इन लोगोंको मौका नहीं देना चाहिये कि वे हमें रोते-चिल्लाते देख लें, विशेषकर ऐसी स्थितिमें जब तुम इतने अच्छे कपड़े पहनकर आयी हो।" और उन्होने मेरी नयी रेशमी साड़ीकी तथा चमचमाते हुए चाँदीके नये ऐरनोंकी तारीफ की थी, जिन्हें मैं लेखाके गृहागमनकी खुशीमें पहनकर आयी थी। मैंने रोना-चिल्लाना बन्द कर दिया था और पापूकी तरफ देखकर उनके कथनके जवाबमें मुस्करानेकी चेष्टा की थी।

"पापू ये लोग आपको कबतक घर आने देंगे ? इतनी अधिक चीजें हैं जिनके सम्बन्धमें मुझे आपसे बातें करनी हैं।"

पापूने अपना बड़ा खादीका रूमाल मेरे हाथमें थमा दिया। मैंने उससे अपनी नाक पोंछ ली जिससे वह और भी सुर्ख हो गयी।

"हाँ, हाँ, जब मैं आऊँगा तब हम लोग हर एक चीजके सम्बन्धमें अवश्य बातचीत करेंगे"—उन्होंने मुझसे प्रतिज्ञा की थी और जब उन्होंने देखा कि रक्षक सिपाही उन्हें बारिकतक वापस ले जानेकी प्रतीक्षा कर रहा है, तब वे मुझे वहीं रूमाल हाथमें लिये खड़ी छोड़ कर चले गये थे।

अब एक बार फिर हम लोग जेलके उसी फाटकपर पहुँचीं। इस बार हम उनसे बिदा माँगने गयी थीं और मैंने देखा कि मुझे जो बहुत-सी बातें उनसे कहनी थीं, वे सब बिना कही ही रह जायँगी।

अधीक्षकके दफ्तरका दरवाजा कुछ नीचा था, अतः पापू जब हम लोगोंसे मिलने आये तो उन्हें कुछ झुकना पड़ा था। उनकी ऊँचाई करीब छः फुट थी और चेहरेका रंग गेहुँआँ था—यह गेहुँआँपन वैसा ही था जैसा उन लोगोंके बदनका होता है जो घरके बाहरका जीवन अधिक पसन्द करते हैं। उनके घने बाल, कड़े, घुँघराले और काले थे,

जिनमें शायद ही एकाध बाल सफेद देख पड़ता हो। सदाकी तरह ही वे सफेद खद्दरका कुरता और पैजामा पहने हुए थे और उनके पैरोंमें चमड़ेकी लाल रंगकी चप्पलें पड़ी हुई थीं। यद्यपि उनकी चिन्तनशील आँखें और संवेदनशील हाथ किसी विद्वान् एवं विचारवान् व्यक्तिके जैसे थे, फिर भी उनकी ठुड्डी एक दृढ़ संकल्पवाले और उग्र स्वभावके व्यक्तिके समान थी। एक बार इसी जेलमें उन्होंने एक उद्दण्ड रक्षक सिपाहीको बड़े जोरसे डाँटा था, क्योंकि उसने मेरी मातामहीको अपमानित करनेका प्रयत्न किया था जब वे पापूसे मिलने गयी थीं। इस व्यवहारके कारण पापूको तनहाई कैदकी सजा भोगनी पड़ी थी।

मेरे लिए तो वे सबसे अधिक रूपवान्, सबसे अधिक प्रेय, दयालु एवं समझदार व्यक्ति थे जिन्हें मैं जानती थी। वे ही ऐसे मानव थे जो मेरे हृदयके सबसे निकट थे और जिनके विचारोंकी मैं सबसे ज्यादा कद्र करती थी। बचपनसे ही मैं उनकी ओर अनिवर्चनीय निकटताकी भावनाका अनुभव करती थी, मानो किसी न किसी तरह मेरा समस्त सुख-दुःख उनके साथ दृढ़तासे सम्बद्ध हो।

पापू उस अँधेरेसे छोटे कमरेमें दाखिल हुए, जिसमें अधीक्षककी मेज़ और उस बेंचके सिवा, जिसपर हम लोग बैठी थीं, और कोई सामान न था। मैंने छलछलाते हुए आँसू जबरन् रोक लिये। विदाईके इस अवसरको हम लोग उतना आह्लादपूर्ण रखना चाहती थीं जितना हमारे लिए सम्भव था। किन्तु हमारे लिए यह शंका करना कि वह कहीं इसके विपरीत न हो जाय, अनावश्यक था, क्योंकि मुलाकातके उस अवसरपर वे बराबर हँसते रहे और अपने हमेशाके कौतुकप्रिय ढंगसे हम लोगोंको चिढ़ाते रहे। द्वारपर खड़े प्रहरीको तथा अधीक्षकको भुलाकर जो हमारे सामनेकी डेस्कपर अपने काममें मशगूल था, हमलोग शीघ्र ही बिलकुल निश्चिन्त और बेतकल्लुफ हो गये।

एकाएक पापू अधीक्षककी तरफ मुखातिब होकर बोल उठे—मिस्टर गार्डिनर, आपको कोई आपत्ति तो न होगी यदि मेरी लड़कियाँ और मैं थोड़ा-सा गाना गा लें ?

अधीक्षक एक खुश-मिजाज ऐंग्लो-इंडियन था। उसने हमारी

तरफ देखा और पापूकी इस मामूली-सी प्रार्थनापर मुस्कुराते हुए बोला—जी नहीं, मुझे कोई भी आपत्ति नहीं।

हम लोगोंने गान चुन लिया और लय साधनेका प्रयत्न किया किन्तु ज्यों ही हमने गाना शुरू करनेका उपक्रम किया त्यों ही कमरेके बाहर आँगनमें टँगा जेलका घण्टा टनटनाने लगा। हमारे प्रयत्नमें बाधा डालनेकी यह चेष्टा देखकर हम लोग ठहाका मारकर हँस पड़े।

पापूने मानो चुनौती स्वीकार करते हुए कहा—"अच्छा आओ, हम लोग देखें कि कौन अधिक शोर करता है—ब्रिटिश जेलका यह बेहूदा घण्टा या भारतीय राजबन्दीका परिवार ?" आखिर जीत बन्दीके परिवारकी ही हुई, क्योंकि अगले चन्द मिनटोंतक हम लोग बिना किसी रुकावटके बराबर गाना गाते रहे और पापूने हमारी लकड़ीकी बेञ्चपर अपने अभ्यस्त हाथोंसे ताल देते हुए हमारा साथ दिया। हमारा सहगान (कोरस) बड़ा शानदार हुआ और अधीक्षकके लिए अपने कामपर एकाग्रचित्त होना मुश्किल हो गया।

गान समाप्त होने पर पापूने हमसे कहा—"तो फिर तुम दोनों अमेरिका जा रही हो ? ठीक तो है।"

"एक ही कठिनाई है और वह यह कि कोई भी हमारी इस यात्राका अनुमोदन नहीं करता"—लेखाने कुछ चिन्तित भावसे कहा।

"इसका कारण उनका चिन्तित होना ही हो सकता है। जो हो, उसके सम्बन्धमें परेशान होनेकी आवश्यकता नहीं"—पापूने उसे आश्वासन दिया और कहा, "मुख्य बात यह है कि तुम्हें जो उचित जान पड़े, वही करो और इसे करते समय अनोखे आनन्दका अनुभव करो। तुम देखती हो कि मुझे और तुम्हारी ममीको तो जेलमें ही रहना है, इसलिए हम लोगोंकी भी खुशीके हिस्सेका उपभोग तुम्हें ही करना चाहिये।" फिर उन्होंने हँसते हुए कहा "बन पड़े तो फिफ्थ एवेन्यूका समस्त क्षेत्र खरीद लेना। परिवारकी सम्पत्ति आखिर और किस दिनके लिए है ?"

हमारे माता-पिताने एक बार भी हम लोगोंपर अपना उपदेश लादनेकी चेष्टा नहीं की थी। हमें अपना निर्णय स्वयं ही करना पड़ता था और अपनी विवेक-बुद्धिसे काम लेना पड़ता था। इस अवसरपर भी,

जब हम भारतसे प्रयाण करनेवाली थीं—पापूने हमें कोई नसीहत नहीं दी, केवल इतना ही कहा कि हमें अपना नया जीवन आनन्दपूर्वक बिताना चाहिये।

अपने संस्मरण सुनाते हुए उन्होंने कहा—"जब मैं युवक विद्यार्थीकी तरह पहले पहल यूरोप जा रहा था, पिताजीने मुझसे इतना ही कहा—"मैं तुमसे यह तो न कहूँगा कि तुम सिगरेट न पीना क्योंकि मैं जानता हूँ कि तुम बिना पिये रह नहीं सकते किन्तु तुम्हें चाहिये कि तुम सर्वोत्तम तमाखूका प्रयोग करो।" बस इतनी ही सलाह उन्होंने मुझे दी। उसी तरह मैं भी केवल इतना कह सकता हूँ कि तुम्हारा वक्त अच्छीसे अच्छी तरह बीते, मात्र इसीका ख्याल तुम्हें रखना चाहिये।"

हमारी मुलाकातका समय हम जितना चाहती थीं उससे कहीं जल्दी समाप्त हो गया और अधीक्षकने अनिच्छापूर्वक हमें स्मरण दिलाया कि निर्धारित आधे घंटेका समय कभीका बीत चुका है। पापू उठ खड़े हुए और उन्होंने स्नेहमय चुम्बन लेते हुए हमें बिदा किया।

उनको वहाँ उस स्थितिमें छोड़कर जाना असह्य था क्योंकि उनमें जो आश्चर्यजनक शक्ति, असाधारण प्रज्ञा और सुचारु व्यक्तित्व था, वह सब जेलके सीखचोंके पीछे क्षीण होता जा रहा था। साल ही भरके बाद उनकी मृत्युका समाचार हमें अमेरिकामें मिला। जेलके भीतर वे सख्त बीमार हो गये थे और उन्हें स्थिति खराब होनेके इतने पहले रिहाई नहीं मिल सकी कि किसी भी तरहके इलाजसे उन्हें लाभ पहुँचता।

लेखा और मैंने मई १९४३ में प्रयाण किया। उस समय रीता स्कूलमें पढ़ रही थी। वह और मसी १९४४ के अन्तमें हमारे पास अमेरिका पहुँचीं।

बहुतसे बच्चोंको सब अच्छी-अच्छी चीजें अपने माता-पिताओंसे ही प्राप्त होती हैं और इसके लिए बच्चे उनके प्रति कृतज्ञ हों, यह उचित ही है किन्तु मुझे तो ऐसा लगता रहा है कि मेरे माता-पिता इससे कुछ और अधिकके पात्र रहे हैं। वे ऐसे पितृजन रहे हैं जिनकी मानो परीक्षा ली जाती रही हो, इस बातकी परीक्षा कि अपने कार्य, लक्ष्य और देशकी विकट स्थितिके बावजूद वे हम लोगोंके लिए उन सब बातों-

की व्यवस्था कर सकते थे या नहीं जिनकी बालक-बालिकाओंको सामान्यतया आवश्यकता होती है। हम निश्चयपूर्वक कह सकती हैं कि उन्होंने हमारे लिए सब तरहका प्रबन्ध किया। अपने विस्मयपूर्ण बचपनके लिए हम उन्हींके ऋणी हैं। वे प्रेम और बुद्धिके किस चमत्कारकी सहायतासे, परिवारकी एकता अक्षुण्ण बनाये रख सके, जिससे हमारे वंचित हो जाने की बहुत सम्भावना थी। अमेरिकामें हम कई वर्षतक आनन्दपूर्वक रह सकी, इसका भी श्रेय उन्हें ही है। बड़े साहस और सूक्ष्म बुद्धिसे काम लेकर उन्होंने हमें युद्धकालमें, जब समुद्र-यात्रा करना खतरनाक था, एक सैनिक जहाज द्वारा देशके बाहर जाने दिया। उन्होंने हमें जो शिक्षा-दीक्षा दी थी उसका उन्हें भरोसा था और वे नये लोगों तथा अपरिचित स्थानों में हमारे अकेले जानेपर भी हमपर विश्वास कर सकते थे। यदि आनेवाले वर्षोमें हमें कोई उल्लेखनीय सफलता प्राप्त हो जाय तो इसका श्रेय हमारे माता-पिता-को ही दिया जायगा। इसलिए उन्हींके पुण्य चरणोंमें,

प्रेम और श्रद्धा-
के साथ।
मेरी यह कृति,
समर्पित है।

पहला अध्याय

अमेरिकाकी राहमें

कुछ चीजें ऐसी हैं जो मेरे लिए हमेशा रहस्य ही बनी रहेंगी। उनमेंसे एक यह सतत चक्करमें डालनेवाला प्रश्न है—मम्मी और पापूको सन् १९४३ में हमें अमेरिका भेजनेका साहस कैसे हुआ ? बहुतसे लोग युद्धके पूर्व विदेशोंकी यात्रा कर चुके थे और युद्धके बाद भी बहुतोंने यही किया किन्तु हमारी तरह और हमारी उम्रमें बहुत ही कम लोगोंने किसी शान्तिपूर्ण देशसे बाहरकी यात्रा एक सैनिक यान द्वारा उस समय की होगी, जब युद्ध अपनी चरम सीमापर था। तबसे मैं काफी बड़ी हो गयी हूँ, मेरा विवाह हो चुका है और मेरे अपने बच्चे भी हैं, किन्तु ज्यों-ज्यों मैं बड़ी होती जाती हूँ, त्यों-त्यों मैं उक्त प्रश्नका उत्तर देनेमें अधिकाधिक असमर्थ होती जा रही हूँ। मैं निश्चयपूर्वक कह सकती हूँ कि मैं ऐसी परिस्थितियोंमें कभी भी अपने बच्चोंको इतने विश्वासके साथ और इतनी निर्भीकतासे बाहर नहीं भेज सकती थी। शायद इसका कारण यह हो कि साहस एवं अनुशासनका वैसा प्रशिक्षण मुझे नहीं मिल सका जैसा मेरे माता-पिताको मिला था। जो हो, हम लोग बम्बई बन्दरगाहमें पहुँचकर जहाजमें सवार हो गयीं और यात्राका प्रारम्भ होनेकी प्रतीक्षा करने लगीं।

हमारी मौसी, मम्मीकी बहिन कृष्णा हठीसिंह, उस समय बम्बईमें रहती थीं। उन्होंने शीघ्रतापूर्वक बाजारसे आवश्यक चीजें खरीदवा दीं और उन सब बातोंकी व्यवस्था करा दी जो युद्धकालीन यात्राके कारण जरूरी थीं। वे फूलोंकी मालाएँ लेकर घाटतक हमें पहुँचाने गयी थीं, हमारे माथेपर उन्होंने रोरीका टीका लगाया था और शुभ शकुनके रूपमें हमारे हाथमें एक-एक नारियल तथा छोटा सा कामदार डब्बा थमा दिया था जिसके भीतर एक मुट्ठी भारतकी मिट्टी रखी हुई थी जिससे हम लोग मातृभूमिकी यादमें दुःखी न हों। वे हमारी यात्राके सम्बन्धमें

स्पष्टतः आशंकित थीं, यद्यहि उन्होंने अपना भय छिपानेकी भरपूर चेष्टा की और अपनी मनोरंजक प्रथम विदेश-यात्राकी अनेक कहानियाँ हमें सुनाती रहीं।

उन्होंने हमें बतलाया कि "स्मरण रखनेकी चीज यह है कि असहाय-सी दीख पड़ती हुई भी तुम्हें अपनी कार्यक्षमता और योग्यता बनाये रखना चाहिये। तब सब लोग तुम्हारी सहायता करनेको तैयार हो जाते हैं और यदि वे सहायता न भी दें तो तुम खुद अपनी फिक्र आप कर सकती हो।"

हमने बादमें महसूस किया कि यह बुद्धिमानीकी सलाह थी, यद्यपि लेखाकी शिकायत थी कि उससे सब जगह काम नहीं चल सकता। यतः मैं हमेशा असहाय-सी देख पड़ती थी, इसलिए उसे बाध्य होकर अपने आपको योग्य और कार्यक्षम दिखलाना पड़ता था।

हम लोग यद्यपि निर्धारित तिथिको ही जहाजपर सवार हो गयी थीं, किन्तु जहाज कई दिनों बादतक रवाना नहीं हुआ, क्योंकि उन दिनों जहाजोंके आगमन और प्रस्थानकी तिथियाँ प्रकट नहीं की जाती थीं। हमें यह भी नहीं बताया गया था कि हमें किस मार्गसे यात्रा करनी होगी और कहाँ उतरना पड़ेगा। यात्रा सम्बन्धी प्रत्येक बात गुप्त रखी जा रही थी। जहाजके कार्यालयके कर्मचारीने नाटकीय ढंग-से चेतावनी देते हुए हमसे कहा था—"असावधानीसे उच्चरित एक शब्द भी जहाजोंके डुबा दिये जानेका कारण बन सकता है।" इसके सिवा हमारे चारों तरफ, जहाजके ऊपर भी, बड़े-बड़े विज्ञापन-पत्रक लगा दिये गये थे जिनमें स्पष्ट रूपसे बतलाया गया था कि दीवारों-के भी कान होते हैं।

हमें केवल इतनी ही बात मालूम थी कि हम लोगोंको मिलाकर जहाजपर कुल ५० नियमित यात्री थे और पोलैण्डके ऐसे ७०० शरणार्थी भी थे जो रूस होकर भारत जा पहुँचे थे। ये उसी जहाजसे मैक्सिको जा रहे थे। इनके सिवा जहाजमें बहुतसे सैनिक भी थे। हमें यह भी विदित हुआ कि यह जहाज प्रसिद्ध और सुन्दर 'काण्टे' नामक यात्री-यानोंमेंसे एक था। अमेरिकन नौसेनाने उसे बदलकर सैनिक पोतका रूप दे दिया था और इसके बाद उसकी पुरानी सूरत-शकलका कोई

चिह्न भी बाकी नहीं बचा। युद्धकालीन आवश्यकताके अनुरूप वह कान्तिविहीन मटमैलेसे रंगमें रँग दिया गया था और पहले जो आराम-देह, बढ़िया कुशादा कमरे रहे होंगे, उनमें अब सोने योग्य बेञ्चोंकी भरमार कर दी गयी थी। हमें बादमें पता चला कि हमें जगानेके लिए "रिवीली" (बिगुल) की आवाजका प्रयोग किया जायगा और भोजन करनेका समय होनेपर हमें "चाउ" शब्द (एक तरहके भोजन) के संक्षिप्त एवं अनोखे उद्घोष द्वारा इसकी सूचना दी जायगी। सभी व्यावहारिक दृष्टियोंसे हम मानो अमेरिकन जहाजी सेनामें सम्मिलित हो गये हों।

जहाजमें मन-बहलावके लिए और थकावट दूर करनेके लिए कोई सहूलियत नहीं दी गयी थी। यान-मंचपर टेनिस खेलनेका छोटासा स्थान भी न था, तैरने, नाचने और सिनेमा देखनेकी भी कोई जगह न थी और न समुद्र-यात्राकी कोई अन्य सुविधा ही प्रदान की गयी थी। हमारे साथ यात्रा करनेवाले उदासमुख यात्रियोंके कथनानुसार सारी यात्रामें उबा देनेवाली एकतानता, उदासी और मतलीके सिवा किसी अच्छी, सुखद अनुभूतिकी आशा नहीं की जा सकती थी। और इसमें सन्देह नहीं कि इन सबके ऊपर शत्रुकी पनडुब्बियों द्वारा आक्रमण होनेकी सम्भावना तो निरन्तर थी ही, जैसा कि जहाजके कप्तानने हँसते-हँसते हमें पहले ही बतला दिया।

इन सब चेतावनियोंके सम्बन्धमें लेखाको और मुझे कोई फिकर ही न थी। जहाजमें बैठकर हमने पहले कभी यात्रा की ही न थी, इस-लिए आराम और सुविधाओंका अभाव हमें कुछ मालूम ही नहीं पड़ रहा था। हमारा काफी दिलबहलाव तो इतनेमें ही हो जाता था कि हम घेरेमें लगी हुई छड़ोंपर झुककर समुद्रकी सतह देख सकती थीं, चेहरेपर गिरनेवाली नमकीन फुहारोंकी प्रतीति हमें होती थी और हम समुद्रके बदलते हुए दृश्यका अवलोकन कर सकतीं तथा साथके अन्य यात्रियोंसे बातचीत कर सकती थीं। जहाँतक डुबकनियोंके खतरेका प्रश्न था, उससे तो हमारी प्रथम जलयात्राके कुतूहल एवं आह्लादमें ही वृद्धि होती थी। युद्धकी बातें हमने केवल पुस्तकों और समाचारपत्रोंमें ही पढ़ी थीं, इसलिए उसके सम्बन्धमें भयकी भावना

कैसी होती है, इसका हमें ज्ञान ही न था। हमने बहुत पहलेसे ही किसी भी स्थितिमें रहकर अधिकसे अधिक आनन्द प्राप्त करनेकी आदत डाल ली थी, इसलिए ऐसी कोई घटना घटित होनेकी सम्भावना है, इस विचारसे ही हमारे मनमें एक तरहकी गुदगुदी सी उत्पन्न हो जाती थी।

जहाजपर जब सब यात्री सवार हो चुके, तब कप्तानने एक सभा की जिसमें उसने स्फूर्तिमय ढंगसे हम लोगोंको सूचित किया कि जबतक यात्रा समाप्त नहीं हो जाती, तबतक हमें अपने आपको अमेरिकन नौ सेनाकी अधिकार-सीमाके अन्तर्गत समझना चाहिये।

"आप लोगोंको मेरा हुक्म मानना होगा", उसने संक्षेपमें कहा, "मुझे यह अधिकार है कि स्वविवेकके अनुसार मैं आपको जहाजसे नीचे उतार दूँ और प्रत्येक मामलेमें अपनी निर्णायक बुद्धिसे काम लूँ।"

यह सुनकर लेखा और मैं एक दूसरीकी तरफ देखकर मुसकरा पड़ीं। यह तो अच्छी आदेश-नियंत्रित खतरेकी यात्रा थी जिसमें युद्ध-कालीन नाटकके सभी लक्षण विद्यमान थे! इसके बाद कप्तानने हमें बतलाया कि जीवन-रक्षक-पेटी (लाइफ बेल्ट) कैसे पहननी चाहिये और किस तरह उसका प्रयोग करना चाहिये। उसने यह भी कहा कि पेटी या तो हमेशा पहने रहना चाहिये या उसे हमेशा अपने साथ रखना चाहिये। मेरे लिए यह बड़ी जहमतका काम था, क्योंकि मेरी रक्षा-पेटी कमरमें ठिकानेसे ठहर ही नहीं सकती थी। मुझे व्यर्थके बोझ-की तरह उसे एक कंधेसे लटकाये रखना पड़ता था। फिर भी मैंने यह सोचकर सन्तोषकी साँस ली कि यह तरीका इससे बेहतर ही है कि मैं उसे एक बोझीले सामानकी तरह कमरपर लादे-लादे फिरा करूँ।

यात्रियोंके केवल दो ही वर्ग रखे गये थे—अफसर और सैनिक। पोलिश शरणार्थी सैनिक श्रेणीमें थे। वे निचले भागमें यात्रा कर रहे थे और उन्हें एक दूसरीसे सटाकर रखी गयी शिविर-शय्याओंपर सोना पड़ता था। अन्य सब यात्री अफसरोंकी श्रेणीमें रखे गये थे। वे ऊपरी मंजिलमें पृथक्-पृथक् कोठरियोंमें रहते थे। भोजन करनेका स्थान सब लोगोंका एक ही था और हम लोग स्वच्छन्दतापूर्वक एक दूसरेसे मिला करते थे।

सभाकी कारखाई समाप्त हो जानेके बाद हम दोनों बहिनें अपनी कोठरीमें पहुँचीं तो हमें मालूम हुआ कि वहाँ हमें दो और प्रौढ़ वयस्क पादरी महिलाओंके साथ रहना होगा जो 'फरलो' छुट्टी पर स्वदेश जा रही थीं। यदि वह केवल दो आदमियोंके लायक ही बनायी गयी छोटी कोठरी न होती तो उनके साथ रहनेमें हमें कोई दिक्कत न होती। उसमें चार व्यक्तियों के सोनेकी उन बेञ्चोंके लिए भी जगह न थी जो जबरन उसमें ठूँस दी गयी थीं—दो और महिलाओंका ठहराया जा सकना तो दूरकी बात थी। बादमें हमें अनुभव हुआ कि उसमें एक साथ दो महिलाओंसे अधिकके लिए कपड़े पहनने या उतार सकनेकी गुंजाइश न थी, जबतक कि वे अपने बिस्तरोंपर ही ऐसा करनेका प्रयत्न न करें, किन्तु ऐसा करनेके लिए बहुत झुकना पड़ता था जिससे तकलीफ होती थी। इसलिए हममेंसे दो जब अपने कपड़े पहनतीं, तब अन्य दोको बाहर ठहरना पड़ता था। स्नानघर इस कोठरीसे भी बहुत छोटा था और पानी भी मोरचेके रंगका पीला-पीला-सा था।

भय उत्पन्न करनेवाली इतनी अधिक निकटताकी स्थितिमें समुद्र-यात्राके अद्भुत अनुभवोंकी उत्कंठा क्षीण होती गयी और हम अपनी सहयात्रिणियोंको परस्पर सन्देहकी दृष्टिसे देखने लगीं। फिर एक दिन लेखाने डब्लू० जे० टर्नरकी कविताके अनुकरणपर साथ यात्रा करनेवाली उन प्रौढ़ महिलाओंको कोटोपैक्सी तथा चिम्बोरैजोके नामसे पुकारनेका निश्चय किया और तब स्वभावतः हमारी झिझक भी दूर होने लगी। कोटोपैक्सी मेरी भलाईमें मातृवत् अभिरुचि लेने लगी और मुझसे आग्रह करने लगी कि रविवारकी ईसाई प्रार्थनामें मैं भी उसके साथ सम्मिलित हुआ करूँ। वह मेरे प्रति इतनी दयालु थी और मेरा इतना ख्याल रखती थी कि मैं इनकार न कर सकी, इसलिए लेखा जब जिन रमी खेलती * या जासूसी उपन्यास पढ़नेमें समय बिताती, तब मैं (प्रभु यीशुके) भजन गाती या अपनी आत्माके उद्धारके लिए सामूहिक प्रार्थनामें शामिल हो जाती। हम लोगोंका साथ देनेके लिए लेखासे कभी आग्रह नहीं किया गया। न जाने कैसे

* ताशका एक खेल जो अकेले भी खेला जा सकता है।

मैं सर्वदा ही धार्मिक प्रवृत्तिकी मान ली जाती हूँ और लोग समझने लगते हैं कि मैं सद्विचारों और ऊँचे लक्ष्योंवाली महिला हूँ। लेखाका इससे खूब मनोरंजन होता था, क्योंकि वह मुझे ज्यादा अच्छी तरह जानती थी और इतवारके सबेरेकी मेरी कार्यावलीको श्रद्धा और भक्तिसे रहित बाह्याडम्बर ही समझती थी।

शुरू-शुरूमें जहाजके चलनेकी स्थितिका अभ्यास न होनेके कारण मुझे चक्कर आने लगते थे और तबीयत खराब-सी होने लगती थी। हमारी कोठरीमें जो छोटा सा झरोखा था, उसके शीशेपर काला-काला, ऊँची लहरोंवाला समुद्र उछलता-कूदता-सा देख पड़ता था, और मैं जहाजके हिलने-डुलनेसे अपनेको रोकनेमें असमर्थ होकर बेञ्चपर एक तरफसे दूसरी तरफ लुढ़क पड़ती थी। एक रातको तो मैं बेञ्चसे लुढ़क कर नीचे फर्शपर ही गिर पड़ी जिससे मुझे बड़ी लज्जा मालूम हुई। लेखाने देखा तो वह अपनी हँसी न रोक सकी—उसे बेहद खुशी हुई। गनीमत कहिये कि कोटोपैक्सी तथा चिम्बोरैजो, दोनों ही उस समय गहरी नींदमें सोयी हुई थीं। मांसल देहकी होनेके कारण वे अपनी-अपनी बेञ्चोंपर स्थिर रूपसे चिपकी हुई थीं। हवाकी कमी होनेसे कोठरीके भीतर बन्द रहनेकी बदबू-सी आने लगती थी किन्तु स्वच्छ वायु पानेके लिए यदि मैं बाहर डेकपर आ जाती तो लहरें मारता हुआ समुद्र स्पष्ट रूपसे मेरे सामने आकर मेरा उपहास करता-सा जान पड़ता। फिर भी जब मैं डेकपर चली ही जाती थी तो मुझे पूरी शक्तिसे आत्म-नियन्त्रण करना पड़ता था और तब मुझे समुद्रका चिन्तन एक स्वच्छन्द दैत्यके बजाय, जैसा कि वह देख पड़ता था, काव्यकी भाषामें करना पड़ता था।

लेखाने मुझसे कहा "देखो बहिन, तुम मतली आदिके फसादसे बची रहना। एक बार यह शिकायत यदि शुरू हो गयी तो फिर तमाम यात्रा भर यह बनी रहेगी और अभी हमें बहुत दूर जाना है। फिर, यह तो बहुत कुछ अपनी इच्छा-शक्तिपर निर्भर है। मेरी तरफ देखो, मुझे तो कोई परेशानी नहीं है।"

उसकी तरफ देख लेनेसे ही कोई तसल्ली नहीं हो जाती थी। बड़े कमजोर हृदयसे मैं लहरोंका उद्दण्डतापूर्ण नृत्य देखती। सनकमें

आकर वे अधिकसे अधिकतर ऊँचाईतक उठती जातीं और फिर गर्जन करती हुई ऐसी तीव्र गतिसे समुद्रपर गिर पड़तीं जिससे सारा जहाज हिल उठता और मुझे चकरा कर रेलिंग पकड़ लेना पड़ता था।

मैंने धीमी आवाजमें लेखाको जवाब दिया, "समुद्र जिस तरह उछल-कूद रहा है, उससे और मेरी इच्छा-शक्तिसे कोई विशेष सम्बन्ध नहीं जान पड़ता। इसके सिवा, मेरी अपनी कोई इच्छा-शक्ति भी तो नहीं है।"

"क्या वाहियात बक रही हो"—लेखाने घृणा सी प्रकट करते हुए कहा।

फिर भी मेरा जी नहीं मतला रहा था। वह मुझे इसका मौका ही नहीं लेने देती थी। इससे स्पष्ट हो जाता है कि इच्छा-शक्तिमें, भले ही वह दूसरेकी क्यों न हो, मनुष्यको प्रभावित करनेकी कितनी क्षमता होती है।

जब मुझे यात्रामें आनन्दानुभूति होने लगी, तब मुझे भोजन भी अच्छा लगने लगा। हम लोग अलूमीनियमकी बड़ी-बड़ी रकाबियोंमें, जिनमें अलग-अलग खाने बने रहते थे, जलसेनाके आदमियोंकी ही तरह भोजन करते थे। हम लोगोंको भोजनके लिए, जो हर आदमीको अलग-अलग दिया जाता था, कतार बाँधनी पड़ती थी। चीनी मिट्टीके मोटे सफेद प्यालोंमें हम जो गाढ़ी अमेरिकन काफी पीते थे, उसका स्वाद बड़ा आश्चर्यजनक था। इसके सिवा हमें चेरीपाई, आइसक्रीम और अमेरिकाके अन्य सुस्वादु खाद्यपदार्थोंका स्वाद भी अच्छ लगा। यही चीजें हमें रोज खानेको मिलती थीं।

जहाजमें हमारे नये साथी विभिन्न देशोंकी प्रजा थे। माओरी नामक ऊँचा-पूरा, आकर्षक एक सैनिक अफसर था, जिसके बाल काले और शरीर किसी भारतीय जैसा ही साँवला था। उससे हमें न्यूजीलैण्ड तथा वहाँके निवासियोंके बारेमें बहुतसी बातें मालूम हुईं। एक हृष्ट-पुष्ट अंग्रेज था जो पुराना-सा भूरे रंगका बरसाती कोट पहने हुए जब देखो तब मौसिमकी निन्दा किया करता था। "कितना अँधेरा छाया हुआ है, कैसा आर्द्र मौसिम है, चारो तरफ कीचड़ ही कीचड़ नजर आ रहा है,

आज तो बड़ी मुसीबत है"—इत्यादि ऐसा ही कोई वाक्य वह मुँहसे उगल दिया करता था, जब हम डेकपर टहलती हुई उसके पाससे गुजरती थीं। हम लोग उससे युद्धके सम्बन्धमें बातचीत किया करती थीं और भारतके भविष्य तथा ब्रिटिश साम्राज्यकी परिणति पर भी बहस करती थीं। सबसे न्यारे व्यक्तित्वका हालैण्डके शाही बेड़ेका एक श्वेतांग अफसर भी था जो नीले और सुनहले रंगकी चमकीली पोशाक पहने हुए था। उसके कहकहे तथा फटी हुई आवाज सुनकर संध्याका लम्बा समय बड़े आनन्दसे कट जाता था। इनके सिवा एक शर्मीला किन्तु विचारशील चीनी नवयुवक छात्र था, जो बहुत कम बातचीत किया करता था पर जो लेखाकी तरफ उस समय जब हम टेबिलके चारों तरफ बैठकर बातचीत किया करते थे, उच्च भावनासे देखा करता था। जहाजपर कुल ग्यारह विभिन्न देशोंके निवासी सवार थे जिनके पृथक्-पृथक् स्वभाव और अपनी-अपनी विशेषताएँ थीं। युद्धकी स्थिति-के कारण ही इनका इस तरह समागम हुआ था। इनमेंसे अधिकतर प्रसन्नहृदय, मित्रतापूर्ण और साथी बनाये जाने योग्य थे।

दिनमें एक बार जहाजका मेगाफोन चिल्ला उठता था "सब लोग जहाज छोड़कर खड़े हो जायँ।" इस चेतावनीके बाद सब यात्रियोंको अपना-अपना काम छोड़ देना पड़ता था और जल्दीसे डेकपर पहुँच कर वह स्थान ग्रहण कर लेना पड़ता था जो उनके लिए यात्राका आरम्भ होते समय निर्धारित कर दिया गया था। यह एक तरहकी अनुशासन सम्बन्धी काररवाई थी जो इसलिए करायी जाती थी कि यदि सचमुच जहाजपर शत्रुकी डुबकनीका हमला हो जाय तो हम स्थितिका सामना करनेके लिए तैयार रहें। मैं कभी भी इस संकेतके अनुसार शीघ्रतासे कार्य नहीं कर सकती थी। मैं सीधे अपनी कोठरीमें पहुँचकर अपने लम्बे मोटे बालोंका जूड़ा खोल डालती, उनमें कंघी करती, ब्रश फेरती, फिरसे जूड़ा बाँधती, अन्तिम बार इधर-उधर हाथ लगाकर उसे ठीक करती और तब कहीं डेककी ओर कदम बढ़ा पाती थी।

प्रत्येक बार जब मैं जहाजकी छतपर देरीसे पहुँचती, तो लेखा मुझे टोककर कानमें धीरेसे कहे बिना न चूकती "क्या तुम पागल हो

गयी हो ? अगर हमला हो जाता है और हमें समुद्रमें कूदना पड़ता है तो उस समय किसे यह देखनेकी फुरसत है कि तुम अपने बाल ठीकसे सँवार पायी हो या नहीं।"

"कुछ भी हो, मैं कंगलों और गलीजोंकी तरह जहाज नहीं छोड़ सकती। इसके सिवा, मुझे अपना नैतिक साहस भी तो बनाये रखना है।"—यही लेखाको मेरा शानदार जवाब होता।

केवल इसलिए डेककी ओर सिरपर पॉव रखकर भागना कि ध्वनि-विस्तारक यंत्रने गरज गरजकर ऐसा ऐलान किया है, मुझे अच्छा नहीं लगता था। इससे मेरी व्यक्तिगत भावनाको ठेस लगती थी। मुझे इसकी बिलकुल परवाह नहीं होती थी कि ऐसा करनेसे मैं अमेरिकी नौ-सेना विभागकी कोप-भाजन बन जाऊँगी और सम्भव है कि उसका आदेश न माननेके कारण मैं बीच समुद्रमें बहनेके लिए छोड़ दी जाऊँ। यदि मेरे सम्बन्धमें यही होनेवाला हो तो हो, कोई मुझे उससे रोक नहीं सकता, दार्शनिकोंकी तरह मैं यही सोचती और प्रत्येक बार इसी तरह अपने केश-विन्यासके काममें जुटी रह जाती।

अपने यात्रा-मार्गका प्रथम आभास हमें तब मिला जब बरफ जैसी ठंडी हवा चलने लगी और हम लोग जाड़ेके मारे काँपने लगीं, क्योंकि ऊनी कपड़े हम साथमें नहीं ले गयी थीं। अधिकतर समयमें हम लोग सूती पैंट और ब्लाउज ही पहने रहती थीं। तेज बहनेवाली समुद्री हवामें साड़ी पहननेसे शरीरकी यथोचित रक्षा नहीं हो सकती थी। किसने यह सोचा था कि मईके अन्तमें हड्डी गला देनेवाले जाड़ेका सामना हमें करना पड़ेगा ? किन्तु दुनियाके उस दूसरे हिस्सेमें यही बात हुई। जब दाँतसे दाँत बजने लगे, तब हमने आश्चर्य और विस्मयके साथ यह बात जानी कि हम लोग आस्ट्रेलियाके निकट पहुँच रहे हैं। निदान एक दिन जब खूब जाड़ा पड़ रहा था और तेज हवा चल रही थी, हमारा जहाज मेलबोर्न बन्दरगाहमें जा पहुँचा। हम दोनों बहिनें पतले सूती कोट पहने जहाजकी छतपर खड़ी हो गयीं और घने कुहरेको भेदकर उसपर देखनेका यत्न करने लगीं। हम लोगोंको मात्र दो-चार टिमटिमाते दीपक ही देख पड़े जो यहाँ-वहाँसे कुहरेका आवरण

चीरनेका उपक्रम कर रहे थे। किन्तु भूमिकी इतनी-सी झलक पाकर भी मुझे प्रसन्नता हुई।

"क्या तुमने कभी कल्पना भी की थी कि हम मेलबोर्न पहुँचेगीं ?" मैंने विस्मयके साथ पूछा।

लेखाने साफ जवाब दिया—"नहीं, और मैं तो अब भी समझती हूँ कि हम मेलबोर्नमें प्रविष्ट न हो सकेंगी।"

"क्या मतलब तुम्हारा" मैंने त्योरी चढ़ाते हुए पूछा।

"मेरी प्यारी बहिन" उसने बड़े धैर्यके साथ समझाना शुरू किया— "हमारे चारों तरफ जो कुछ हो रहा है, उसे क्या तुम सुन नहीं रही हो ? असैनिकोंको तटपर उतरनेकी अनुमति नहीं दी जा रही है।"

इससे हमें निराशा हुई और हम लोगोंको जहाजसे जो कुछ देख पड़ता था, उसीसे संतोष करना पड़ा। एक सैनिक मित्र हममेंसे प्रत्येक-के लिए एक-एक उपहार-चित्रावली, धातुका बना कँगारू तथा लकड़ी-का एक अनोखा अस्त्र ले आये। आस्ट्रेलियाके बारेमें बस इतना ही हम देख सके।

डेकके एक कोनेमें खड़ी होकर, उस दिन शामको, जब मैं दीपकोंकी ओर देख रही थी तो मुझे बड़ा अकेलापन महसूस हुआ और मेरी दिली इच्छा हुई कि काश यह बन्दरगाह बम्बईका हमारा सुपरिचित बन्दरगाह होता ! उस समय इतना अंधेरा छाया हुआ था कि मैं उन सज्जनको देख नहीं सकी जो चुपकेसे मेरी बगलमें आकर खड़े हो गये और मैं तो चौंक पड़ी जब उन्होंने मैत्रीपूर्ण ढंगसे कहा—"हल्लो !" इसके बाद जब उन्होंने पूछा "अरे क्या मैंने आपको डरा दिया !" तो इन शब्दोंमें छिपी हुई व्यंग्यात्मक हँसी भी मानो मुझे साफ सुनाई दी।

"जरूर, मैं तो डर गयी"—मैंने जवाब दिया। "मैं चाह रही थी कि कैसे उतरकर तटपर जाऊँ।" एक पूर्णतः अपरिचित व्यक्तिके सामने स्वदेशसे बिछुड़नेकी वेदना प्रकट कर देनेपर मुझे बड़ी लज्जा मालूम हुई।

"ऐसा तो आप कर नहीं सकती थीं। इस जहाजमें यात्रा करते-करते आप काफी ऊब उठी होंगी। क्या इसपर सवार हुए आपको बहुत दिन हुए ?"

"मैं बम्बईमें सवार हुई थी।"

"अच्छा ?" उन्होंने दिलचस्पी लेते हुए पूछा। "क्या आप हिन्दुस्तानमें बहुत दिनोंसे रहती रही हैं ?"

"जन्मसे ही वहाँ रहती आयी हूँ।'

"आपका जन्म तो वहाँ नहीं हुआ था ?"

"हाँ, सच बात तो यह है कि मैं वहीं पैदा हुई"—मैंने कहा।

"तो क्या आपके माता पिता धर्म-प्रचारक थे ?"

सचमुच यह तो ज्यादती थी। क्या उनके दिमागमें यह बात नहीं आयी कि कोई यात्री भारतीय भी हो सकता है ?

मैंने संक्षेपमें जवाब दिया "नहीं, वे धर्म-प्रचारक नहीं थे। मैं भारतीय हूँ। भारतमें मेरा जन्म हुआ और जीवनभर मैं वहाँ ही रहती रही हूँ।"

"भला किसके विचारमें यह बात आ सकती थी ?" उक्त महाशयने बिना किसी झेंप और संकोचके कहा। "आप उतनी ही अच्छी अंग्रेजी बोल लेती हैं जितनी मैं बोलता हूँ।"

इसका मुँहफट जवाब देनेकी बात मैं सोच ही रही थी किन्तु तबतक उन्होंने प्रश्न पूछनेका सिलसिला फिर शुरू कर दिया।

"अमेरिकामें क्या आप किसी स्कूलमें नाम लिखाने जा रही हैं?"–मेरी अप्रसन्नतासूचक चुप्पीकी ओर ध्यान न देते हुए उन्होंने पूछना जारी रखा।

"नहीं, मैं कालेज जा रही हूँ।"

उन्होंने हँसकर अपना मनोविनोद प्रकट किया और कहा—'मतलब वही हुआ, अमेरिकामें प्रत्येक शिक्षा-संस्थाको हम स्कूल ही कहते हैं।" और तब उन्होंने—मानो एकाएक यह बात उनके मनमें आयी हो—पूछा—"आपने अशान्तिके इस अवसर पर बाहर जानेका निश्चय कैसे किया ?"

मैंने जवाब दिया—"क्योंकि स्वदेशमें मुझे विद्याध्ययनकी अनुमति नहीं दी जाती। आप यह समझ लें कि मेरे देशमें विद्यार्थियोंको इस बातकी प्रतिज्ञा करनी पड़ती है कि हम राजनीतिक कार्योंमें हिस्सा न लेंगे।"

"राजनीतिक कार्योंमें ? क्या मतलब आपका ?" विस्मय मुग्ध-सा होकर उन्होंने पूछा।

मैंने मन ही मन कहा—"गत नौ महीनोंके भीतर मेरा सारा परिवार देशकी स्वतंत्रता चाहनेके कारण, कारागृहमें बन्द कर दिया गया है, और भारतके बाहरके लोग इसके बारेमें कुछ भी नहीं जानते।" फिर मैंने जोरसे बोलते हुए धैर्यके साथ समझाना शुरू किया "आप देखें कि स्वदेशमें जो कुछ हम सोचते हैं उसे प्रकट करनेकी अनुमति हमें नहीं दी जाती। यदि वहाँ कोई कहता है कि मैं भारतकी स्वतंत्रता चाहता हूँ, तो वह जेलखानेमें डाल दिया जाता है।"

मेरे इस साथीको यह सुनकर आश्चर्य हुआ, जिसे उसने सीटी सी बजाते हुए प्रकट किया। "आप यह क्या कह रही हैं ! और मुझे देखो, मैं स्वतंत्रताके लिए युद्ध करते हुए साल भरसे घरके बाहर रहा हूँ। आपकी बातें सुनकर तो हिटलरको भी मजा आ जायगा और वह मुँह फेरकर मुस्कराये बिना न रहेगा।"

मैं अपनी हँसी न रोक सकी और खिलखिला पड़ी।

इसपर उसे आश्चर्य-मिश्रित प्रसन्नता हुई। उसने कहा—"आप ठीक उसी तरह हँसती हैं जिस तरह अमेरिकन लड़कियाँ हँसा करती हैं।"

"मैं समझी। तब तो मेरे लिए भी कोई आशा की जा सकती है।"

युवक सैनिक प्रसन्नभावसे हँस पड़ा।

"मुझे खेद है कि आपसे इतने सारे प्रश्न पूछकर मैंने आवश्यकतासे अधिक जिज्ञासा प्रकट की। किन्तु सचमुच मैं इस बातकी कल्पना भी नहीं कर सकता कि मैं एक बार फिर मानव प्राणियोंके बीचमें हूँ। एक वर्षतक प्रशान्तसागरीय युद्धमें रहनेके बाद घर वापस आते समय मनमें कैसा लगता होगा, इसकी आप कल्पना ही नहीं कर सकतीं।"

एकाएक मुझे अपने ऊपर बड़ी लज्जा मालूम हुई, क्योंकि मैं इन महाशयसे कुछ-कुछ भद्दे ढंगसे बातचीत करती रही हूँ। यदि ये युद्ध-भूमिसे होकर आते हुए भी हँस सकते और मजाक कर सकते हैं तो मैं समझती हूँ कि उन्हें जितनेकी कल्पना मैं करती रही हूँ उससे अधिक

श्रेय मिलना चाहिये। इसके सिवा उस देशकी भी प्रशंसा करनी चाहिये जो उसके समान युवकोंको जन्म दे सकता है।

बीचमें बोलकर उसने मेरी विचार-परम्परा भंग कर दी। "कुछ देर पहले आपने भारतके सम्बन्धमें जो कुछ कहा था, मैं उसीकी बात सोच रहा था। हम अमेरिकन लोग पूरबके बारेमें अधिक नहीं जानते। इस युद्धसे हमें बहुत सी बातें मालूम हो रही हैं। क्या आप अपने देशके बारेमें और भी बहुत सी चीजें बतायेंगी?"

छतपर ठंड बढ़ती जा रही थी, इसलिए भारत और अमेरिका सम्बन्धी बातचीत जारी रखनेके लिए हम लोग भोजन-गृहमें वापस चले गये।

हमने घरको चिट्ठियाँ लिखने और उन्हें मेलबोर्नके डाकखानेमें छोड़नेकी अनुमति प्राप्त कर ली थी। बादमें मम्मीने मुझसे कहा था कि हमारी चिट्ठियोंसे यह जानकर कि आस्ट्रेलियन समुद्रमें बिना ऊनी कपड़ोंके हमें यात्रा करनी पड़ी, वे कितनी चिन्तित और परेशान हो उठी थीं। उन्होंने बतलाया था कि लगातार कई रातों तक वे हम लोगोंके सम्बन्धमें भयानक स्वप्न देखती रहीं। उन्हें लगता मानो लेखा और मैं प्रशान्त महासागरके किसी हिमशैल (आइसबर्ग) पर विवस्त्र खड़ी हों और वे हाथमें कम्बल लिये हुए दूरवर्ती ऐसे अन्य हिमशैल पर विद्यमान हों जहाँसे हमारी तरफ उन्हें फेंकना सम्भव न हो।

इसके कुछ दिनों बाद दूसरी जगह जहाँ हमारा जहाज ठहरा, न्यूजीलैण्डमें वेलिंगटन बन्दरगाह था। इस बार भी हमें जहाजपरसे ही नगरका दृश्य देखकर सन्तोष करना पड़ा। आसमान बिलकुल साफ था और प्रकाश चारो तरफ फैला हुआ था। हरी-हरी पहाड़ियों-पर लाल छतोंवाले मकान सुशोभित थे, जिनके कारण वेलिंगटन हमें कुछ-कुछ मंसूरी जैसा लगा। यहाँ हमारे जहाजपर कुछ समुद्री सैनिक सवार हुए जो दक्षिणी प्रशान्तसागरकी लड़ाइयोंमें घायल हुए थे या वहाँ युद्ध करते हुए बीमार पड़ गये थे। उन्हें देखकर और उनसे हाल-चाल सुनकर ही हमें जीवनमें पहली बार उस युद्धका वास्तविक आभास हुआ जो आधी दुनियाके देशोंमें व्याप्त था। इसके पहले कि हम युद्धके और निकट सम्पर्कमें आवें, हमें यह मालूम हो गया कि जहाजपर

काम करनेवाले सैनिक (मैरीन) वस्तुतः किन्हें कहते हैं। अभीतक उनके सम्बन्धमें हमारी इतनी ही जानकारी थी कि हमने इस मुहावरेमें ही इस शब्दका प्रयोग सुना था "टेल इट टू दि मैरीन्स" [यह बेहूदी बात मैरीन लोगोंसे कह दो।]

मैंने उनमेंसे एकसे पूछा "ठीक-ठीक बताइये कि 'मैरीन' कहते किसे हैं।"

अपने साथियोंकी सद्भावनापूर्ण हँसीके बीच उसने जवाब दिया कि "हम लोग जहाजपर काम करनेवाले वे सैनिक हैं जिन्हें सेना तथा जहाजी बेड़ेके लिए सब तरहका गन्दा काम करना पड़ता है। हम जहाजपर उतर जाते हैं, उसे साफ कर देते हैं—मतलब यह कि सब जापानियोंका खात्मा कर डालते हैं—उसे सुन्दर, ठिकानेका और सुरक्षित बना देते हैं। तब सेना और बेड़ेके आदमी आ पहुँचते हैं और उसकी व्यवस्था हाथमें लेते हैं।

वे कम ही उम्रके और बड़े मौजीसे जान पड़ते थे जिन्होंने इतने जापानियोंका सफाया किया था। उन लोगोंके आ जानेसे जहाजकी भोजनशाला शोरगुल और जोशीली वार्त्तासे गुंजित हो उठी। हम दोनों बैठ गयीं और उनकी बातें सुनने लगीं। बातचीतके शोरगुलके बीच थोड़ी-थोड़ी देरके बाद ध्वनि-विस्तारक यन्त्र नाकके बल उच्चारित बनावटी धीमी आवाजमें तरह-तरहके निर्देश देता रहता था "अच्छा, इसे सुन लीजिये—बेकर, जी० डब्लू०, प्राइवेट, प्रथम श्रेणी, अमेरिकन मैरीन-कोर, सेनाके दफ्तरमें फौरन हाजिर हों।"

"यदि बिना विलम्ब न पहुँचे तो ?" प्राइवेट बेकर भी मेगाफोनसे मिलती-जुलती मोटी आवाजमें बोल उठता। फिर हाथमेंके ताशके पत्ते नीचे पटककर और झटकेसे टोप उतारनेका स्वाँग करते हुए वह आदेशानुसार निर्दिष्ट स्थानकी ओर झपट पड़ता।

एक दिन कुछ जहाजी सैनिक उन स्मृति-चिह्नोंके विषयमें बातचीत कर रहे थे ; जिनका संग्रह उन्होंने ग्वाडल केनालमें किया था। इसी बीच एक युवकने कहा "एक मृत जापानी सैनिकके मुँहसे मैंने पूरेके पूरे सोनेके दाँत झटक लिये थे। उन्हें काट-कूटकर ठीक करनेमें मेरा बहुत समय लग गया।"

उसकी बातोंपर पूरा विश्वास न करती हुई लेखा और मैं भयभीत-सी एवं स्तब्ध रह गयी।

"क्या तुम कह रहे हो कि तुमने मरे हुए आदमीके मुँहसे दाँत निकाल लिये ?" लेखा पूछ ही तो बैठी।

"निश्चय ! वह मर चुका था, अतः उनका प्रयोग कर नहीं सकता था। और आप जानती ही हैं कि सोना सोना ही है।"

हमारे चेहरोंपर अविश्वासके चिह्न देखकर अन्य जहाजी सैनिक ठहाका मारकर हँस पड़े।

"लड़ाई चल रही है, यह आप जानती ही हैं। इस समय जो बहुत सी चीजें हो रही हैं, उनकी तुलनामें यह घटना तो मानो कुछ भी नहीं है।"

युद्धकी जो अनेक अद्भुत अद्भुत कहानियाँ वे कहना चाहते थे, उन्हें हम सुनना नहीं चाहती थीं, किन्तु हमें सुनना पड़ा, क्योंकि हमारे सामने और कोई काम करनेके लिए था ही नहीं। कथाएँ तो काफी बुरी थीं ही, किन्तु जिस शान्त और अविचल भावसे, कभी-कभी तो उनमें आनन्द तक लेते हुए, वे उन्हे सुनाते थे, यह और भी बुरा था। इस बातपर विश्वास ही नहीं होता था कि ये नौजवान, जिनमेंसे अधिकतर २०–२१ वर्षके ही थे, मानव-कष्ट और मानव-हत्याके सम्बन्धमें इतने उदासीन और कभी कभी तो तिरस्कारपूर्ण उपेक्षा भावसे भरे हुए हो सकते थे। ऐसा मालूम होता था कि ये बुरीसे बुरी स्थिति देख चुके थे और ऐसी कोई चीज शायद ही शेष बची हो जो उन्हें अधिक प्रभावित कर सकती।

हमारे अनुभवमें अभीतक ऐसी कोई बात नहीं आयी थी, जो हमें जीवनके इस दृष्टिकोणके लिए तैयार कर देती। भारतीय क्रान्तिकी पृष्ठभूमिमें हमारा जन्म और पालन हुआ था किन्तु वह क्रान्ति युद्ध तथा हिंसाके उस प्रकारसे कितनी भिन्न थी जिसके बारेमें हमारी ही पीढ़ीके समुद्र-पारके ये युवक बातें करते थे। गांधीजीने जिस विद्रोहका संचालन किया था वह शान्तिपूर्ण था। उन्होंने भारतीयोंको यह बात समझा दी थी कि यदि वे स्वतन्त्रताके लक्ष्यका महत्त्व स्वीकार करते हैं तो उन्हें उससे भी अधिक महत्त्व उस उपाय या साधनको देना

चाहिये जिसके जरिये वह प्राप्त की जायगी। राष्ट्रीय स्वाधीनताकी इमारत विद्वेषपूर्ण लड़ाई तथा खून-खराबीकी बुनियादपर खड़ी करना उचित न होगा। उनका विश्वास था कि यदि एक व्यक्तिके जीवनमें सचाई और सम्मानका विशेष महत्त्व है तो राष्ट्रके जीवनके लिए भी ये उतने ही जरूरी हैं। यदि किसीकी हत्या करना एक व्यक्तिके लिए अनुचित है तो एक राष्ट्रके लिए भी हिंसामें प्रवृत्त होना वैसा ही गैर-मुनासिब है।

हमने भारतीय संग्रामकी तुलना ईसाई धर्मके प्रारम्भिक संघर्षसे की। जिस समय ईसाके शिष्योंने उनके शान्तिके सन्देशका प्रचार करने और मार्गमें आनेवाली कठिनाइयोंको स्वेच्छापूर्वक स्वीकार करनेका निश्चय कर विश्वमें पर्यटन किया, उस समयसे आजतक संसारके लोगोंने इस तरहका पवित्र धार्मिक संग्राम और नहीं देखा था। युद्धका यही एक प्रकार था जिसका अनुभव हमें था। इसीके सम्बन्धमें अपने साथियोंसे हम वाद-विवाद किया करती थीं किन्तु यह सब उसी तरह बेकार था जिस तरह हमारा उनसे किसी ऐसी भाषामें बातचीत करना होता जिसे वे नहीं जानते थे। जब हम उनसे अहिंसाकी चर्चा करती थीं तो उसका केवल यही प्रभाव पड़ता था कि वे हमारी बातें सुन-कर हँस पड़ते थे।

"आपके ये गांधी महाशय अवश्य ही बड़े सनकी होंगे। मान लीजिये कि कोई आदमी उनके पास जाकर उनकी बहिनको मार डाले तो क्या इसपर भी वे चुपचाप बैठे रहेंगे और कोई कारवाई न करेंगे?"

"जी, वे और चाहे जो कुछ करें, इतना तो निश्चित है कि इसके बदले वे उस आदमीके किसी चचेरे भाईकी जान न ले लेंगे," मैंने दृढ़तासे जवाब दिया। "उससे कौन सा प्रश्न हल हो जायगा? उससे तो और नयी-नयी समस्याएँ उठ खड़ी होंगी।"

मेरी बातसे कोई भी सहमत न हुआ। तब लेखाने समझानेका प्रयत्न किया। "देखिये, युद्ध करनेमें ही यदि आपका विश्वास हो, तो भी आप बिना किसी मतलबके तो लड़ते नहीं। या तो आप किसी कारणसे युद्ध करते हैं या किसी आदर्शके लिए। किन्तु मारकाट और खून-खराबीमें वही आदर्श आप भुला देते हैं।"

"आदर्श ! क्या पागल हुई हो !" एक झुँझलाये हुए जहाजी सैनिकने कहा। "आप जानती हैं कि हम किस लिए यह युद्ध लड़ रहे हैं ? हम अपने प्रिय अमेरिकन भोजन एपिलपाई और आइसक्रीमके लिए लड़ रहे हैं। इससे दूसरी बात कोई कहे भी तो आप न मानें।" और इस उत्तरसे ही मानो आगेका विवाद समाप्त हो गया।

न्यूजीलैण्डसे प्रस्थान करनेके कुछ ही दिनों बाद हमें ऐसा भान हुआ कि हमारा मार्ग अमेरिकाके पश्चिमी तटकी ओर जा रहा है और अमेरिकामें स्थित जिस एकमात्र व्यक्तिको हमारे माता-पिता व्यक्तिगत रूपसे जानते थे वह पूर्वीतटपर न्यूयार्कमें हमारी प्रतीक्षा कर रहा होगा, लगभग तीन हजार मीलकी दूरीपर। इसमें सन्देह नहीं कि आखिरकार हमारा जहाज जब सैनपीड्रो बन्दरगाहमें प्रविष्ट हुआ, तब जहाजमें यात्रा करते-करते हमें छः सप्ताह बीत चुके थे। जूनका महीना था और उस दिन सख्त गरमी पड़ रही थी। जहाजके हमारे संगी-साथी हमसे मित्रतापूर्वक बिदा लेकर जब चले गये, तब हमने अपने आपको वहाँके जहाज-घाटपर ऐसी विचित्र स्थितिमें पाया कि हम यह समझ ही नहीं पा रही थीं कि हमें क्या करना चाहिये और कहाँ जाना चाहिये।

दूसरा अध्याय

राजनीति और हम

मैं नहीं कह सकती कि हम लोग कहाँतक नयी दुनियाके, या यों कहिये कि अपने देशके बाहरकी किसी भी दुनियाके, लोगोंका सामना करनेके लिए अच्छी तरह या बुरी तरह तैयार थीं। अमेरिका पहुँचने पर हम लोगोंसे अक्सर पूछा जाता था—"भारत कैसा देश है, किससे मिलती-जुलती वहाँकी स्थिति है?" "भारतकी औसत लड़की किस तरह रहती है?" "राजनीतिक चेतना तुममें कब जाग्रत हुई?" हमारी समझमें नहीं आ रहा था कि इन प्रश्नोंका क्या उत्तर हम लोग देतीं।

एक बात तो यह है कि भारतमें पश्चिमकी तरह "औसत" लड़की जैसी कोई चीज ही नहीं है, क्योंकि भारतीय लोगोंके रहन-सहनके तरीकोंमें एकरूपता या समानताकी उतनी मात्रा नहीं है जितनी उन देशोंमें है। यहाँ जीवनके इतने भिन्न-भिन्न स्तर हैं, केवल ये तीन स्थूल विभाग ही नहीं है जैसे उच्च, निम्न और मध्यवर्ग। ये तो हैं ही पर इनके सिवा और भी हैं। उनकी शिक्षामें ही विभिन्न स्तर नहीं हैं वरन् उनके 'पश्चिमीकरण' की मात्रामें भी अन्तर है। सम्पत्ति और संस्कृति नापनेके लिए, जिनके आधारपर समाजमें मनुष्यकी स्थितिका निर्णय होता है, एक दर्जन अलग अलग मापदण्ड हैं। इसलिए भारतीयोंकी दृष्टिसे 'औसत' एक जटिल या उलझा हुआ शब्द है। अवश्य ही हम दोनोंमें से कोई भी 'औसत' लड़की नहीं कही जा सकती, यदि 'औसत' से अभिप्राय उससे हो जो सारे भारतके लिए प्रतिनिधि-स्वरूप मान ली जा सके। फिर भी एक सीमातक, जहाँतक रहन-सहनके तरीके और शिक्षाके स्तरका ताल्लुक है, हम दोनों भी अपने देशकी बहुतसी लड़कियोंकी ही तरह हैं।

जहाँतक राजनीतिक चेतनाका सवाल है, यह प्रश्न सुनकर पहले तो हमें हँसी आ गयी। हमने सोचा कि एक ही क्षणमें या अचानक

कोई कैसे राजनीतिक दृष्टिसे सचेतन बन जा सकता है? यह तो कुछ ऐसी ही बात हुई जैसे मैं कहूँ कि "गत ६ नवम्बरको मैं मोटी हो गयी।" क्या इस तरहकी चेतना, सज्ञानता, बिना किसी पृष्ठभूमिके एकाएक किसीके मनमें उत्पन्न हो सकती है? हमारे अमेरिकन मित्रोंने हमें निश्चय दिलाया कि हाँ, ऐसा होना सम्भव है। मेरे साथ पढ़ने वाली एक लड़कीने मुझसे कहा "राष्ट्रपतिके पिछले चुनावके वक्त मुझमें राजनीतिक चेतना जाग्रत हुई। उसी समयसे मैंने समाचारपत्रोंका पढ़ना नियमित रूपसे प्रारम्भ किया और देशमें जो कुछ हो रहा था, उसमें दिलचस्पी लेनी शुरू की।" मैंने महसूस किया कि उसने एक तरहसे ठीक ही कहा था। बहुतसे लोगोंके लिए राजनीतिक मामलोंमें दिलचस्पी लेना एक ऐसी चीज है, जिसकी शुरूआत ठीक उसी तरह स्वेच्छासे की जाती है कि जिस तरह कोई टेनिस खेलना या तैराकी सीखना आरम्भ करता है। उनके लिए वह धीरे-धीरे लम्बे अरसेमें विकसित होनेवाली 'अनैच्छिक' (इनवालंटरी) प्रक्रिया नहीं है जैसी कि हम लोगोंके लिए थी।

जहाँतक हम लोगोंका (मेरा और लेखाका) प्रश्न है, हममें राजनीतिक सज्ञानताका विकास क्रम क्रमसे एवं अज्ञात रूपसे हुआ और यही हमारे जीवनपर पड़नेवाला सबसे महत्त्वपूर्ण प्रभाव था। हमलोगोंका जन्म और पालन-पोषण उस समय हुआ जब भारतका नेतृत्व गांधीजीके हाथमें आ गया था और उन्हींके पथ-प्रदर्शनमें भारतकी राष्ट्रीयताका पूर्ण विकास हुआ। मैं और मेरी बहिनें भारतके उन सबसे कम उम्रके बालक-बालिकाओंमेंसे थीं, जिनपर उस ज्योतिका प्रभाव पड़ा था जिससे गांधीजीने सारे देशको आलोकित कर दिया था। इस ज्योतिने छोटे-छोटे अगणित तरीकोंसे हमारे जीवनका स्पर्श किया और यह क्रमशः हमारी चेतनाके भीतर प्रविष्ट होती गयी, यहाँतक कि ज्यों-ज्यों हम बड़ी होती गयीं वह हमारे जीवनका सजीव अंश बन गयी।

हमने गांधीजीको बहुत बार नहीं देखा। हमारे लिए तो भारतीय स्वातंत्र्य संग्रामका, तथा वीरता एवं आदर्शवादके रूपमें उसका जो अभिप्राय हो सकता था उसका, प्रतिनिधित्व हमारे मामा (जिन्हें

हम लोग मामू कहकर पुकारती थीं) श्री जवाहरलाल नेहरू ही करते थे। हमारे परिवारके राजनीतिक भविष्यका पथप्रदर्शन करते हुए उन्होंने ही उसे गांधीजीकी ओर झुकाया। जब गांधीजी सन् १९१६ में दक्षिण अफ्रिकासे भारत आये तब उनकी पुकारपर सबसे पहले उठ खड़े होनेवाले लोगोंमें मामू भी थे। हमारे नाना (स्वर्गीय) श्री मोतीलाल नेहरूपर भी उनका प्रभाव पड़ा जिससे वे भी उनके साथ हो गये।

भारतीय राष्ट्रीय महासभाके नामसे जिस दलकी स्थापना १९ वीं शताब्दीके अन्तिम चरणमें हुई थी और जो ब्रिटेनकी शाही सरकारके निष्ठावान् विरोधी दलकी तरह काम करती थी, वह प्रथम महायुद्धकी समाप्तिके बाद विद्रोहिणी संस्था बन गयी जिसका अन्तिम लक्ष्य भारतकी स्वतन्त्रता था। गांधीजी स्वयं उसके सदस्य नहीं थे किन्तु वह शीघ्र ही अहिंसात्मक संग्रामकी उस अनूठी और विस्मयमें डाल देनेवाली कार्य-प्रणालीका साधन बन गयी जिसका प्रवर्त्तन महात्माजीने किया। गांधीजीने जब पहली बार जेल जानेका आन्दोलन चलाया, तब उन्होंने लोगोंको उन दमनकारी कानूनोंकी खुलेआम अवहेलना करनेकी सलाह दी जो महायुद्धके बाद भारतमें प्रवर्त्तित किये गये थे। गांधीजीका आशय था कि ऐसा करते हुए लोग अपने आपको गिरफ्तार करा दें। उस समय मामूने अपने आपको गांधीजीके हवाले कर दिया जिसका नतीजा यह हुआ कि कुछ ही समयके बाद उनके पिता भी गांधीजीके साथ हो गये।

मामूके उदाहरणने नेहरू परिवारके प्रत्येक सदस्यकी कल्पना-शक्तिको उत्तेजित कर दिया था। इसलिए यह स्वाभाविक था कि हमारे पितामें भी, जब मम्मीके साथ उनका विवाह हो गया, वही जोश तरंगित हो उठे। एक कारणसे और भी यह बात समझमें आ सकती थी और वह यह कि पापूका परिवार पश्चिमी भारतके उसी भागमें बस गया था जहाँ गांधीजीका जन्म हुआ था। पापूके पिता, श्री सीताराम पण्डित कई प्रकारसे गांधीजीके गुरु थे। इस तरह जो धारा हमें बहाकर गांधीजीकी तरफ ले गयी, मानो वह दो ओरसे आयी थी। हमारे पिता तथा मामामें जो गहरी दोस्ती और प्रशंसनीय स्नेहभाव था, उसके कारण भी इसे बल मिला।

जब भारतके राजनीतिक क्षितिजपर गांधीजीका आविर्भाव हुआ, तब हमारे माता-पिता तरुण थे। हमारे बच्चोंने उन्हें नहीं देखा और न कभी देख सकेंगे। उनके सम्बन्धकी बातें तो वे सुनेंगे किन्तु उनके लिए उनकी सत्ता केवल एक नामके रूपमें, भारतीय इतिहासके अनेक सुप्रसिद्ध नामोंमें एकके रूपमें ही रहेगी। किन्तु हम लोग सचमुच ही गांधीजीके समयके भारतकी सन्तान हैं। हमारा जन्म ऐसे ही समय हुआ था, जब अन्धकारकी मूर्त्तिके स्थानपर समुज्ज्वल प्रकाशका अवतार हो रहा था। हम जैसे-जैसे बड़ी होती जाती थीं, वैसे-वैसे भारतकी राजनीतिक परिपक्वतामें भी वृद्धि हो रही थी। अन्य किसी भी देशके राजनीतिक परिपाकसे इसमें भिन्नता थी, क्योंकि इसका आधार वह विचारधारा थी जो आत्मत्याग, दया एवं शान्तिकी भावनासे अनुप्रेरित थी। इस अनूठी राजनीतिके प्रभावसे हमारे जीवनपर एक अद्वितीय मोहिनीसी छा गयी थी। कुछ लोगोंको यह शब्द बड़ा असंगत-सा लगेगा, जब वे ख्याल करेंगे कि हमारे माता-पिताको अपना अधिकांश समय हम लोगोंसे अलग रहते हुए काम करनेमें या बन्दीगृहमें बिताना पड़ा था। किन्तु यह भी गांधीजीके जादूका ही एक अंग था। स्वातन्त्र्य संग्राममें हमारे माता-पिता जो हिस्सा ग्रहण करते थे, उसपर हमें अभिमान होता था और ऐसा अनुभव होता था मानो वह हमारा ही अंशदान हो।

गांधीजीके उपदेशोंने साहसिक स्त्री-पुरुषोंको अपने जीवनका सारहीन रवैया बन्द कर स्वातन्त्र्य संग्राममें सम्मिलित होनेके लिए आहूत किया। उनके जेल जानेका कार्यक्रम सरकारसे शान्तिमय असहयोगका एक उपाय समझकर तैयार किया गया था। जेल जानेकी काररवाई बहुत ही सादगी, मर्यादा तथा शिष्टताके साथ की जाती थी। जब गांधीजीने असहयोग आन्दोलन शुरू किया तब उनके अनुयायियोंका कर्त्तव्य हो जाता था कि वे सरकारके कुछ खास-खास कानूनों अथवा रोकोंका उल्लङ्घन करें। वे यह काम बड़ी शान्तिके साथ करते थे। पहले वे अपने क्षेत्रके जिला मजिस्ट्रेटके पास शिष्ट भाषामें लिखित छोटा-सा पत्र भेज देते थे जिसमें उस काररवाईकी सूचना दी जाती थी जो वे शीघ्र ही करना चाहते थे। सूचना मिलते ही जिला-मजिस्ट्रेट

तुरन्त ही सम्बद्ध व्यक्ति या व्यक्तियोंको गिरफ्तार कर लिया करते थे।

इस कार्यक्रमके कारण पतियोंको अपनी स्त्रियोंसे और माँ-बापको अपने बच्चोंसे बिछुड़ना पड़ा। इसमें जिस अनुशासनकी आवश्यकता पड़ती थी, उसका हृदयके भावोंपर ऐसा गहरा प्रभाव पड़ता था जिससे बच्चोंका जीवन विकृत हो जानेकी सम्भावना थी, क्योंकि इससे उनकी सामान्य दैनिक व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो जाती और उनकी सुरक्षाकी भावनापर भी धक्का लगता, फिर भी बाल-मनोविज्ञानके सभी सिद्धान्तों-के प्रतिकूल ऐसी कोई बात नहीं हुई। मैं केवल अपने और अपनी बहिनोंके विषयमें ही कह सकती हूँ। हम लोगोंके लिए तो उसने मूल्यों-की एक नयी दुनिया ही खोल दी जिसमें हम विश्वास कर सकती थीं और जिसके सहारे जी सकती थीं।

वियोगकी अवधिके बीच-बीचमें बड़ी निराशा और दुःखका समय उपस्थित हो जाया करता था। माताको अपने निकट न देखकर मैं व्याकुल हो उठती थी और उनके बिना लुक-छिपकर रोया करती थी, क्योंकि ऐसी बातोंके लिए उजागर रोना उस सिद्धान्तके विरुद्ध था जिसका अनुसरण करना हमारे परिवारने स्वेच्छासे अपने लिए लाजिमी मान लिया था, किन्तु निराशा और कमजोरीकी ऐसी प्रत्येक घटनाके बाद हमारे इस विश्वासको और भी अधिक बल मिलता था कि हमारे माता-पिता जो कुछ कर रहे हैं वही उचित है। इसलिए जो समय हम लोग परिवारके सब लोगोंके साथ मिल-जुलकर बिता पाते थे, वह और भी अधिक मूल्यवान् प्रतीत होता था, क्योंकि ऐसा अवसर क्वचित् ही मिलता था। इसके परिणाम स्वरूप पारिवारिक जीवन अधिक सुखद, अधिक मिला-जुला और एकता एवं सामान्य आदर्शोंकी प्रबल भावनासे ओतप्रोत हो जाता था। इसलिए हमारी बाल्यावस्थामें, दुःखकी अनेक घड़ियोंके बावजूद—और परियोंकी किस कहानीमें कुटिल दैत्यों तथा जादूगरनियोंका वर्णन नहीं रहता एक—निराला आकर्षण, अपनी विशेष मोहकता भी थी।

राजनीतिसे हमारा सबसे प्राथमिक सम्पर्क भी बिलकुल अरुचिकर नहीं हुआ। एक दिन, जब मैं करीब तीन वर्षकी थी, हम लोगोंको चाय-के साथ चाकलेटकी टिकिया (केक) भी मिली। यह हमें केवल खुश

करनेके लिए दी गयी थी, क्योंकि साधारण तौरसे हमें मक्खन और पावरोटी ही दी जाती थी। वह ज्यादा दामकी, काले रंगकी टिकिया थी, जिसे हम विशुद्ध चाकलेट ही कह सकते हैं। उसके ऊपरी हिस्सेपर चाकलेटकी तरह लहरों जैसे निशान भी बने थे। जब हम लोग चाय पी रहे थे, तभी पुलिसवालोंका एक दल हमारे मकानपर आया। जब लेखाने पूछा कि ये लोग क्यों आये हैं, तब मम्मीने बतलाया कि वे पापूको जेलखाने ले जानेके लिए आये हैं। साथ ही उन्होंने यह भी समझा दिया कि इसके सम्बन्धमें परेशान होनेकी आवश्यकता नहीं, क्योंकि वे स्वयं जेल जाना चाहते थे। इसलिए हम लोगोंने चुम्बन लेकर उन्हें विदा किया और जबतक वे पुलिसवालोंसे प्रसन्नतापूर्वक बातचीत करते हुए बाहर चले नहीं गये, तबतक हम उनकी ओर बराबर देखती रहीं। हमने अपनी चाकलेटकी टिकिया खा ली और तबसे हमारे बाल-मस्तिष्कपर रहस्यमय ढंगसे ऐसा कोई संस्कार-सा जम गया मानो चाकलेटकी टिकियाके साथ बन्दीगृहका विशेष सम्बन्ध हो। ❀

गांधीजीकी शिक्षाके अनुरूप ही यह भूमिका थी, क्योंकि, जैसा कि वे कहा करते थे, बन्दीगृहके साथ कोई अरुचिकर भावना न जुड़ी रहनी चाहिये। गिरफ्तारीके लिए स्वेच्छासे अवसर देना चाहिये और कारावास प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करना चाहिये। उसे कोई ऐसी बुरा चीज न समझना चाहिये जिसे अनिच्छापूर्वक बरदाश्त करना पड़े। जब हम लोग कुछ बड़ी हुईं, तब हमने देखा कि जेल-गमन बड़ी खुशी-की बात समझी जाती थी, दुःखका अवसर नहीं। लोग हँसते-उछलते जेल जाते थे, उन्हें बधाइयाँ दी जाती थीं और एक दूसरेकी पीठ ठोंकी जाती थी। इस अवसरके उपस्थित होने पर अजनबीसे अजनबी आदमी भी हमें मित्रवत् प्रतीत होने लगते थे और आरामकी जिन्दगी बसर करनेवालोंमें भी न मालूम कहाँकी वीरता भर जाती थी। ये जेलयात्री चुपचाप कष्ट भोगनेवाले न होकर गीत गाते हुए चलनेवाले तीर्थयात्रीसे थे, क्योंकि जहाँ-जहाँ गान्धीजी जाते थे,

❀ इसी आधारपर मूल अंग्रेजी पुस्तकका नाम 'प्रिजन एण्ड चाकलेट केक' रखा गया।

उनके पीछे-पीछे 'रघुपति राघव राजाराम' की मंत्रध्वनि गूँजती चलती थी। मम्मी, पापू तथा परिवारके अन्य लोगोंको जेल जाते देखकर हमारे मनमें भी उत्कट इच्छा होती थी कि हम लोग भी जल्दी ही बड़ी हो जायँ ताकि हम भी जेल जा सकें। जेल-जीवन (जैसा कि लेखाको बादमें मालूम हुआ) कोई सुखद अनुभवकी चीज न थी, क्योंकि राजनीतिक बन्दी प्रायः चोरों, हत्यारों तथा कानून तोड़नेवाले अन्य खतरनाक व्यक्तियोंके साथ, कभी-कभी तो कोढ़ियों तकके साथ, नजरबन्द कर दिये जाते थे किन्तु यह यातना भी हमारे पवित्र संग्रामका ही अंग थी, इसलिए कोई इसकी शिकायत नहीं करता था।

राजनीतिके साथ हमारा बादका कुछ सम्पर्क वैसा सुखद नहीं रहा, क्योंकि ज्यों-ज्यों हम बड़ी होती गयीं, त्यों-त्यों हमें माता-पिताके वियोगसे और भी अधिक दुःखका अनुभव होने लगा, किन्तु हम इसबात पर दृढ़संकल्प थीं कि इसका किञ्चिन्मात्र भी आभास उन्हें न होने देंगी।

ऐसा एक मौका उस समय आया जब हमें पहली बार मम्मीसे जेलमें मुलाकात करने जाना पड़ा। वे लखनऊ जिला जेलमें बन्द थीं और यतः हम लोग अभी कम उम्रकी ही लड़कियाँ थीं इसलिए हमें अधीक्षकके कार्यालयमें मिलनेके बजाय जेलकी बैरकमें ही मम्मीसे भेंट करनेकी अनुमति मिल गयी। बैरक लम्बी, तंग और शयनशालासी थी जिसमें अनगढ़ चारपाइयोंकी कतार लगी हुई थी। वहाँ कितनी ही औरतें थीं जो सबकी सब खादी पहिने हुई थीं। उन्हींकी भीड़मेंसे मम्मी भी आती हुई देख पड़ीं और उनके समान ही उन्होंने भी खादीकी साड़ी पहिन रखी थी। विद्युद्गतिसे मेरे मनपर वहाँकी परिस्थितिका प्रभाव पड़ा, जो उससे बिलकुल भिन्न थी जैसी मैं अभीतक देखती आयी थी और उसने एक भद्दीसी छाप मेरे मस्तिष्कपर छोड़ दी। मेरे लिए यह मानना भी काफी मुश्किल था कि जेलसे छुटकारा होने तक हम लोग मम्मीसे पुनः मिल नहीं सकतीं। किन्तु इस गन्देसे हवा-रहित स्थानमें उनके रहनेकी कल्पना करना तो और भी कठिन था।

हमारे मानस-पटलपर माँकी ऐसी ही तसवीर खिंची हुई थी

जिसमें घरकी सुचारु व्यवस्थासे उत्पन्न सौन्दर्यके साथ उनका शाश्वतिक सम्बन्ध परिलक्षित होता हो। हमारी आदत बड़े तड़के ही उन्हें बरामदेमें देखनेकी पड़ी हुई थी, जहाँ वे ताजे तोड़कर लाये हुए गुलाबके फूलोंके बीच बैठकर सामने करीनेसे रखे हुए गुलदानोंमे बड़ी सावधानीसे उन्हें सजाती रहती थीं। जब घरमें सन्ध्याके समय कोई भोज होता था तो हम उनकी उज्ज्वल हास्यधाराको बैठकखानेसे निर्गत होकर चारों दिशाओंमें प्रवाहित होते देखा करती थीं। हम मित्रोंको और जिन्होंने उन्हें पहले कभी नहीं देखा था, उन अजनबी लोगोंको आश्चर्यसे यह कहते सुना करती थीं—"क्या ये ही आपकी माँ हैं? कितनी सुन्दर हैं ये। न्यायकी यह कैसी विडम्बना है कि और सब लोगोंकी तो बात ही छोड़िये, इन्हें भी इस अग्नि-परीक्षामेंसे गुजरना पड़े।"

ऐसा ही एक अरुचिकर स्मृति-चित्र उस समयका है जब सात वर्षकी लेखाको पापू पूनाके एक छात्रावासमें भरती करने लिये जा रहे थे, जहाँ उसे उस समय रहना था जब उन्हें तथा मम्मीको कुछ ही समय बाद जेलमें जाना पड़ता। यह भी तय हुआ था कि कुछ समय बाद मैं और रीता भी लेखाके पास चली जायँ। लेखा हाथमें एक लम्बासा बाँस थामे हुए, जिससे कांग्रेसका झण्डा लहरा रहा था, रेलगाड़ीमें बैठ गयी।

"इतना बड़ा डण्डा हाथमें क्यों पकड़े हुए हो, बेटी? तुम थक जाओगी"—मम्मीने कहा जो उसे भेजनेके लिए स्टेशन तक गयी थीं।

लेखाने पलक मारकर उमड़ते हुए आँसुओंको रोक लिया और प्रसन्नताकी मुद्रा धारणकर मुसकराहटके साथ जवाब दिया "कोई बात नहीं मम्मी। पुलिसको डरवानेके लिए मैं उसे हाथमें लिये हुई हूँ, समझीं न?"

वह घर जिसपर राजनीतिकी सबसे अधिक छाया पड़ी हो, कितनी ही असाधारण घटनाओंका स्थल बन जाता है। कई वर्षोंके बाद, एक रातको जब सन् १९४२ का आन्दोलन चल रहा था, हमारे घरमें "राजद्रोहात्मक साहित्य" की तलाशी लेनेके लिए पुलिसके आनेकी प्रतीक्षा की जा रही थी। वे कागजपत्र केवल इसलिए "राजद्रोहात्मक" मान

लिये गये थे, क्योंकि कांग्रेस कार्यालयने उन्हें प्रकाशित किया था किन्तु दरअसल ये ऐसी चौपतियाएँ थीं जो विभिन्न समयोंपर प्रकाशित की गयी थीं जिनमें जनतासे बारबार आग्रहपूर्वक अपील की गयी थी कि वह किसी भी तरहके हिंसात्मक कार्यमें प्रवृत्त न हो। वह ऐसा समय था जब जनतामें काफी उत्तेजनामयी भावनाएँ फैली हुई थीं, अतः हिंसाकी छिटफुट घटनाएँ यदि खुले विद्रोहका रूप ग्रहण कर लेतीं तो उनका नियन्त्रण करना मुश्किल हो जाता, क्योंकि सभी नेता जेलोंमें बन्द कर दिये गये थे। मम्मी उन दो चार प्रभावशाली व्यक्तियोंमें थीं जो जेलके बाहर रह गये थे। उक्त पुस्तिकाओंका वितरण करनेके लिए उन्होंने अपने आपको जिम्मेदार महसूस किया, क्योंकि उन्हीं पर देशकी शान्ति निर्भर थी। पुलिसके सम्भावित आगमनकी पूर्व सूचना उन्हें मिल चुकी थी, अतः सभी पुस्तिकाओंकी सैकड़ों प्रतियाँ हमारे गद्दोंके नीचे छिपा दी गयी थीं और हमें निद्राभिभूत होनेका बहाना करनेके लिए कह दिया गया था। वे नहीं चाहती थीं कि पुलिस उन्हें प्राप्त कर ले, क्योंकि उन्हें फिरसे छपवाना मुश्किल था और उसमें खर्चा भी काफी पड़ता। अवश्य ही उनका पता चल जानेपर उनका (मम्मीका) तुरन्त ही गिरफ्तार कर लिया जाना भी निश्चित था, किन्तु यह एक ऐसी बात थी, जो देर-सबेर अवश्य ही होनेवाली थी, इसलिए गिरफ्तार होनेके लिए वे पूरी तरहसे तैयार थीं। पुलिस जब पहुँची, तब मम्मीने सामनेके बरामदेमें ही उससे मुलाकात की।

पुलिसदलका मुखिया ऊँचा पूरा युवक था जिसके परिवारसे मम्मीकी अच्छी जान-पहचान थी, किन्तु उस समय तो वह बहुत कुछ पुलिस अफसरके ही रोबमें था, दूर-दूर रहनेवाला, शिष्टता तथा जाप्तेकी पाबन्दीका ध्यान रखनेवाला। अपने लक्ष्यके सम्बन्धमें थोड़ी-सी परेशानीका अनुभव करते हुए उसने कहा—"हमें सूचना मिली है कि आपके इस घरमें कुछ राजद्रोहात्मक साहित्य रखा हुआ है। हम उसकी तलाशी लेना चाहते हैं।"

मम्मी बड़ी प्रत्युत्पन्नमति और सूझबूझवाली महिला तो हैं ही। पहले वे मधुर ढंगसे मुसकरायीं। फिर बोलीं "जी हाँ, कुछ साहित्य मेरे यहाँ था तो जरूर किन्तु यदि आपका आशय इस चीजसे हो"—

और यह कहते हुए उन्होंने अपनी जेबसे एक गुड़मुड़ायी हुई पुस्तिका निकाल ली—"तो मुझे कहना चाहिये कि आप कुछ देरसे पहुँचे। कई घण्टे पहले ही ये इधर-उधर बाँट दी गयीं।"

यह एक तरहका दाँव था पर वह काम कर गया। मुखियाने पुस्तिकाको उलट-पुलटकर देखा और फिर परेशान तथा हतबुद्धि-सा होकर रह गया। "जी, यदि ऐसी बात है तो" बुदबुदाते हुए उसने कहा "हम इसके लिए अपना समय नष्ट न करेंगे।"

उसके जानेके कुछ ही समय बाद पुस्तिकाएँ सचमुच बाँट दी गयीं। यह काम आसान न था, क्योंकि उन दिनों मकान तथा बगीचेके चारों तरफ खुफिया पुलिसके आदमी तैनात थे।

थोड़े ही दिनोंके बाद मम्मी गिरफ्तार कर ली गयीं। यद्यपि कई सप्ताह पहलेसे ही हम उसकी प्रतीक्षा कर रही थीं पर हमने कभी इसकी कल्पना नहीं की थी कि ये इस तरह गिरफ्तार की जायँगी जिस तरह कि की गयीं। कुछ कारणोंसे पुलिस अपना काम रातको करना पसन्द करती थी, सम्भवतः यह सोचकर कि उस समय जनताका प्रदर्शन होनेकी कम ही सम्भावना थी। एक दिन अगस्तकी गरम रातमें दो बजे सशस्त्र पुलिसवालोंसे भरी हुई सात ट्रक गाड़ियाँ मम्मीको जेलखाने ले जानेके लिए मकानपर आ पहुँची। मम्मीने हम लोगोंको जगा दिया और हमने उनका कुछ जरूरी सामान जुटाकर एक छोटे सूटकेसके भीतर रखनेमें मदद दी और तब उन्हें बिदा देनेके लिए हम बाहर आयीं। वह एक हास्यास्पद सी स्थिति थी। मध्यरात्रिके सन्नाटेमें खाकी वर्दी पेहने हुए सिपाहियोंकी पंक्तियाँ और पल्टनकी सात लारियाँ चुपचाप इस उद्देश्यसे प्रतीक्षा कर रही थीं कि एक ऐसी निरस्त्र और अरक्षित महिलाको गिरफ्तार करें जिसका व्रत अहिंसा सिद्धान्तका पालन करना था। इतनी ताकत थी अहिंसाके एक सिद्धान्तमें! मोटरमें बैठकर जब ये रवाना हुईं तब हम लोगोंने हाथ हिलाकर उन्हें बिदाई दी। उतनी बड़ी गारदके बीच वे सुन्दर किन्तु ऐसी दुर्बलसी तथा असहाय देख पड़ती थीं जैसी शायद ही कभी दिखाई दी हों।

× × ×

गान्धीजीसे जब बिलकुल पहली बार मेरी भेंट हुई तो मुझे वे अच्छे

नहीं लगे। मैं उस समय चार वर्षकी थी जब ये इलाहाबादमें थे और मामूके मकानमें रहते थे। मुझे स्मरण है कि किस तरह सीढ़ियोंको मेहनतसे पार करती हुई मैं उस खुले बरामदेमें पहुँची थी जहाँ उनकी प्रार्थना-सभा हुआ करती थी। अपने हाथकी एक मुट्ठीमें जो पसीनेसे तरबतर हो गयी थी, मैं गुलाबके लाल फूलोंका गुच्छा दाबे हुई थी।

"देखो, यह बात याद कर लो कि ये फूल तुम्हें बापूके हाथमें देना है" मेरी माँने मुझे सिखा दिया। उन्होंने गांधीजीके लिए उसी नाम (बापू) का प्रयोग किया जिससे उनके अनुयायी उनका सम्बोधन करते थे।

मैंने समझा कि उन्होंने पापू अर्थात् मेरे पिताका नाम लिया, इस-लिए गुलदस्ता लिये हुए मैं उनके पास दौड़ गयी। मम्मीने खींचकर मुझे छोटी आकृतिवाले उस पुरुषके सामने खड़ा कर दिया जो सफेद तकियेके सहारे भूमिपर बैठा हुआ था।

"ये तो बदशकल हैं" मैंने विरोध करते हुए जोरसे कह दिया "मैं ये फूल उन्हें नहीं देना चाहती।"

मैं फूलोंको दृढ़तापूर्वक पकड़े रही और उनकी तरफ घूरकर देखती रही। बापू ठहाका मारकर हँस पड़े और उन्होंने मेरे गालपर हलकी-सी चपत लगा दी—जो उनका स्नेह प्रदर्शित करनेका तरीका था,—फिर बोले—"मुझे आशा है कि तुम इसी तरह सचाईसे व्यवहार किया करोगी।" मैं उनके समीपसे पीछे हट आयी और आकर पिताजीके पास बैठ गयी। उस प्रार्थना-सभामें मुझे कोई आनन्द नहीं आया। इतनी देर तक शान्त बैठे रहना मेरे लिए कठिन परीक्षा जैसी बात थी। मेरे पाँवमें झुनझुनी चढ़ गयी और मैं बारबार बेताव होकर हिलती-डुलती उठती-बैठती रही। मैंने पिताजीसे कह दिया कि ऐसी अन्य-सभामें मैं हरगिज न जाऊँगी।

किन्तु मैं अन्य प्रार्थना-समाजोंमें आखिर गयी ही और कई वर्षोंके बाद ऐसी एक सभामें मैंने बापूके लिए एक गीत भी गाया था।

तीसरा अध्याय

भारतमें बच्चोंका रहन-सहन

अमेरिकामें लोग हमसे अक्सर पूछा करते थे कि भारतमें हम लोग किस तरह रहती थीं और हमने अपने बचपनकी एक झलक उनके सामने रखनेकी चेष्टा की।

ऐसा करनेके लिए हमें उन्हे काल्पनिक रूपसे उस इलाहाबाद नगरमें पहुँचाना पड़ा जो प्राचीन कालमें प्रयाग कहलाता था और जो भारतके उत्तर-पूर्वी क्षेत्रमें उत्तरप्रदेश नामक प्रान्तमें स्थित है। इसकी जनसंख्या लगभग २ लाख ६० हजार थी। इसकी संस्कृति रामायण-कालकी प्राचीन सभ्यता और उसके बहुत बादके मुगलकालीन प्रभावका संमिश्रण थी। रामको कैकेयीने बनवास दे दिया था क्योंकि वह अपने पुत्र भरतको ही अयोध्याका युवराज बनाना चाहती थीं। भरतके हृदयमें रामके प्रति सच्ची भक्ति तथा अनुराग था, अतः उन्होंने राज्य लेना अस्वीकार कर दिया और रामको वापस लानेके लिए चल पड़े। वे प्रयागमें उनके पदचिह्नोंकी वन्दना करते हुए ही चित्रकूट गये थे। इस घटनाके हजारों वर्ष बाद जब अकबरने सारे देशको जीतकर एक विशाल साम्राज्य स्थापित कर लिया, तब उसने इसका नाम बदलकर अल्लाहाबाद (अल्लाहका निवास-स्थान) कर दिया। तबसे यही नाम (या इसका बिगड़ा रूप इलाहाबाद) चल पड़ा, जो आज भी प्रचलित है। आज बड़ी लाइनपर इसके दो स्टेशन हैं—एक तो इलाहाबादका मुख्य स्टेशन है, दूसरा १५–२० मिनटमें मोटरगाड़ी द्वारा पहुँचने योग्य स्थानपर है जो प्रयागका स्टेशन कहलाता है।

पहले हम लोग आनन्दभवनसे कुछ ही दूरपर रहते थे। यह हमारे नाना-नानीका मकान था, जिसमें गहरे हरे रंगके किवाड़ लगे हुए थे, छायादार पेड़ोंका बगीचा और दूर्वाक्षेत्र (लान) था जिसके किनारे-किनारे गुलाबके पौधे लगे हुए थे। यही वह मकान था जहाँ रीताका

जन्म हुआ था। इसके कुछ ही बाद पापूने गांधीजीके आन्दोलनमें सम्मिलित होनेके उद्देश्यसे वकालतका परित्याग कर दिया था।

प्रतिदिन सबेरे लेखा और मैं पापूके साथ उनकी उँगली पकड़े तथा दायें-बायें रहकर, बागमें टहलती थीं, सन्ध्याके समय हम उनके घोड़ेके खुरोंकी आवाज, जो मकानतक आनेवाले चिकने रास्तेपर उसके चलनेसे होती थी, बड़ी उत्कंठाके साथ सुननेको व्यग्र रहती थीं। पापू प्रतिदिन घोड़ेपर चढ़कर जाते थे और उनके लौटनेका वक्त होनेपर हम घोड़ेको खिलानेके लिए चीनी लगी रोटी तथा गाजर हाथमें लेकर उनकी प्रतीक्षा करती थीं।

मम्मी तथा पापू अन्य युवक-दम्पतिकी ही तरह रहते थे और मित्रों-का दावत-तवाजा किया करते थे, क्योंकि राजनीतिकी चादरने उनके जीवनका एक कोना ही अभी छुआ था, उसके समस्त भागको आवृत्त नहीं किया था। दावत-तवाजेकी रातें हमारे लिए बड़ी खुशीकी रातें होती थीं, क्योंकि हम चुपचाप पाकशालामें घुस जाती थीं और अपने कभी दूर न होनेवाले साथी बुद्धीसे जो रसोइया था, भोजके लिए तैयार किये जानेवाले पदार्थोंमेंसे कुछकी फरमायश कर बैठती थीं। महीन पीसे हुए गोश्तका बना गरम गरम कबाब जिसमें अदरक, इलायची, लौंग तथा लाल मिर्चोंका पिसा हुआ मसाला पड़ा था, बढ़िया सिंके हुए सुनहले समोसे, जिनके बाहरी ढाँचेके भीतर मटर तथा नये आलू-गोभीके मुलायम टुकड़े भरे हुए थे, केशर डालकर पकाया हुआ खुशबू-दार (देहरादूनी) चावल जिसमेंसे अभी भाप निकल रही थी, जिसका एक एक लम्बा दाना दूसरेसे अलग दिखाई देता था और जिसपर छिलका उतारे हुए बादामके सफेद टुकड़े भुरक दिये गये थे, बढ़िया मुलायम बोटियोंको पकाकर बनाया हुआ शोरबेदार गोश्त जिसमें खूब घी और मसाला डाला गया था, मलाई पड़े भैंसके दूधमें बनी बढ़िया खीर जो मिट्टीकी तश्तरियोंमें सजायी गयी थी और जिसपर चाँदीका वरक चिपका दिया गया था तथा पिश्तेके छोटे-छोटे टुकड़े छिड़क दिये गये थे। समस्त पाकशाला काश्मीरी भोजन द्रव्योंकी तीव्र महँकसे गमक रही थी।

भोजन करनेके लिए रखी गयी मेजोंपर चाँदीकी चमचम करती

हुई थालियाँ तथा कटोरियाँ, जिनपर बढ़िया पालिश की गयी थी, सजाकर रखी गयी थीं। इन्हींमें भोजन परोसा जानेवाला था। भोजनके बाद अतिथियोंको पान दिया जानेवाला था।

इन पार्टियोंमें अक्सर तो नहीं पर कभी-कभी मामू भी आ जाया करते थे। एक बार जलपानकी एक पार्टीमें उन्होंने ऐसी भूल कर दी जिससे मम्मीको शरमिन्दा होना पड़ा। उन्होने मुख्य महिला अतिथिकी ओर लक्ष्य करते हुए पहले तो उनका नाम श्रीमती 'होपफुल' (आशा-युक्त) कहा और फिर 'होपलेस' (आशाविहीन) कह गये, जो और भी भद्दी बात हो गयी। वास्तवमें उक्त महिलाका नाम 'होपवेल' (अच्छी आशा करनेवाली) था।

हमारे माता-पिता ही हमारे जीवनके केन्द्र-विन्दु थे, जैसे कि प्रायः सभी माता-पिता होते हैं। मम्मी सौन्दर्ययुक्त, स्नेहयुक्त एवं बुद्धिमती महिला थीं। उनकी मौजूदगी सूरजकी रोशनीके समान थी जिसमें हम बराबर बढ़ती ओर फूलती खिलती रहीं। जब वे किसी कमरेमें प्रविष्ट हो जाती थीं, तब वह स्थान ही प्यारा घर बन जाता था। जब वे मामूलीसा भोजन तैयार करनेमें भी अपना हाथ लगा देती थीं, तब वही स्वादिष्ठ और बहुमूल्य भोजन बन जाता था। उनके पथ-प्रदर्शनमें हम अत्यन्त दुःखप्रद अग्नि-परीक्षाका भी दृढ़तासे सामना करनेको तैयार हो जाती थीं। हम उनकी प्रशंसा करते कभी नहीं थकती थीं।

यह एक लोक-प्रसिद्ध बात है कि किसी धन्धेमें, विशेषकर राजनीतिक जीवनमें, पड़ जाड़ेपर नारीका नारीत्व बहुलांशमें अपहृत-सा हो जाता है। किन्तु हमारी मातापर इसका ऐसा कोई भी प्रभाव नहीं पड़ा। वे मामूली-सी चीजोंसे गजबका स्वादिष्ठ भोजन तैयार कर देने, फूलोंकी सजावट तथा घरके भीतरकी सफाई और शोभा बढ़ाने एवं सब बातोंके प्रस्तुत करनेमें जिनके कारण ही कोई घर "स्वगृह" की संज्ञा प्राप्त करता है, अब भी अभूतपूर्व कौशल प्रदर्शित करती हैं। और वे आज भी नारीत्वके सम्पूर्ण गुणोंसे सम्पन्न ऐसी महिला कही जा सकती हैं जो अपनी सानी नहीं रखतीं—लावण्यमयी एवं सुगठित अंगोंवाली, जो कठिनसे कठिन काम करते हुए भी इतना समय निकाल

लेती हैं और इसका यत्न भी करती हैं कि वे हमेशा तरोताजा तथा कमनीय देख पड़ें।

जब भारतमें विदेशी वस्तुओंके बहिष्कारका आन्दोलन चला तब देशकी अन्य बहुत-सी स्त्रियोंके साथ-साथ मम्मीने भी खादीकी मोटी सफेद साड़ी पहनना शुरू किया। उन दिनों खादी उतनी नहीं बनती थी, जितनी बादमें इधर बनने लगी। नववधूके रूपमें प्राप्त उनकी सुन्दरसे सुन्दर और बहुमूल्य साड़ियाँ तथा उनके तमाम मनोमोहक आभरण पेटियोंमें ही बन्द पड़े रहे। नारीकी सौन्दर्यवृद्धिसे परिधान और अलंकारोंका इतना कम ताल्लुक शायद ही और किसीके मामलेमें रहा हो। मोटे कपड़े धारण किये हुए तथा उन सब अलंकारोंके बिना भी, जो परम्परासे हिन्दू नारीको पहनने पड़ते हैं, उनके सौन्दर्यमें कमी नहीं हुई बल्कि वे पहलेसे भी अधिक आकर्षक प्रतीत होने लगीं।

पापू एक ऐसे व्यक्ति थे जिनमें बहुतसे असाधारण गुणोंका सम्मिश्रम था। वे संस्कृतके विद्वान् थे और उन्होंने संस्कृतकी कितनी ही पुस्तकोंका अंग्रेजीमें अनुवाद किया था। वे सुचतुर बहुभाषाविज्ञ थे जो यूरोपकी तथा भारतकी कई भाषाएँ बोल लेते थे। किन्तु विद्वानोंकी तरह एकान्त जीवन बितानेकी उनकी आदत न थी। वे खुशमिजाज तथा हास्यप्रिय थे। उन्हें भारतीय तथा यूरोपीय दोनों तरहके संगीतसे प्रेम था। उनकी आवाज, प्रशिक्षाके न होते हुए भी, बड़ी मधुर थी। वे उत्साही खेलाड़ी थे जिन्हें तैरना, घोड़ेपर चढ़ना तथा गोली चलाना आदि बहुत पसन्द था। ऐसे कामोंमें उन्हें बड़ा आनन्द आता था जिनके कारण उन्हें घरके बाहर इधर-उधर आना-जाना या रहना पड़ता। बागवानी उनकी रुचिके अनुकूल काम था। प्रकृतिसे उन्हें विशेष प्रेम था और अपनी कलामें वे ऐसे प्रवीण थे कि उनके लगाये पेड़-पौधे अनायास ही लहलहा उठते थे। जब वे कारागृहोंमें सजा काटते रहते थे, तब अक्सर जेलके प्रांगणमें तरह-तरहके फूलोंके पौधे लगा दिया करते थे जिससे तबीयतको उबा देनेवाली वहाँकी एकवर्णता दूर होकर तरह-तरहके रंगोंकी उज्ज्वल झलक देख पड़ती थी। उनके कारामुक्त हो जानेके बाद भी ये रंग-बिरंगे पुष्प-वृक्ष लगे रहते, जिनसे उनके साथी बन्दियोंका मनोरंजन होता रहता। जेलखानेसे वे हमें लम्बी

चिट्ठियाँ और कहानियाँ भी लिख भेजते थे जिनमें स्याही और कलमसे सुन्दर चित्र भी बने रहते थे।

पापू जैसा व्यक्ति राजनीतिक जीवनके बिलकुल अनुपयुक्त था। देश यदि स्वतन्त्र होता तो उन्होंने अपने लिए राजनीतिक जीवन कदापि न चुना होता। उन्होने बिलकुल दूसरे ही ढंगके काममें हिस्सा लिया होता, किन्तु पराधीन देशकी स्थिति न्यारी होती है। यहाँ राजनीति केवल राजनीतिज्ञोंके ही दायरेकी चीज नहीं रह जाती। प्रत्येक संवेदनशील एवं विचारवान् व्यक्तिके लिए वह जीवन-मरणके प्रश्न जैसी महत्त्वपूर्ण वस्तु बन जाती है। पापूने अनुभव किया कि वे शुद्ध अन्तःकरणके साथ अपना जीवन सरस्वतीकी उपासनामें नहीं बिता सकते। फिर भी जो जीवन उन्हें सबसे अधिक प्रिय था, वही उन्होंने छोड़ दिया। मेरा विश्वास है कि इस आत्म त्यागने भारतके लिए वह दिन और निकट ला दिया, जब वहाँके कलाकार तथा विद्वान् बिना किसी विघ्न-बाधाके अपने-अपने मनोवांछित कार्योंमें तल्लीन रह सकें।

वे कोमल-हृदय एवं बच्चोंपर अभिमान करनेवाले पिता थे। उन्होंने कभी पुत्र पानेकी भी कामना की थी, हम यह कभी जान नहीं सकीं। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि लड़कियोंकी भी परवरिश और शिक्षा मुख्य रूपसे वैसीही होनी चाहिये जैसी बालकोंकी होती है। ऐसे देशमें जहाँ बालकोंको, बालिकाओंकी तुलनामें कहीं ज्यादा शिक्षा, अधिक अवसर तथा स्वतन्त्रता दी जाती है, उनका जैसा रुख मुश्किलसे ही किसीमें देख पड़ता है।

वे बड़ी सहिष्णु प्रकृतिके थे, किन्तु एक चीज ऐसी थी जिसे वे कदापि बर्दाश्त नहीं कर सकते थे और जिसे देखते ही उनके क्रोधकी आग तुरन्त भड़क उठती थी। इसे वे "परदेकी मनोवृत्ति" कहते थे। इससे उनका आशय ऐसी विचारधारासे था जो स्त्रियोंको एकान्तमें रखने या उनके दमनका समर्थन करता था या जो उन्हें विशिष्ट अधिकारोंसे वंचित रखना चाहता था।

पश्चिमी भारतमें, जहाँके वे रहनेवाले थे, स्त्रियोंको उत्तरकी अपेक्षा हमेशासे ही अधिक आजादी प्राप्त थी। पापू उत्तरप्रदेशकी अधिक

कट्टरतापूर्ण सांस्कृतिक परम्पराओंके अविचल विरोधी थे। उन्हें वे मुगल सभ्यताके शीघ्रतासे दूर होते जानेवाले अवशेषसे प्रतीत होते थे, जो कहानी तथा कवितामें भले ही अच्छे लगें, किन्तु जो आधुनिक जीवनसे बिलकुल असम्बद्ध हो चुके हैं।

उनके विचार सुनकर यदि कोई व्यक्ति भौंचक्का रह जाता तो वे शुष्कतापूर्वक कह उठते थे "आश्रय केवल उन्हें ही चाहिये जो जरा-जीर्ण, असमर्थ एवं दुर्बल हृदय हों। स्वस्थ, सावधान एवं सामान्य युवक-युवतियोंके लिए इसकी आवश्यकता नहीं।"

कवियों जैसी पैनी प्रकृतिका होनेकी वजहसे उन्होंने हम लोगोंके नाम भी बड़े सुन्दर चुने। लेखाका नाम वास्तवमें "चन्द्रलेखा" रखा गया था जिसका मतलब होता है "चन्द्रमाकी कला"। वह संस्कृतमें लिखित "राजतरंगिणी" नामक कश्मीरके इतिहाससे लिया गया था, जिसका अंग्रेजी अनुवाद पापूने किया था। मेरा नाम रखा गया "नयन तारा" (नेत्रोंकी पुतली)। मेरा नामकरण उस महिलाके अनुकरणपर रखा गया था जो सबसे प्रथम मवक्किलके रूपमें अपना मामला उनके पास लायी थी और जिसकी पैरवी कर पापूने जिता दिया था। रीता वस्तुतः 'ऋत' का बिगड़ा हुआ रूप है जिसका अर्थ संस्कृतमें "सत्य" होता है।

रीता अपने नामसे सन्तुष्ट नहीं थी, क्योंकि वह हम दोनोंकी तरह लम्बा नाम पसन्द करती थी। जब वह चार वर्षकी अवस्थामें कश्मीर गयी तो उसने वहाँ सुना कि कश्मीरी लोग झेलम नदीको "वितस्ता" कहते हैं।

इसपर वह चिल्ला उठी "मैं चाहती हूँ कि मेरा दूसरा नाम वितस्ता हो। "बहुत सुन्दर विचार है" कहकर पापूने भी उसका अनुमोदन किया और तभीसे उसका नाम पड़ गया—रीता वितस्ता।

पापूका पैतृक घर राजकोट, काठियावाड़में था, जो भारतीय वीरोंकी रम्य भूमि रही है। उनका परिवार पहले बम्बूली ग्राममें रहता था, जो महाराष्ट्रमें रत्नगिरि तटपर अवस्थित था। भारतके ये दो क्षेत्र, जो एक दूसरेसे बिलकुल भिन्न तरहके थे, सम्मिलित रूपसे उस पृष्ठभूमिके निर्माणमें सहायक हुए जिसमें उनके चरित्रका विकास हुआ। उनमें

पायी जानेवाली कितनी ही परस्पर विरोधिनी बातों तथा जटिलताओंको छाया पापूके चरित्रमें भी देखी जा सकती है।

मराठा लोग लक्ष्यपर डटे रहनेवाले, कठिनाइयोंके सामने न झुकनेवाले तथा पुरुषार्थपूर्ण होते हैं और उन्हें कठोर अनुशासनमें रहनेका अभ्यास रहता है। इसी भूमिमें सुप्रसिद्ध वीर शिवाजीका जन्म हुआ था जो मुगलोंके कट्टर शत्रु थे और जिन्होंने औरंगजेबके फैलते हुए शिकंजेसे मराठा भूमिको बचाये रखनेके के लिए भयंकर युद्ध किया था।

जन्मभूमि रत्नागिरीमें पंडितोंका परिवार एक प्रतिष्ठित परिवार माना जाता था। हमारी दादी गोपिकाने उस सर्वोच्च आशीर्वचनको पूरा कर दिखाया जो विवाहके समय हिन्दू वधूके लिए उच्चरित किया जाता है—वे आठ पुत्रों तथा पाँच पुत्रियोंकी भाग्यशीला जननी थीं। जब वे अपनी आठों बहुओंके साथ मन्दिरमें पूजा करने जाती थीं, तब उनकी बिरादरीके सभी लोग उनके सौभाग्यकी सराहना कर दंग रह जाते थे। गोपिकाकी इतनी ख्यातिका एक और भी कारण था। अपने ग्रामकी वही अन्तिम महिला थीं जो पतिकी मृत्युके बाद सती हुई थीं। उनकी स्मृतिमें एक समाधि भी बना दी गयी है।

ऐसे दृढ़ और पुरुषार्थपूर्ण वातावरणमें पापूके पिता सीतारामका विकास हुआ और जब वे कानूनकी शिक्षा समाप्त कर लन्दनसे वापस लौटे तो उन्होंने विवाह किया। बादमें उन्होंने अपनी पत्नी, रुक्मिणी देवी, सहित रत्नगिरि छोड़ दिया और काठियावाड़ चले आये जहाँ वकालत करनेके लिए अधिक अनुकूल स्थिति थो।

काठियावाड़में छोटी-छोटी रियासतोंका जाल-सा बिछा हुआ था और वे सभी अंग्रेजी प्रभावमें थीं। नये रीति-रिवाजों, नयी भाषा तथा एक तरहका पश्चिमी रहन-सहन देखकर भी, जिसका उन्हें इसके पूर्व कोई ज्ञान न था, हमारी महाराष्ट्रीय दादी तनिक भी विचलित नहीं हुईं। नया रास्ता बना लेनेकी अपने पूर्वजोंकी क्षमता प्रदर्शित कर उन्होंने अपने आपको शीघ्र ही नयी परिस्थितियोंके अनुकूल बना लिया। इधर तो सीतारामजीने अपना नाम बढ़ाया और विद्वत्ताके कारण सम्मान प्राप्त किया, उधर रुक्मिणीजीने घोड़ेपर सवारी करना

तथा किसी भी पुरुषकी तरह कुशलतापूर्वक तीर चलाना सीख लिया। उनके मकानपर नित्य ही अनेक लोग मिलने आया करते थे। राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त करनेके बहुत पहलेसे ही गांधीजी अक्सर यहाँ जाया करते थे।

राजकोट राज्यके राजकीय वातावरणमें ही उनके पुत्र रणजीतका विकास हुआ, जिनका रहन-सहन स्वयं किसी युवक राजकुमारसे कम न था। काठियावाड़ उज्ज्वल लोक-साहित्य, आह्लादकारी गीतों तथा मनोरम नृत्योंका देश है अर्थात् भारतीय जीवनमें जो कुछ भी आनन्द-पूर्ण, कलामय एवं चिन्ता विहीन है, वह वहाँ विद्यमान है। इन बातोंकी छाप रणजीतपर भी पड़ी। उन्हें वह अच्छीसे अच्छी शिक्षा दी गयी जो पश्चिमी भारतके महाविद्यालय किसी असाधारण योग्यतावाले विद्यार्थीको दे सकते थे। उन्होंने विद्याभ्यासमें ही नहीं, खेलकूदमें भी विशेष स्थान प्राप्त किया। देशके बाहर जानेपर भी उनकी यह ख्याति-परम्परा जारी रही, जब वे आक्सफोर्डके क्राइस्ट चर्च कालेजमें पढ़ने गये और बादमें गर्मीकी छुट्टियोंमें सोरबोनमें तथा हाइडेलबर्ग विश्व-विद्यालयमें स्नातकका प्रमाण-पत्र ले चुकने पर, लन्दनकी शिक्षण संस्था मिडिल टेम्पिलमें प्रविष्ट हुए। हाइडेलबर्गके तथा जर्मन संगीत और जर्मन भाषा सम्बन्धी संस्मरण उनके छात्र जीवनकालकी सबसे सुखद स्मृतियोंमें से हैं।

मम्मीके साथ विवाह हो जानेपर पापूने उत्तरप्रदेशमें रहनेका निश्चय किया जो राष्ट्रीय आन्दोलनका प्रमुख केन्द्र था। इसलिए हम लोगोंका पालन-पोषण अपनी माताके घरमें कश्मीरी परम्परामें हुआ, जहाँ कश्मीरी रीति-रिवाजोंका प्रचलन था और जहाँ हमें मराठीके बजाय हिन्दी तथा उर्दूमें बातचीत करनी पड़ती थी। किन्तु पापूके जीवनकी पूर्व पीठिकाका प्रभाव भी हमारे ऊपर पड़े बिना न रहा, क्योंकि उत्तर-प्रदेशके बोलने-बैठनेके सुसंस्कृत तरीकोंके साथ उन्होंने मराठोंकी पराक्रम शीलता और काठियावाड़की अपूर्व आनन्दमयी वृत्तिका अपरिहार्य मेल करा दिया। अपने प्रान्त और पैतृक उत्तराधिकारसे स्वयं अपनी इच्छासे ही वे हटे थे, फिर भी वे बराबर उसका स्वप्न देखा करते थे। उत्तरप्रदेशमें अपना निवास बना लेनेपर भी वे अपने लड़कपनके

घरकी तथा अपने उन भाई और बहिनोंकी उत्सुकतापूर्वक याद किया करते थे जिन्हें वे हृदयसे चाहते थे, किन्तु जिन्हें अब वे बहुत कम ही देख पाते थे, क्योंकि उन लोगोंको आश्चर्यमें डालते हुए वे अब कांग्रेसमें शामिल हो गये थे। जिस महान् लक्ष्यके लिए काम करनेका निश्चय उन्होंने किया था, उसके पीछे उन्होंने अपने आपको जी-जानसे भिड़ा दिया था। उसका उन्हें कोई अफसोस न था,किन्तु मुझे ऐसा लगता था मानो वे घरवालोंसे पृथक रहनेके कारण भीतर ही भीतर अस्तव्यस्तसे रहते हों। सम्भवतः समस्त परिवारको ही गांधीजीके उसी प्रभाव क्षेत्रमें लानेकी उनकी उत्कट अभिलाषा थी, जिसमें वे स्वयं मंत्रमुग्धसे होकर प्रविष्ट हो चुके थे और जिसके जादूने उन्हें बन्दी सा बना रखा था। अपने भाई-बहिनोंमें ये ही सबसे छोटे थे और इनपर उन लोगोंका विशेष अनुराग था, अतः यह बात उनकी समझमें ही नहीं आती थी कि उन्होंने क्यों अपना घर छोड़ा और उस पेशेका परित्याग कर जिसमें वे सफल हुए थे, क्यों एक अनिश्चित जीवन अपनानेका निश्चय किया।

पापूको खाली नामक स्थान बहुत प्रिय था। यह कुमाऊँके पहाड़ी क्षेत्रमें अलमोड़ेके पास ऊँचाई पर स्थित था। राजनीतिके शोरगुलसे बचनेके लिए वे चुपचाप वहाँ चले जाया करते थे। यद्यपि रेलगाड़ी या मोटरकार द्वारा वहाँ जाना सम्भव न था (यात्राके आखिरी चन्द मील या तो पैदल चलकर या घोड़ेपर सवार होकर तय करने पड़ते थे) और यद्यपि बीच-बीचमें यहाँ सूखा पड़ जानेसे तथा आधुनिक सुविधाओंके अभावसे कष्ट उठाना पड़ता था, फिर भी पापूने उसे सुन्दर निवास बना देनेमें सफलता प्राप्त की, जहाँ हम लोग गर्मीकी छुट्टियाँ बड़े मजेमें बिता सकती थीं। खाली हमारे लिए सुखी पारिवारिक जीवनका केन्द्र बन गया। वह उन दो चार स्थानोंमेंसे था जहाँ हम सब लोग कुछ समयतक इकट्ठे रह सकते थे और यहाँ हमारे माता-पिता जिम्मेदारी, कार्य और चिन्ताके भारसे मुक्त होकर आराम कर सकते थे।

"खाली" का नाम लेते ही हमें उन सन्ध्याओंका स्मरण हो आता है जब हम लोग बरसातीमें बैठकर रात्रिके पूर्वका भोजन किया करती

थीं और यहींसे डूबते हुए सूर्यको हिमालयकी हिमाच्छादित चोटियोंपर अपनी स्वर्णिम किरणोंको बिखेरते देखती थीं। यह भी स्मरण हो आता है कि किस तरह शामके वक्त रहनेके कमरेमें चीड़के फलोंकी आग खुशबू फैलाते हुए चटचटकर जला करती थी, किस तरह घरके चारों ओरके जंगलमें स्थित विविध रमणीक स्थानोंमें जाकर हम लोग वन-भोजका आयोजन करती थीं, पहाड़ी नदियोंका जैसा शुद्ध मीठा, बर्फ जैसा ठण्ढा और चमचमाता हुआ जल हम पिया करती थीं, चेरी, खूबानी तथा आडूके चहारदीवारीसे घिरे हुए बगीचोंमें कैसे स्वच्छन्द-भावसे हम लोग खेला करती थीं, उन निर्जन पहाड़ी पथोंपर किस तरह हमें कभी कभी सूर्यास्तके समय शिकारके फेरमें बड़ी अदासे विचरण करता हुआ पीला-लालसा तेंदुआ दिखाई पड़ जाता था और इन सबके ऊपर हमें उन पतले लम्बे चीड़के वृक्षोंका स्मरण हो आता है जिनमें गरम मसाले जैसी खुशबू होती थी—गीतके स्थायी पदकी तरह उनकी शकल, उनकी सुगन्ध और उनकी चटचट आवाज मनके झरोखेके सामने बारबार चक्कर काटने लगती है।

खालीमें प्रतिदिन सन्ध्या समय मम्मी रामायणके कुछ अंश पढ़कर हम लोगोंको सुनाती थीं। उसके कितनेही संगीतमय पद्य हमने जबानी याद कर लिये थे। यह बहुत ही उचित प्रतीत होता था कि भारतके प्राचीन गिरि हिमालयकी पृष्ठभूमिमें हम उसकी प्राचीन संस्कृतिसे भी परिचित हो जायँ और दोनों ही दृष्टियोंसे उसका मूल्यांकन करना सीख लें—एक तो साहित्यकी दृष्टिसे और दूसरे शताब्दियों पुराने उस तरीकेकी दृष्टिसे जिसका सम्बन्ध भारतीय होनेके नाते हमारे जीवनसे था।

इस समय हम जब भी पापूका ख्याल करती हैं,हमारे सामने उनका खालीके जीवनका चित्र ही सामने आता है, क्योंकि उनके बहुमुखी व्यक्तित्वके लिए खाली ही उपयुक्त ढाँचा हो सकता था। वहाँ वे चीड़के उन वृक्षोंके बीच जिन्हें वे प्यार करते, रह सकते और स्वतन्त्रतापूर्वक एवं आनन्दके साथ श्वास ग्रहण कर सकते थे, धूपमें कितने ही दिन लगातार बितानेके कारण उनका चमड़ा झुलसकर काला-सा पड़ गया

था। घर और बागमें उनके बारबार हँसनेको तथा गीतके आधे गाये हुए अंशोंकी आवाज गूँज उठती थी।

जब भी अपने कामसे ये कुछ दिनोंका अवकाश ग्रहण कर सकते, पापू अकेले ही खालीके लिए चल पड़ते। वहाँसे वे हमें लम्बी-लम्बी चिट्ठियाँ भेजा करते थे जिनमें राष्ट्रकी सामयिक स्थिति पर विनोदपूर्ण आलोचना होती थी और जमीन्दारी सम्बन्धी समाचार भी रहते थे। मई १९४० में—जो भारतके लिए बड़ी तनातनीका समय था, क्योंकि कांग्रेसने युद्ध-संचालन सम्बन्धी मामलोंमें ब्रिटेनके साथ सहयोग न करनेका निश्चय कर लिया था और कांग्रेसजनोंके सामने पुनः जेल भेज दिये जानेकी सम्भावना उपस्थित हो गयी थी—पापूने हमें मंसूरीमें पत्र लिखा जहाँ हम स्कूलोंमें पढ़ रही थीं।

"हम २००० मीटरकी ऊँचाई पर कुमाऊँ ब्राडकास्टमें खालीसे बोल रहे हैं। घरके लोगो, नमस्कार; प्रत्येक जनको नमस्कार। आशा है, मंसूरीकी आध इंच वर्षाकेसाथ अब मौसिम सुहावना हो गया होगा।"

"रविवार ता० १९ को भारतके वाइसरायने प्रत्येक व्यक्तिसे ब्रिटिश साम्राज्यके लिए तथा हिटलरपर विजय पानेके लिए प्रार्थना करनेकी अपील की। मैं वाइसरायसे बहुत दूरके स्थान पर था और मुझे पक्का विश्वास था कि यदि मैं प्रार्थना न करूँ तो वे इसे देख नहीं सकते। मैंने सचमुच ही प्रार्थना नहीं की।"

"पहली बात तो यह है कि ब्रिटिश साम्राज्यके लिए प्रार्थना करनेकी मेरी तनिक भी इच्छा न थी। यदि मेरी इच्छा होती तो भी मैं शायद प्रार्थना न करता, क्योंकि मैं नहीं जानता कि ईश्वर है भी या नहीं। यदि ईश्वर नहीं है तो उससे ब्रिटिश साम्राज्यके प्रति कर्त्तव्य पालनके लिए कुछ कहना बेकार ही था। यदि ईश्वरका अस्तित्व है तो हमें इस बातका विश्वास रखना चाहिये कि वह यह बात भी अच्छी तरह जानता है कि ब्रिटिश साम्राज्यके सम्बन्धमें उसे क्या करना चाहिये।"

"इसके सिवा लार्ड लिनलिथगो शायद वे पंक्तियाँ बड़े मजेके साथ भूल गये हैं, जो उनके देशवासी लार्ड टैनीसनने लिखी थीं—"पुरानी व्यवस्था बदल जाती है और उसका स्थान नयी व्यवस्था ग्रहण करती

है और ईश्वर अनेक तरहसे अपनी इच्छा पूरी करता है जिससे एक अच्छी प्रथा, पुरानी पड़कर, संसारकी नीति भ्रष्ट न कर दे" ।"

इसके बाद चिट्ठीमें खाली सम्बन्धी बहुत-सी चीजोंका ब्योरेवार और विशद विवरण दिया गया था—उन खेतोंका जो गेहूँकी सुनहली, पकती हुई बालोंसे ढँक गये थे, उस कुक्कुटादि-पालनशालाका जो बराबर उन्नति कर रही थी, अंगूरकी उन लहलहाती हुई लताओंका जो क्वेटा तथा कश्मीरसे मँगाकर लगायी गयी थीं, और फलके उन वृक्षोंका जो सेव, चेरी, अंजीर आदिसे लद गये थे, अपने आप उगने वाले रैस्पबेरी, स्ट्राबेरी, शहतूत आदि वृक्षोंके झुण्डोंका, उस प्राथमिक विद्यालयका जिसकी स्थापना उन्होंने पहाड़ी लोगोंके बच्चोंको शिक्षा देनेके लिए की थी और उस चर्म-प्रसाधन-शालाका जो उन्होंने स्थापित की थी। उन्होंने बड़े अभिमानके साथ अपने देहाती नाश्तेकी चर्चा की थी, जिसमें काफी होती थी, खालीकी शहद, खालीमें ही तैयार की गयी पावरोटी और मक्खन तथा वहाँ ही रखी गयीं मुर्गियों आदिके अण्डे रहते थे। उन्होंने यह भी लिखा कि शामको मैं चरखा चलाता हूँ, जैसा कि गांधीजीके सभी अनुयायियोंको चलाना पड़ता है। जिस समय मास्को रेडियो अंग्रेजीमें वार्ता प्रसारित करता है, उसी समय मैं यह काम करता हूँ, मैंने यह समय इसलिए चुना कि मैं सोवियत रूसकी सामूहिक कृषि-योजनाके समाचार भी सुनता चलूँ और गांधी बाबाका चरखा भी चलाता रहूँ।

× × ×

इलाहाबाद अब पहलेसे बदल गया है। वह कुछ-कुछ गिरी हुई सी अवस्थामें है, मानो किसीको अब उसकी उन्नतिकी परवाह ही न रह गयी हो, किन्तु हम लोगोंकी बाल्यावस्थामें यह सुन्दर मकानों और सावधानीसे रखे गये स्थानोंका शान्तिमय नगर था। जिन्हें राजधानीका वातावरण अधिक पसन्द था, उन लोगोंके लिए वह एक निर्जीव-सी, मनहूस-सी जगह थी। उसकी मोहकता उसकी शान्तिमें ही निहित थी। उसका जीवन मुख्य रूपसे उच्च न्यायालय, विश्वविद्यालय तथा बड़े-बड़े लोगोंके उन बौद्धिक एवं सांस्कृतिक क्रिया-कलापोंसे सम्बद्ध था जिन्हें मेरे नाना श्री मोतीलाल नेहरू, सर तेजबहादुर सप्रू और पं०

मदनमोहन मालवीय जैसे प्रमुख विधिज्ञोंसे प्रेरणा मिलती थी। इसकी वजह यह थी कि उन दिनों पढ़े-लिखे तथा सुसंस्कृत व्यक्तियोंके लिए कानूनी पेशेमें ही सबसे अधिक सम्मान तथा वैभव पानेकी सम्भावना रहती थी। भारतीयोंकी दृष्टिमें इलाहाबाद हमेशासे ही एक प्रतिष्ठित नगर रहा है। बादके दिनोंमें वह राष्ट्रीय आन्दोलनके एक प्रमुख केन्द्रके रूपमें भी प्रसिद्ध हो गया।

मम्मीका बचपन इसी शहरमें अपने माता-पिताके सुन्दर मकान, आनन्दभवनमें बीता और यहीं वे बड़ी हुईं। वे एक अंग्रेज महिला-की देखरेखमें रखी गयी थीं और उन्हें घरपर पढ़ानेके लिए प्राइवेट शिक्षक नियुक्त कर दिये गये थे। इसी भवनमें उनका विवाह हुआ था। इसके बाद भी वे और मेरे पिता इलाहाबादमें बने रहे, यद्यपि वे अपने निजी मकानमें रहते थे।

मेरे नानाने, जिन्हें हम लोग नानूजी कहती थीं, राष्ट्रीय आन्दोलनमें सम्मिलित होनेके लिए जोर-शोरसे चलनेवाली अपनी वकालत तो पहले ही छोड़ दी थी। अब उन्होंने अपना भव्य प्राचीन भवन भी राष्ट्रको अर्पित कर दिया, जिस तरह कि वे अपना समय, अपनी सम्पत्ति और खुद अपने आपको उसके हाथ सौंप चुके थे। अब उसका नाम "आनन्दभवन" से बदलकर "स्वराज्य भवन" हो गया। इसका उपयोग कुछ तो कांग्रेस पार्टीके दफ्तरोंके लिए और कुछ ऐसे अस्प-तालके लिए होता था जहाँ उपचार तथा दवाके लिए रोगियोंसे कुछ भी नहीं लिया जाता था। फिर भी इस विशाल भवनका लगभग तीन चौथाई हिस्सा किसी काममें नहीं आता था और खाली पड़ा रहता था। घरके भीतर बना हुआ तैरना सीखनेका तालाब भी, जो इलाहाबादमें इस ढंगका पहला ही प्राइवेट तालाब था और जो अनेक समारोहों तथा आनन्दोत्सवोंका लीलास्थल रह चुका था, धूल और मकड़ीके जालोंसे दुर्दशाग्रस्त होनेके लिए छोड़ दिया गया।

स्वराज्य भवनकी सड़कके दूसरी तरफ नानूजीने एक छोटा-सा मकान बनवाया जो नया आनन्द भवन कहलाया। यद्यपि मेरा जन्म भी स्वराज्य भवनमें ठीक उसी कमरेमें हुआ था, जिसमें मेरी माताका हुआ था और यद्यपि, मैं और लेखा उस समय भी नाना-नानीके साथ

रहनेके लिए वहाँ ही छोड़ दी गयी थीं जब मम्मी और पापू यूरोपकी सैर करनेके लिए गये हुए थे, अवश्य ही उस समय हम इतनी छोटी थीं कि उस पुराने मकानकी हमें कोई स्मृति नहीं है। हम नये आनन्द भवनको ही जानती रही हैं और उसीपर हमारा अनुराग रहा है। सन् १९३५ में जब हम मामूके साथ रहनेके लिए वहाँ गयीं तब वह हमारा भी घर हो गया।

राष्ट्रके लिए दोनों ही भवन तीर्थस्थानकी तरह पवित्र थे और आज भी हैं। एक भी दिन ऐसा न गुजरा होगा जब दिनके किसी भी समय झुण्डके झुण्ड लोग नेहरू पिता-पुत्रका निवास-स्थान देखनेके लिए धारा-प्रवाह रूपसे न आते रहे हों—वह भवन जिसे मोतीलाल नेहरूने बनवाया था और जिसमें जवाहरलालने निवास किया। लोग उसके चिकने फर्शपर और बरामदेके खम्भोंके चारो तरफ बड़े प्यारसे हाथ फेरते थे और जब मामू घरपर रहते थे तो गगनभेदी स्वरसे तबतक "जवाहरलाल नेहरूकी जय" पुकारते रहते थे, जबतक वे बाहर निकल-कर हाथ जोड़े हुए उनका अभिवादन स्वीकार नहीं करते थे।

इस भीड़को रास्ता दिखाने तथा उसे प्रसन्नताके आवेशमें घरके भीतर घुसते चले जानेसे रोकनेके लिए एक चौकीदार नियुक्त था। नेहरू परिवारमें काम करते-करते वह बूढ़ा हो गया था, फिर भी वह लोगोंको समझा सकनेके लिए कोई ऐसी दलील नहीं सोच सका जिससे उन्हें विश्वास हो जाता कि उनको भवन देखनेकी अपनी उत्सुकताकी तृप्ति बाहरी हिस्सेको देखकर ही कर लेनी चाहिये, भीतर झाँककर और प्रविष्ट होकर नहीं। कहना, तर्क देना बेकार था। कोई उधर ध्यान ही न देता था। प्रायः जब हम भोजन करते रहते या सोते रहते, जिज्ञासु दर्शकगण कमरोंमें घुस पड़ते, यह देखनेके लिए कि भीतर क्या हो रहा है। इस तरहके अवसर हर साल मार्चमें, माघ मेलाके समय विशेष रूपसे आया करते थे, जब संगममें स्नान करनेके लिए लाखोंकी संख्यामें तीर्थयात्री इलाहाबाद आते थे। तीर्थयात्रा, स्नानादिसे फारिग होनेके बाद वे बड़ी संख्यामें आनन्द भवन जा पहुँचते थे—सीधे-सादे, सामान्य श्रेणीके लोगोंकी यह विशाल पंक्ति देखने ही योग्य होती थी।

एक दिन तीसरे पहर मैं बैठकखानेमें पलंगपर लेटी हुई थी। सख्त

गरमी पड़ रही थी और ऊपर पंखा जोरोंसे चल रहा था, जिससे मेरी आँख लग गयी। एकाएक एक विचित्र तरहकी आवाज मेरी चेतनामें प्रविष्ट हुई और जबतक मैं पूरे होशमें आऊँ, तबतक वह लययुक्त वाणी 'पंडितजीकी जय' के कर्णभेदी घोषमें परिणत हो गयी। मैं उठ बैठी और मैंने खिड़कीके बाहर झाँककर देखा। स्त्री, पुरुष, और बच्चे भारी संख्यामें बरामदेकी ओर बड़े उत्कंठित भावसे बढ़े चले आ रहे थे। भयंकर गरमीके बावजूद मैं काँप उठी, क्योंकि भक्ति और श्रद्धासे उमड़ती हुई इतनी अपार भीड़को देखकर सचमुच भय मालूम होता था। उसका यह निनाद तबतक बन्द नहीं हुआ, जबतक मामू उतरकर नीचे नहीं आये और उनसे बातचीत नहीं कर ली। उनका साधारण रूपसे गम्भीर देख पड़नेवाला चेहरा इस समय आनन्दमयी मुसकुराहटसे प्रदीप्त हो उठा था और वे धीमी आवाजमें कामकी बातें पूछने लगे थे। बीच-बीचमें वे हास्योत्पादक अभ्युक्तियाँ भी कर दिया करते थे और उनके साथ स्वयं भी हँसीमें सम्मिलित हो जाते थे। खिड़कीके पीछे बैठकर देखते-देखते मेरे मनमें एक अनूठी-सी भावना जाग्रत हो उठी। क्षण भरमें मैं भी अपनेको बाहर खड़े हुए उन अज्ञात व्यक्तियोंमेंसे एक समझने लगी जो पूर्ण विश्वास और स्नेहके साथ, अपने सामने खड़े हुए व्यक्तिकी ओर टकटकी लगाकर देख रहे थे। (मैंने मन-ही-मन अनुभव किया मानो) यह छोटी लड़की जो खिड़कीके पीछे बैठी हुई थी, गलत स्थानपर थी। उसे बाहर निकलकर बागमें खड़े उन लोगोंके बीचमें होना चाहिये था जिनके साथ वह एकाएक अपने आपको घनिष्ठ रूपसे सम्बद्ध-सा समझ रही थी। यह एक आश्चर्यजनक संयोगकी बात थी कि वह जवाहरलालके साथ ही उस भवनमें रहती थी, यह भी संयोग था कि वे उसके साथ कभी-कभी खेलते थे और यह भी कि वह उन्हें अपना मामू कहती थी, क्योंकि वास्तवमें वह उस जन-समुद्रमें एक विन्दुमात्र थी, जो उत्प्रेरणा एवं पथप्रदर्शनके लिए श्रद्धापूर्वक उनका मुँह जोह रहा था।

× × × ×

हम लोगोंकी शिक्षा और देखरेख कतिपय शिक्षयित्रियों (गवर्नेंस) के नियन्त्रणमें हुई। आगे पीछे आनेवाली इन सबकी संख्या मेरे

ख्यालसे आठ रही होगी। वे हमें उबाले हुए साग, दूध तथा अंडे पर रखती थीं और हमारे नियमित रूपसे टहलने तथा रात्रिमें शीघ्र सो जानेका ध्यान रखती थीं। प्रति रविवारको हम आनन्द भवनमें अपनी नानी और बीबी-मा (माताकी मौसी) के पास जाती थीं। इस अवसरपर हम लोग साड़ियाँ पहन लेती थीं जिन्हें हम उस समय उतारकर फेंक देती थीं जब उनके कारण हमें खेलनेमें बाधा पड़ती थी। हम बहुमूल्य कश्मीरी भोजन ग्रहण करती थीं जिसपर मम्मी नाराज होती थीं, अपराह्नमें झपकी लेनेसे हम इनकार कर देती थीं, हुरदंगियोंकी तरह चिल्लाती हुई कड़कड़ाती धूपमें दौड़ती फिरती थीं और जब* हम घर लौटतीं तो गला बैठा रहता, पेट गलेतक भरा होता और थककर लस्त हो जाती थीं। आनन्द भवन जानेके अवसरकी हम लोग बड़ी उत्सुकताके साथ प्रतीक्षा किया करती थीं, क्योंकि वहाँ हमें असीमित स्वतन्त्रता प्राप्त रहती थी।

हमारी नानी, जिन्हें हम "नानी माँ" कहती थीं, छोटे कदकी तथा गुड़िया जैसी थीं जिनकी प्रत्येक बात पूर्ण सौष्ठवको प्राप्त थी। उनका रंग गोरा और आँखें रक्तिमा-रंजित कुछ-कुछ भूरी सी थीं, जैसी कि कश्मीरी स्त्रियोंकी होती हैं और उनके बाल भी जब वे सफेद नहीं हुए थे, घने तथा ललछौंहेंसे थे। उनके हाथ-पाँव सुन्दर, सुडौल तथा छोटे-छोटेसे थे और उनका व्यवहार, या तौर-तरीका तेज एवं प्रभुत्वव्यंजक सा था, जिसका कारण लम्बे अरसेतक जारी रहनेवाली उनके स्वास्थ्यकी कमजोरी थी।

दैवने नानी माँके साथ बड़ी कृपा की थी। उसने उन्हें ऐसा पति दिया जिसकी वे भक्ति करती थीं, तीन मनमोहक बच्चे दिये, विपुल धनराशि दी और सुख्यात नाम भी दिया। उसने उनसे सख्त माँग भी की। वैभव एवं विलासमें जिनका जन्म और पालन-पोषण हुआ, कश्मीरी नारीत्वके सर्वोत्कृष्ट रूपकी विशिष्ट प्रतिभा जिन्हें हम मान सकते हैं—निःसहाय, सुन्दर तथा परितुष्ट-उन्होंने स्वेच्छासे अपने समस्त सुख-वैभवको तिलांजलि दे दी और अपने पतिका अनुगमन करनेके लिए, जब वे गांधीजीके दलमें सम्मिलित हो गये, युग-युगसे चली आनेवाली कट्टरताका जड़मूलसे परित्याग कर दिया। बिना मीन-मेषके

उन्होंने अपना सुन्दर और बहुमूल्य परिधान उतार दिया, श्वेत खादी धारण कर ली और अपने पति, पुत्र, पुत्रवधू एवं पुत्रियोंको जेलके सीखचोंमें बन्द होते देखा तथा अपने आपको गिरफ्तार कराकर स्वयं भी शानके साथ उस समय जेल गयीं जब उनकी वृद्धावस्था एवं दुर्बल स्वास्थ्यको देखते हुए यही उचित होता कि वे राजनीतिमें सक्रिय भाग लेनेसे अपने आपको दूर रखें।

नानी माँ अपने परिवारके बच्चोंको छोड़कर अन्य सभी बच्चोंको नापसन्द करती थीं और इस सम्बन्धमें कभी कोई संकोच नहीं करती थीं। हम लोगोंके प्रति उनका रुख मानो हँसी और व्यंगमें लेते हुए बर्दाश्त करनेका था। बहुत-सी नानियोंमें वात्सल्य और मृदुताका भाव बाह्य रूपसे प्रकट करनेकी जो प्रवृत्ति पायी जाती है, वह उनमें कम ही देख पड़ती थी।

जब हम आनन्द भवन पहुँचती थीं, तब सामनेकी सीढ़ियोंपर ही बूढ़ा माली मातादीन हमेशा हमारा स्वागत करता था और मुसकराहटके साथ, जिसके कारण उसके अधपके बालोंसे युक्त चेहरेपर शिकन पड़ जाती थी, हममेंसे प्रत्येकको एक-एक गुलदस्ता अर्पित करता था। बीबी मा, हमारी माताकी मौसी, जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाती हुई हम लोगोंसे आकर मिलतीं और हमें नानी माँके पास ले जातीं। शरीरको पूर्णरूपसे ढँक लेनेवाली साड़ीसे आजिज आकर मैं उसे घसीटने लगती और जब मैं दौड़ती हुई आगे बढ़ती तो वह पूँछकी तरह मेरे पीछे-पीछे लटकती जाती थी, यहाँ तक कि वहाँ पहुँचते-पहुँचते हाथकी अंगुलियों-तक लम्बा सूती फ्राक ही मेरा विशेष परिधान रह जाता।

'जरा अपने फ्राकका भी ध्यान रखो, वह कीचड़में लथपथ न हो जाय'—नानी माँने एक बार मुझे सचेत करते हुए कहा था। 'आज तो वह और दिनोंसे भी अधिक लम्बा है।'

मुझे छींक आयी और मैंने नाक सुड़क ली। हमारी शिक्षयित्री हमारे कपड़ोंके सामनेवाले हिस्सेमें एक रूमाल बड़ी सी सैफ्टी पिनके जरिये खोंस दिया करती थीं किन्तु जब हमें नाक छिनकनेकी आवश्यकता पड़ती थी तो उससे सेफ्टी पिनको खोलना हमारे लिए पहाड़ हो जाता। मैंने हाथके पृष्ठभागसे पोंछते हुए फिर नाक सुड़क ली।

अब नानी माँसे न रहा गया। अपना छोटा-सा सुन्दर और गोरा हाथ निराशासे हिलाती हुई बोलीं "अरी लड़कियो, जरा सोचो तो कि यह रूमाल आखिर किस दिनके लिए लगाया गया है?" और फिर बीबी माँकी तरफ देखती हुई उनसे कहने लगीं "कोई आश्चर्य नहीं कि ये बच्चियाँ हमेशा नाक बहनेसे परेशान रहती हैं। इनके इतने ऊँचे, बेहूदे फ्राक तो देखो।"

हमारी स्नेहमयी बीबी माँने, जो कम उम्रमें ही विधवा हो गयी थीं, अपना जीवन अपनी कमजोर छोटी बहनकी देखरेखमें ही लगा रखा था। उनके कमरे मुख्य भवनसे अलग थोड़ी दूरीपर बने हुए थे और वे सेवा तथा उपासनाका शान्तिमय एवं अनुद्वेगशील जीवन बिताती थीं। बीबी माँ अपना भोजन स्वयं ही तैयार करती थीं, क्योंकि वे मांस नहीं खाती थीं और मुख्य रसोईघरमें जो अर्द्ध यूरोपीय ढंगका भोजन तैयार होता था उसे वे हाथसे छूना भी नहीं चाहती थीं। उनके भारतीय ढंगके साफ-सुथरे, लिपे-पुते, चौकेमें बैठकर हम लोग रविवारको दोपहरमें भोजन किया करती थीं। तुरन्तकी छानी हुई गरम-गरम पूड़ियाँ और चमचमाते हुए पीतल या ताँबेके बर्तनोंमेंसे गरमागरम रसेदार स्वादिष्ट तरकारी वे परोसती थीं और हम लोग पालथी मारे बाँसकी बनी आसनियोंपर बैठी हुई उनका आस्वादन करती जाती थीं।

भोजन करनेके बाद हम लोग, यदि मौसिम ठंडा हुआ तो, बागके किसी वृक्षकी छायामें और यदि गरमीके दिन हुए तो कमरेके भीतर ही पंखेके नीचे लेट जाती थीं। बीबी माँ हमारे पास ही बैठकर अपने बड़े सरौतेसे सुपारी कतरने लगती थीं और फिर इलायची छीलकर, थोड़ी मात्रामें दोनों चीजें तश्तरीमें सजाकर रख देती थीं। पूरे अपराह्नभर वे अपने अक्षय भण्डारसे निकाल-निकाल कर अगणित कहानियाँ हमें सुनाती रहती थीं। हम लोग राजकुमार और राजकुमारियों तथा मनुष्य-की तरह रहने और बोलनेवाले पशु-पक्षियोंके वातावरणमें मंत्र-मुग्ध सी होकर रह जाती थीं। इस तरहसे हमें बहुत-सी परियोंकी कहानियाँ ही याद नहीं हो गयीं वरन् हमें दो प्रसिद्ध महाकाव्यों—रामायण तथा महाभारत—की रंग-बिरंगी कहानियाँ तथा अन्य प्राचीन ग्रन्थोंकी बातें

भी ज्ञात हो गयीं।

हमें लोक कथाएँ भी अच्छी लगती थीं और उनमेंसे एक तो हमें इतनी रुचती थी कि तबसे कई बार हम उसका स्मरण कर चुकी हैं।

"एक बार एक बुढ़िया औरत थी।"—बीबी माँने कहना शुरू किया; हम लोग फैलकर पेटके बल लेट गयीं और हाथपर ठुड्डी रखकर कहानी सुनने लगीं।

"मुझे शेर-भालू आदि पशुओंकी कहानी सुनाइये"—मैंने विरोध प्रकट करते हुए अपनी राय व्यक्त की।

"जरा ठहरो तो"—बीबी माँ ने कहा, "शीघ्रही इसमें पशुओंका भी जिक्र आयगा। हाँ तो, उस बूढ़ी औरतके कोई लड़का न था, यद्यपि उसने जीवनभर इसके लिए प्रार्थना की थी। बुढ़िया थी बड़ी मातबर और उसने सदाचारपूर्वक जीवन बिताया था, इसलिए अन्तमें देवताओंको उसपर दया आयी, इसलिए उन्होंने उसे इस धर्मशीलताके बदले इनाम देनेका निर्णय किया। एक दिन वह झोपड़ीमें बैठी हुई अपने छोटेसे चूल्हेपर खाना पका रही थी कि गरम-गरम घीकी एक बूँद कड़ाहीमेंसे छटककर उसके हाथकी पीठपर जा गिरी। उससे एक बड़ा छाला पड़ गया और पीड़ाके मारे वह अभी जोरसे कराहने भी न पायी थी कि छाला फूट गया और उसमेंसे एक मेंढक फुदकता हुआ बाहर निकल पड़ा।"

मैं सिहर उठी। "मैं मेंढककी कहानी नहीं सुनना चाहती" मैंने कहा। "मैं वास्तविक पशुओं—सिंहों और व्याघ्रों—की कहानी सुनना चाहती हूँ।"

"जो हो, मैं तो यही कहानी सुनना चाहती हूँ" लेखाने दृढ़तापूर्वक कहा। उसे मेंढकोंमें बड़ी दिलचस्पी थी और जब कभी बागीचेमें उसे एकाध मेंढक मिल जाता तो वह उसे कोंच देती या अन्य तरहसे छेड़ती रहती थी।

"इसके बाद मैं वास्तविक पशुओंकी भी कहानी कहूँगी" बीबी माने वचन दिया। "तनिक ठहर तो जाओ, यह कहानी बहुत ही मनोरंजक है।"

मैंने फिर अपनी बातपर जोर देते हुए कहा "मेंढकोंकी कथासे

कोई मनोरंजन नहीं होता। क्या इसमें राजकुमारों और राजकुमारियों-की भी चर्चा आयगी ?"

"निश्चय ही" बीबी माँने कहा, "हाँ तो, सुनो। यह मेंढक फफोलेमेंसे कूद पड़ा जिससे बुढ़ियाको बड़ी खुशी हुई, क्योंकि उसने ख्याल किया कि जिस असाधारण ढंगसे यह मेरे सामने निकल पड़ा है, उससे स्पष्ट है कि देवताओंकी यही इच्छा है कि वह मेरा पुत्र बनकर रहे। इसलिए उसने उसका पालन-पोषण किया और उसके प्रति प्रचुर स्नेह प्रदर्शित किया। उसने शीघ्र ही पढ़ना-लिखना सीख लिया। यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति निरे मेंढकको लड़केकी तरह दुलारने-पुचकारनेके कारण उसपर हँसा करता था, फिर भी वह इसकी परवाह नहीं करती थी।

"एक दिन, जब मेंढक काफी बड़ा हो गया था, एक शाही हरकारा बुढ़ियाके शहरमें आया और उसने यह घोषणा प्रसारित की कि राजकुमारीका स्वयंवर शीघ्र ही होने जा रहा है। जो नवयुवक उसके साथ विवाह करनेकी इच्छासे इस समारोहमें सम्मिलित होना चाहे, उन्हें आमंत्रित किया जाता है कि वे निश्चित तिथिको राजप्रासादमें एकत्र हों। अवश्य ही यह निमंत्रण केवल धनी सरदारों तथा राज-कुमारोंके लिए ही था, फिर भी उक्त मेंढक भी राजभवनके लिए तैयारी करने लगा।

"यह देखकर बुढ़िया बहुत परेशान हो उठी। वह जानती थी कि दूसरे लोग मेंढकको उसी तरह प्रेमकी निगाहसे नहीं देखते थे जिस तरह वह स्वयं देखती थी। अगर वह स्वयंवरमें गया तो दूसरे लोग उसकी केवल हँसी ही उड़ावेंगे और वह उसे इस अपमानके दुःखसे बचाना चाहती थी।

"मेरे बच्चे", उसने उसे समझाते हुए कहा, "तुम मेरे अच्छे बेटे रहे हो और मेरे लिए तुम्हीं काफी हो। मेरे मनमें पतोहूकी कोई कामना नहीं है। इसलिए तुम्हें स्वयंवरमें जाना ही क्यों चाहिये ?

"मेंढकने प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा "मेरी प्यारी माँ, मुझे अवश्य जाना चाहिये" और उसके नेत्रोंमें सुदूर भविष्यकी कल्पनाकी एक झलक-सी दिखाई दी, "लोगोंने कहा है कि राजाकी पुत्री चन्द्र-

लेखाके समान सुन्दर है। उसे प्राप्त करनेका यह अवसर मुझे नहीं खोना चाहिये।"

"बूढ़ी स्त्रीने उसे रोकनेकी जितनी भी कोशिश की, सब बेकार हुई। सुन्दरसे सुन्दर कपड़े जो वह जुटा सका, उसने पहन लिए और कूदता-फुदकता हुआ चल पड़ा।" बीबी माँ थोड़ी-सी सुपारी मुँहमें डालनेके लिए जरा देर रुक गयीं।

"तब क्या हुआ ?" उतावली होकर हम लोग चिल्ला पड़ीं।

"मेंढक राजप्रासादमें दाखिल हो गया और उसे भी राज्यके सामन्तों तथा राजकुमारोंके बीचमें आसन दिया गया। वे लोग बहुमूल्य पोशाक और जवाहरात पहने हुए थे और उन सबके साथ उनके परिजन भी थे जो राजपुत्रीको देनेके लिए कीमतीसे कीमती उपहार साथमें लिये हुए थे। जब उन्होंने मेंढकको देखा तो ठहाका मारकर हँस पड़े। लेकिन वह अपना सिर ऊपर किये हुए खड़ा रहा और उसने इनकी कुछ भी परवाह नहीं की। अन्ततोगत्वा राजकुमारी भवनसे निकलकर बाहर आयी।"

"क्या उम्र रही होगी उसकी ?" मैंने धीरेसे पूछा।

"बस यही पन्द्रह या सोलह वर्ष।"

"और देखने-सुननेमें कैसी थी वह ?"

"उसका रंग सोनेकी तरह चमचमाता हुआ गेंहुआ था और उसकी आँखें मृगछौनेकी आँखोके सदृश बड़ी-बड़ी एवं बादामकी शकल जैसी थीं। जब वह चलती थी तो वह इस तरह मंदगतिसे ठमककर चलती थी मानों संगीतके तालपर चल रही हो और उसकी गतिके साथ उसके पैरके नूपुर भी बज उठते थे। उसके केशोंमें मोती गुहे हुए थे और उसके कपड़े बहुमूल्य रत्नोंके कारण चमचम कर रहे थे। अपने हाथमें वह जयमाल लिये हुए थी जिसे वह अपनी इच्छाके अनुसार चुने हुए वरको पहनानेवाली थी।

"विवाहेच्छु प्रत्येक युवकके सामनेसे होकर वह आगे बढ़ती गयी किन्तु जब वह मेंढकके सामने जाकर रुक गयी और उसने उसके गलेमें माला पहना दी तो वहाँ समवेत प्रत्येक व्यक्तिको महान् आश्चर्य हुआ। इसे एक तरहका मजाक समझकर प्रत्येक व्यक्ति हँस

पड़ा। और लड़कीके पिताने भी उसे फिरसे रस्म पूरी करनेके लिए आदेश दिया। दूसरी बार भी उसने मेंढकका ही वरण किया। राजाको बड़ा क्रोध हुआ और हैरानी भी। उसने राजकुमारीसे तीसरी बार प्रयत्न करनेके लिए कहा। लेकिन अन्तिम बार भी उसने मेंढकके गलेमें ही जयमाल डाली। इसमें कोई गलती नहीं हो सकती थी। निश्चित था कि राजकुमारीने मेंढकको ही अपना भावी पति चुना था। राजाको बड़ा गुस्सा आया और सामन्तोंने इसे अपने लिए अपमानजनक समझा किन्तु उसे अपने निर्णयसे रोकनेके लिए उनके पास कोई उपाय न था। युगोंसे चली आनेवाली स्वयंवरकी प्रथाके कारण राजकुमारीको पूरा अधिकार था कि वह जिसे चाहे उसे अपना पति चुने। और तब एक आश्चर्यजनक बात हुई।"

"ओह, मुझे आशा है कि इसका सुखद अन्त होगा—" मैंने उत्कंठित भावसे उन्हें बीचमें ही टोक कर पूछा।

"हाँ, यही बात है"—बीबी माने जवाब दिया। "सचमुच ही इसका बहुत सुखद अन्त हुआ। जो चमत्कार हुआ, वह यह है—वह भद्दा, मोटा सा जन्तु, मेंढक, अचानक एक युवक राजकुमार बन गया। उसकी पोशाक खूब चमचम कर रही थी और कमरसे लटकती हुई तलवार भी जगमगा रही थी, जिसके कारण वह इतना सुन्दर और शक्ति-सम्पन्न देख पड़ता था कि उसके सामने अन्य सब राजकुमार या सामन्तगण लज्जित हो गये।"

"अचम्भेके मारे हम दोनोंका कलेजा एक साथ ही धकधक करने लगा।

राजकुमारीकी ओर देखकर, जिसने अपनी निगाह नीची कर ली थी, उसने मुसकरा दिया और कहा—"मंत्रबलसे मुझपर ऐसा जादू कर दिया गया था कि मैं मेंढक बन जाऊँ और तबतक बना रहूँ जबतक एक रूपवती राजकुमारी मुझे प्रेमपूर्वक न देखे। तुम्हारे सौन्दर्य, प्रेम तथा दयालु हृदयने मुझे हमेशाके लिए उस जादूके प्रभावसे मुक्त कर दिया।" और तब बड़ी धूमधामसे उन दोनोंकी शादी हो गयी। उसके बादसे वे बराबर सुखपूर्वक रहने लगे। वह बुढ़िया भी, जबतक जियी, बड़े आरामसे उनके साथ रही।"

"सचमुच बड़ी विस्मयजनक कहानी है" मैंने साँस लेते हुए कहा। "हम लोगोंको एक कहानी और सुनावें।"

एक कहानी खत्म होने और दूसरी शुरू होनेके बीच हम एक मिनटका भी अन्तर नहीं पड़ने देती थीं। बीबी माँ भी बराबर कहानी कहना जारी रख सकती थीं किन्तु इसी बीच हमारा दूध पीने तथा गवर्नेस (शिक्षयित्री) कुमारी कोलिंसके साथ जो हमें लेने आयी थीं, घर जानेका समय हो गया।

घर जाते-जाते रास्तेमें मैं शिकायत करती कि मेरा सिर दर्द कर रहा है।

इसपर कुमारी कोलिंस जवाब देतीं "घर पहुँचते ही तुम बिस्तरेपर जाकर लेट जाना। सारे फसादकी जड़ है तुम्हारा गरिष्ठ भोजन करना और दिनमें जरा सी भी झपकी न लेना।"

"जी नहीं," मैं झुँझलाहटके साथ विरोध करती। "अभी यह उतना तेज नहीं है। अभी वह शुरू ही हो रहा है किन्तु कलतक वह अवश्य ही तेज हो जायगा।"

रविवारकी रातमें प्रायः नियमित रूपसे मुझे सिर दर्द हो जाया करता था। दूसरे दिन फिर स्कूल जाना पड़ेगा, यह विचार घृणास्पद मालूम होता था।

"कोई फिक्र नहीं, कल जब आयेगा, तब देखा जायगा,"—कुमारी कोलिंस बिना सहानुभूति प्रकट किये हुए यही जबाब देतीं।

बीबी माँने कहानियोंके सिवा और भी बहुत कुछ हमें सिखाया था। उन्होंने जीवनके प्रति हिन्दुओंका सच्चा दृष्टिकोण हमें बता दिया, शब्दों द्वारा नहीं क्योंकि वे विदुषी महिला न थीं वरन् अपने अत्यन्त सरल जीवनके द्वारा, अपनी गहरी धर्मशीलता द्वारा और ईश्वरकी अच्छाईमें अपनी शान्त, सुखद निष्ठा द्वारा। मैं बड़ी श्रद्धा और भक्तिके साथ उनके पीछे पीछे डोलती फिरती और कभी-कभी वे मुझे अपने साथ मन्दिरमें ले जातीं किन्तु इससे अधिक मैं उनका पूजाघर पसन्द करती थी। वहाँ हमेशा ताजे फूलों और हलके धूपकी सुगंध उठा करती थी। अक्सर मुझे उनकी पूजाके लिए फूल तोड़नेका सुखद काम दिया जाता और जब वे प्रार्थना करतीं तब मैं भी वहाँ खड़ी रह

सकती थी। उनके पथ-प्रदर्शनमें मैं भी ईश्वरके सामीप्यमें विश्वास करने लगी।

जब बीबी माँकी मृत्यु हुई, (मेरी नानी माँके स्वर्गवासके ठीक २४ घण्टे बाद क्योंकि उन्हें अपनी प्यारी बहिनकी मृत्युका भारी सदमा लगा) तब पहली बार मेरी अपूरणीय क्षति हुई। प्रतिदिन मैं उस निर्जन एवं परित्यक्त पूजाघरमें जा बैठती, इस विश्वासके साथ कि यदि मैं काफी देरतक उनकी प्रतीक्षा करूँ तो वे जरूर वापस आवेंगी, क्योंकि मुझे जब उनकी आवश्यकता पड़ती थी तो वे सदैव मेरे पास पहुँच जाती थीं। शायद यह एक अच्छी ही बात हुई कि मेरी सबसे पहली हानि ऐसे व्यक्तिकी मृत्युसे हुई जिसे मैं जी जानसे चाहती थी, क्योंकि शीघ्र ही मैं यह सीख गयी कि वे मुझसे पृथक् नहीं हुईं। आज भी उनकी स्मृति बचपनकी उन आनन्दमय घड़ियोंको एवं इस विश्वासको पुनरुज्जीवित-सा कर देती है कि भलाई हमेशा कायम रहती है और उसीके बलपर यह संसार बराबर चलता रहता है।

मेरी पहली पाठशाला ईसाई पादरियोंकी एक धार्मिक संस्था थी। क्लासमें बैठना मेरे लिए अत्यन्त कष्टकारक था। अंकगणितमें मुझे अधिकसे अधिक ४ प्रतिशत अंक मिलते। मैं लम्बी लम्बी कविताएँ और शब्दोंकी हिज्जे मुखाग्र कर ले सकती थी किन्तु इतिहास तथा भूगोल मेरे लिए गूढ़ विषय थे। इतिहासकी पोथी तो, जिसका नाम "हाई रोड्ज टू हिस्ट्री" था, जैसा कि अब मैं समझती हूँ, इतिहासके नामपर कलंकस्वरूप थी। उसके लेखककी कल्पना-शक्ति तेज थी, इसलिए तथ्योंका विवरण लिखनेके बजाय उसे उपन्यास जैसी पुस्तकें लिखनी चाहिये थीं, क्योंकि उसने जो कुछ लिखा था उसका एक बड़ा हिस्सा एक तरहसे कल्पनाप्रसूत ही था। पुस्तक ऐसी ही चीजोंसे भरी हुई थी, जैसे कलकत्तेकी काल-कोठरी सम्बन्धी एकपक्षीय वृत्तान्त, टीपू सुलतानके क्रूरतापूर्ण कार्य और बदला लेनेपर उतारू लोगोंकी भूमिमें क्लाइव, वारन हैस्टिंग्ज तथा अन्य ब्रिटिश.वीरोंकी बहादुरी और साहसके कारनामे। यदि अब मुझे इतिहासका कुछ ज्ञान है तो इसका कुछ भी श्रेय 'हाई-रोड्ज'को नहीं है।

इससे कहीं ज्यादा दिलचस्प तो वह इतिहास था जो मैं अपने पितासे उस समय सुनती थी जब मैं उनके साथ टहलने जाया करती थी। संस्कृतकी भूमि, प्राचीन भारत उनके लिए सजीव एवं सुस्पष्ट-सी वस्तु थी और वे मृत नरेशों, सम्राटों, कवियों तथा राजपुरुषोंमें नया प्राण एवं नया रंग डाल देते थे। वे बड़ी शान्ति, सरलता एवं घनिष्ठतासे उनका वर्णन किया करते थे जैसा कि सच्चा विद्याप्रेमी ही कर सकता है। शताब्दियोंका वृत्त मेरे सामने आ जाता था और भारतका गौरवमय अतीत पुनः सजीव एवं सक्रिय सा हो उठता था।

धर्म-प्रदीपिकामें मैं होशियार थी क्योंकि उसमें समझानेकी कुछ आवश्यकता न थी, केवल रट मारना था और इस मेहनतके वदले मुझे एक तमगा इनाममें मिला था। लेखा कुछ शंकालु प्रकृतिकी थीं, इसलिए इसमें वे इतनी सफल नहीं हो सकीं—वे बहुत अधिक प्रश्न पूछा करती थीं। वे कुछ कुछ भ्रान्तिके चक्करमें पड़ जाती थीं क्योकि वे हमेशा कल्पना करती थीं कि ईश्वरका एक रूप नानूजी और ईसाका रूप मामूजी हैं। जब एक संन्यासिनीने उन्हें समझाया कि ऐसे सम्बन्धकी बात निराधार है तो उन्हें भारी धक्का लगा।

कमरेकी दीवारोंपर तथा बीचके रास्तोंपर बाइबिलके ओल्ड टेस्टामेण्टकी अनेक घटनाओंके चित्र लगे हुए थे। लेखा जानना चाहती थीं कि ईश्वरके डाढ़ी क्यों है और उसके शरीरका निचला भाग कैसा होगा। तसवीरोंमें केवल ऊपरका आधा भाग ही दिखलाया रहता था, शेषांश मेघराशिके पीछे विलीन हो जाता था। जब उन्होंने बाइबिलका इतिहास पढ़ा तो उन्हें ईश्वरके प्रति स्पष्ट अरुचि या अश्रद्धा-सी हो गयी, क्योकि उसने आदम और हौवाको स्वर्गसे बाहर निकाल दिया था और उसने केनके हाथ अबुलको मर जाने दिया जब कि वह इसे रोक सकता था और क्योंकि उसने अपने लिए बकरीके छोटे छोटे मनोरम बच्चोंका बलिदान होने दिया। जो ईश्वर प्राणियोंके प्रति निर्दय हो, उसका परिचय या ज्ञान प्राप्त करनेकी फिक्र मुझे न करनी चाहिये—लेखाने निश्चय किया। वे ऐसी बालिका न थीं जो अपने विचार अपनेतक ही सीमित रखतीं। नतीजा यह हुआ कि उनके इस नवप्रस्थापित

"अनीश्वरवाद"की काफी चर्चा और टीका-टिप्पणी उनकी सहपाठिनियों तथा सखियोंमें होने लगी।

छोटी उम्रमें ही इस तरहके विचारोंका विकसित होना संन्यासिनियों (नन्स) को पसन्द नहीं आ सकता था। धर्मग्रन्थोंमें जो कुछ लिखा था, उसे मैं पूर्णरूपसे स्वीकार कर लेती थी, इसलिए वे मुझे अधिक अच्छा समझती थीं। भली लड़की होनेके पुरस्कारस्वरूप समय-समयपर मुझे ईसा मसीहके जीवनकी किसी न किसी घटनाका चित्र अर्पित किया जाता था और ऐसे कितने ही चित्र मैंने इकट्ठे भी कर लिये थे, फिर भी मैं विद्यालयके जीवनसे घृणा करती थी और प्रत्येक दिन यही कामना करती थी कि कैसे घर लौट जाऊँ।

अपनी प्रगतिके विवरणका कार्ड घर ले जाना मेरे लिए अग्नि-परीक्षाके सदृश कठिन था, इसलिए नहीं कि मेरे माता-पिताको मेरे कम नम्बर देखकर कोई चिन्ता होती थी वरन् इस कारण कि मुझे खुद इस बातका बड़ा दुःख होता था कि मैं और अधिक उन्नति क्यों नहीं दिखला सकी।

"अंकगणितमें तो बिलकुल गयी-गुजरी हूँ पापू", मैं दुखित होकर पितासे कहती।

"यही हाल मेरा है"—वे फौरन जबाब देते—"मेरी किसी भी लड़कीसे अंकगणितमें अच्छे नम्बर पानेकी आशा नहीं की जा सकती।" और वे मेरे कार्डपर अंकगणितमें केवल ४ प्रतिशत प्राप्तांक देखकर जोरोंसे हँस पड़ते थे।

यदि मैं बहुत अधिक उदास हो जाती तो वे कहने लगते—'बात क्या है? क्या स्कूलकी इस छोटीसी चीज द्वारा तुम अपने आपको पराभूत हो जाने दोगी? तुम जानती हो कि तुम्हारा मस्तिष्क ठीक है, मैं भी जानता हूँ कि तुम्हारे मस्तिष्कमें कोई त्रुटि नहीं है। बस इतना काफी है, हमें किसी तीसरे आदमीके भरोसा दिलानेकी जरूरत नहीं।"

जब हम स्कूलमें रहकर खेलने-कूदने और लड़ने-झगड़नेमें समय बिता रही थीं, तब देशमें सभी तरहके क्रान्तिकारी परिवर्त्तन हो रहे थे। कुछ दिनोंतक विविध खेलोंमें रीता भी मेरे साथ रहती थी। रीता बड़ी खुशदिल बच्ची थी। उसके गुलाब ऐसे गाल और रक्तिमा-रंजित केश

थे। पापू उसे उस समयके एक लोकप्रिय गीतके ढंगपर "रायो रीता" कहा करते थे। रीता और मैं घण्टों अपनी गुड़ियोंके साथ खेलती रहती थीं जब कि लेखा इधर-उधर कूदती-फाँदती रहती या पेड़ोंपर चढ़कर अपने कपड़े खराब किया करती। रीताको और मुझे कभी उतारे हुए कपड़े नहीं पहनने पड़े, क्योंकि ऐसे कपड़े कभी बच ही नहीं पाते थे (लेखा उन्हें पहले ही फाड़ चुकी रहती)। लेखाको जब भी मौका मिलता, हमारी कागजकी गुड़ियोंको वह फाड़ डालती और हमारे खेलोंपर तानाकसी किया करती थी।

पीले बालों तथा नीली आँखोंवाली "स्टेला" नामकी एक गुड़िया, जो मम्मी मेरे लिए पेरिससे लायी थीं, मुझे बहुत पसन्द थी। मैं हर रात उसे अपने साथ ही पलंगपर ले जाती थी और उसका ठंढा-ठंढा मुँह अपने मुँहके पास रखकर बड़े आनन्दसे सोया करती थी किन्तु एक बार लेखा मुझे देखकर कहने लगीं—"मुझे ताज्जुब न होगा यदि स्टेला किसी रातको पलँगसे उठकर तुम्हारा गला घोंट दे।" लेखाने (अंग्रेजीका) यह नया शब्द (स्ट्रैंगिल) सीखा था और इसे जाननेका तथा बड़े बच्चोंपर इसका जो प्रभाव पड़ता था, उसका उसे अभिमान था। भयके मारे मेरा तो मानो खून जम गया। जब लेखा सो गयीं तो मैं चुपकेसे बिस्तरा छोड़कर उठ खड़ी हुई। अँधेरेका भय मालूम हो रहा था पर इससे भी ज्यादा डर मुझे इसका लग रहा था कि न जाने स्टैला मेरी क्या गति बना डाले। मैंने उसे उठा लिया और जाकर धायके कमरेमें रख दिया। फिर मैं दौड़कर अपनी चारपाईपर वापस लौट आयी, पीछे मुड़कर एक बार भी नहीं देखा और शरीरको मोड़माड़कर गेंदकी शक्लमें लेट गयी। ऊपरसे चद्दर ओढ़कर हाथ, सिर आदि मजेमें ढँक लिया। उसका फरिश्तों जैसा साफ-सुथरा चेहरा मुझे उन दुष्टतापूर्ण कर्मोंके लिए, जिन्हें करनेका वह विचार कर रही थी, आवरण मात्र-सा लगता था।

मैं और मेरी बहिनें, अपने माता-पिताकी ही तरह, खादीके बने कपड़े पहना करती थीं और सन्ध्याके समय जब हम लोग टहलनेके लिए बाहर जाती थीं, तब हम छोटी-सी गांधी टोपी भी पहिन लिया करती थीं। स्वभावतः हम उन बालक-बालिकाओंसे बिलकुल पृथक जान

पड़ती थीं, जिन्हें हम रास्तेमें देखतीं या जो हरित दूर्वाक्षेत्र (लॉन) में खेलते हुए दीख पड़ते और यह बात लेखाको अच्छी नहीं लगती थी। एक दिन वे रोती हुई घर लौटीं और बोलीं कि अब मैं फिर कभी गांधी टोपी न पहनूँगी क्योंकि अंग्रेजोंके बच्चे मुझे देख-देखकर हँसते थे।

"उनकी तरह मैं भी टोप क्यों नहीं पहन सकती ?" उन्होंने नेत्रोंमें आँसू भरे हुए पूछा।

मम्मीने लेखाको गांधी टोपीका महत्व समझानेकी चेष्टा की और उन्हें समझाया कि तुम्हें इस टोपीका अभिमान होना चाहिये। साथ ही उन्होंने यह भी कह दिया—"लेकिन यदि तुम नहीं ही चाहती हो तो तुम्हारे लिए उसे पहनना आवश्यक नहीं।" फिर मेरी तरफ मुँह करते हुए उन्होंने पूछा "तुम इस सम्बन्धमें क्यों सोचती हो ?"

"उन्हें हँसने दो", मैंने भौंहें चढ़ाते हुए जवाब दिया और मेरे पंचवर्षीय मस्तिष्कमें क्रोधका पारा ऊपर चढ़ने लगा। "मैं अपनी टोपी हरगिज न उतारूँगी। देखूँ, वे लोग कबतक मेरी हँसी उड़ाते हैं। यदि इस टोपीके लिए मामू जेलतक जा सकते हैं तो मैं भी अपनी टोपी सिरपर रख सकती हूँ।"

मेरी जोरदार वाणी सुनकर मम्मी कुछ भौचक्की-सी रह गयीं किन्तु इससे लेखाके मनमें भी विश्वास हो गया और उन्होंने निश्चय किया कि मेरी ही तरह वे भी गांधी टोपी पहनना जारी रखेंगी।

स्वदेशी आन्दोलन विदेशी मालके बजाय स्वदेशी वस्तुओं विशेष-कर हाथकी बनी चीजोंके प्रयोगको प्रोत्साहन देना, भारतमें इधर कुछ ही समय पूर्व शुरू हुआ था और सरकारसे असहयोग करनेकी गांधी जीकी नीतिका यह एक आवश्यक अंग था। खादी प्रत्येक कांग्रेसजन तथा अन्य देशभक्तकी पोशाक थी। नेहरू जैसे खानदानके लिए, जिसे आराम और विलासका जीवन बितानेकी आदत थी, इसका अर्थ होता था पूरी-पूरी क्रान्ति; न केवल परिधानके मामलेमें, वरन् रहन-सहन और विचारके मामलेमें भी। नानूजीने बीसों बार अपने बच्चोंके लिए कपड़े लन्दनकी तथा पेरिसकी फैशनेबिल दूकानोंसे खरीदे थे, क्योंकि उनका यह दृढ़ विश्वास था कि जो व्यक्ति ढीले-ढाले भद्देसे कपड़े पहनता

है, वह चुस्त और स्पष्ट रूपसे विचार भी नहीं कर सकता। स्वयं उनके कपड़े अत्यन्त ऊँचे दरजेकी तथा दोषविहीन सुरुचिका परिचय देते थे, जिसके कारण यह दंतकथा चल पड़ी कि मोतीलालजी अपने कपड़े पेरिससे धुलवा कर मँगाते थे। अवश्य ही यह बात असत्य थी, फिर भी वह उस ऊँचे स्तरके अनुरूप थी, जिसपर वे रहते थे।

जब वे गांधीजीके आन्दोलनमें सम्मिलित हुए—और उन्होंने कभी कोई काम आधे मनसे किया नहीं—तो उन्होंने अपने समूचे परिवारके विदेशी कपड़े बटोरकर और उनकी बड़ी-सी होलिका जलाकर भस्म कर डाला। उन्होने उसी दिनसे स्वदेशी कपड़े पहिनने तथा घरमें स्वदेशी वस्तुओंका ही प्रयोग करनेकी शपथ ग्रहण की। नेहरू परिवारमें हमेशा भारतीय तथा विदेशी, दोनों ढंगकी भोजन-व्यवस्था रहती थी और उसका मद्य-संग्रह भी सुख्यात था, क्योंकि मेरे नानाको मदिराका बड़ा शौक और बड़ी परख थी। उनकी उदारतापूर्ण अतिथिसेवा वैसी ही निश्चित और बँधी बँधायी वस्तु थी जैसी उनकी उन्मुक्त हास्य-ध्वनि और बैरिस्टरके रूपमें उनकी समुज्ज्वल कीर्ति।

असहयोग आन्दोलनका आरंभ होनेपर दोके स्थानपर केवल एक ही तरहकी भोजन-व्यवस्था रह गयी और मद्यशाला बिलकुल भंग कर दी गयी, क्योंकि नशाखोरीसे बिल्कुल दूर रहना गांधीजीका एक और प्रमुख सिद्धान्त था। नौकरोंकी जमात बहुत घटा दी गयी और नानूजी ने अपने घोड़े तथा चीनी मिट्टी, शीशे आदिके बने, खबसूरत प्याले तश्तरियाँ आदि पात्र भी बेच दिये जो अभीतक बहुमूल्य समझ कर बड़ी हिफाजतसे रखे जाते थे। जो व्यक्ति हमेशा वैभव और विलासका जीवन बिताता आ रहा था, उसने साठ वर्षकी उम्रमें एक ही रातके भीतर किस तरह चुपचाप अपनी आरामकी उस जिन्दगीका परित्याग कर दिया जिसमें वह सतत लिप्त रहता था और किस तरह उसने अपने पुत्रका अनुकरण कर अपने जीवनका तमाम तरीका ही बदल डाला, यह एक बड़ी ही अद्भुत बात है। इसे समझ लेनेका अर्थ है राष्ट्रके उस मानसके एक अंशका समझ सकना जिसपर गांधीजीकी शिक्षाने जादूके सदृश प्रभाव डाला था।

नानूजीका यह कायापलट होनेके पश्चात् परिवारके अन्य सदस्योंमें भी परिवर्त्तन हुआ । सन् १९२१में जब मम्मीका विवाह हुआ, तब उस अवसरपर प्राचीन परम्पराके अनुरूप रेशमी साड़ी न पहन कर उन्होंने खादीकी साड़ी ही धारण की थी । उन्होंने केवल फूलोंके अलंकारोंसे ही अपने आपको आभूषित किया था जिनमें कुछ हाथके कंगनका और कुछ गलेके हारका काम देते थे और कुछ उनके केशजालकी शोभा बढ़ा रहे थे। उन्होंने वे सब गहने नहीं पहने जो भारतीय नववधूको प्रायः धारण करने पड़ते हैं। उनकी साड़ी उस सूतकी बनी थी जिसे गांधीजीकी पत्नीने स्वयं अपने हाथसे काता था। उसके बादसे हमारे परिवारमें प्रत्येक वधूने विवाहके समय हाथके कते सूतसे और हाथसे ही बिनी साड़ी ही धारण की है और पुष्पाभरणोंसे ही अपने आपको अलंकृत किया है ।

हम लोगोंके बाल्यकालमें ही हर तरहकी सादगी हमारे परिवार-वालोंके जीवनकी प्रतिष्ठित परम्परा-सी बन गयी थी और इस धारणाके साथ ही हम लोगोंका विकास हुआ कि किसी भी तरहका दिखावा या बाह्याडंबर समयकी गति एवं देशभक्तिके प्रतिकूल है ।

कल्पनाकी दुनिया मुझे वास्तविक जगत्से कहीं अधिक स्पष्ट और महत्त्वपूर्ण प्रतीत होती थी और मेरे पास अप्सराओंकी कहानियोंका काफी बड़ा संग्रह हो गया था। एक दिन पापू जब मेरे कमरेमें आये तो उन्होंने देखा कि मैं गोदमें पुस्तक रखकर सिसक रही हूँ ।

मैंने देखते ही उनसे पूछा—"इन सबके बाल सुनहले क्यों होते हैं पापू ?"

मेरा आशय मेरी पुस्तकोंमें वर्णित राजकुमारियोंसे था। जिस रंगमें उनके चित्र छपे थे उनके कारण वे उन नारियोंसे बिलकुल भिन्न मालूम पड़ती थीं जो मैं वास्तविक जगत्में देखा करती थी। मैं बहुत चाहती थी कि मैं भी उन्हींकी तरह सुन्दर और सुनहले बालोंवाली बन जाऊँ किन्तु मेरी यह आकांक्षा पूरी नहीं हो रही थी ।

पापूने गंभीरतापूर्वक जवाब दिया—"सबके बाल तो सुनहले नहीं होते। अंग्रेज राजकुमारियोंके बाल सुनहले होते हैं किन्तु इटली तथा स्पेनकी राजकन्याएँ काले बालोंवाली होती हैं। और भारतकी राजकु-

मारियोंके बारेमें तो सोचो। क्या तुम उनकी बात भूल ही गयीं ?"

कहानी सुननेकी संभावनासे, हमेशाकी तरह, मैं प्रफुल्ल हो उठी। "जी हाँ, उनके बारेमें मुझे बताइये," मैंने आग्रह किया।

पापू मेरे पास ही बैठ गये और इन्होंने भारतीय इतिहास तथा दंतकथाओंकी राजकुमारियोंका हाल सुनाया और कहा—"वे केवल रूपवती ही न थीं, वरन् वीर तथा उच्च चरित्रवाली भी थीं।"

उन्होंने कोमल वातावरणमें लालित, रूप-लावण्यकी प्रतिमा सीता-देवीकी कथा सुनायी, जिन्हें भारतीय नारियाँ अपना आदर्श मानती हैं। यदि वे चाहतीं तो अयोध्याके महलोंमें रहकर आराम और सुखका जीवन बिता सकती थीं किन्तु अपने पति रामके प्रति उनकी जो निःस्वार्थ भक्ति थी, उससे प्रेरित होकर उन्होंने १४ वर्षके वनवासमें उनकी सुख-दुःख भागिनी बनकर उनके साथ ही रहनेका निश्चय किया। पापूने देवी सावित्रीकी कहानी भी बतायी जिनका अपने प्रियतम सत्यवानपर इतना गहरा अनुराग था कि जब भाग्यलेखसे प्रेरित होकर यमराज उनकी आत्माको लेने पहुँचे तो वे सावित्रीके अनुनय-विनयकी अवहेलना न कर सके और उन्हें पतिके प्राणोंकी भिक्षा देकर वापस जाना पड़ा। मैंने ध्यानमग्न होकर उन धीरवीर राजपूत ललनाओंकी कहानी सुनी जो, पुरुषोंके रणभूमिमें परास्त हो जानेपर जलती हुई चितामें कूदकर प्राण विसर्जन करना बेहतर समझती थीं बनिस्बत इसके कि उन्हें शत्रुके हाथमें पड़कर लांछित और अपमानित होना पड़े। इसके बाद मैंने परम सुन्दरी सम्राज्ञी मुमताज महलका वृत्तान्त सुना, जिसकी पावन स्मृति अक्षुण्ण बनाये रखनेके लिए कान्ता-विरह-पीड़ित मुगल सम्राट् शाहजहाँने ताजमहलका निर्माण कराया। हालके इतिहासमें झाँसीकी वीर रानी लक्ष्मीबाई हुईं जिन्होंने उन्नीसवीं शताब्दीमें अंग्रेजोंके विरुद्ध हुए संग्राममें बड़ी वीरतासे अपने सैनिकों-का नेतृत्व किया था, यद्यपि इसमें वे सफल नहीं हो सकी थीं।

"इस प्रकार तुम देखती हो"—पापूने कहा—"कि सुवर्ण केशकी राजकुमारियोंके सिवा अन्य राजकुमारियाँ भी हैं, जिनकी गौरवमयी परम्परा तुम्हारे सामने है।"

"किन्तु वे सब तो पुराने जमानेकी बातें हैं"—मैंने यथार्थ स्थितिकी

ओर सहसा ध्यान दिलाते हुए आपत्ति की—"आज हम उनकी तरह क्यों नहीं हैं ? प्रत्येक आदमी यह क्यों कह रहा है कि आजका भारत बिलकुल जुदा और पिछड़ा हुआ है ?"

"निस्सन्देह, भारत कई दृष्टियोंसे सचमुच ही पिछड़ा हुआ है। यही वजह है कि हम सब लोगोंको और भी अधिक कठिन परिश्रम करना चाहिये जिससे हम अपनेको बेहतर बना सकें। स्वतन्त्रताके लिए लड़ना उतने महत्त्वकी बात नहीं है, जितना महत्त्व अपने आपको सुधारने, बेहतर बनानेके लिए प्रयत्न करनेका है। तभी स्वतन्त्रता हमें प्राप्त होगी और तभी हम उसके योग्य भी होंगे, जिस तरह कि हम पहले थे।"

इन शब्दोंको मैंने मननपूर्वक हृदयंगम करनेका प्रयत्न किया।

"बापू भी तो यही कहते हैं न, कि हम उचित ढंगसे रहें और उचित ढंगसे सोचें, तो हम स्वतन्त्र होकर रहेंगे ? किन्तु मान लीजिये कि हम उचित तरीकेसे बराबर जीवन बिताते चलें, फिर भी हमें स्वतन्त्रता न मिले तो ?"

"तो फिर स्वतन्त्रता हमारे लिए प्राप्त करने योग्य वस्तु न रह जायगी"—पापूने दृढ़तासे कहा—'यदि वह लक्ष्य, जिसके लिए हम लड़ रहे हैं, महान् है तो हमें अपने आपको उसके योग्य बनाना ही होगा।"

"अच्छा, बापू इतने कम कपड़े क्यों पहनते हैं, बताइये तो"—मैंने हैरानीका भाव प्रकट करते हुए पूछा।

"क्योंकि हिन्दुस्तानके बहुतसे लोगोंके पास पहननेके लिए नाम मात्रके ही कपड़े हैं और वे महसूस करते हैं कि उन्हींकी तरह रहने और कपड़े पहननेसे वे उनके अधिक समीप पहुँच सकेंगे और उन्हें अधिक अच्छी तरह समझ सकेंगे।"

"किन्तु इस तरहके और इतने कम कपड़े वे हमेशासे तो नहीं पहिनते थे, है न ?"

"नहीं, हमेशासे नहीं"—पापूने हँसकर जवाब दिया—"मुझे स्मरण है कि जब मैं छोटा बालक था तब राजकोटमें वे मेरे पिताके पास मिलने जाते थे। उस समय वे लम्बा कोट तथा टोप पहने रहते थे। उस

समय वे अपनी मूँछें भी नहीं बनवाते थे। तब मैं गांधीजीको साफ-सुथरी पोशाक पहननेवाले युवक वकीलके रूपमें ही जानता था और मेरे लिए आजके कौपीन-धारी, दुबले-पतले बापूकी कल्पना करना भी मुश्किल था।"

× × ×

कानवेंटमें कुछ वर्षोंतक रह लेनेके बाद हमारे माता-पिताने, तन्दुरुस्तीके लिहाजसे हम लोगोंको पहाड़ोंपर स्थित स्कूलमें भेजनेका निश्चय किया। वहाँ लड़के-लड़कियोंकी पढ़ाई साथ-साथ होती थी। यह स्कूल वुडस्टाक, अमेरिकन पादरियोंकी देखरेखमें चलता था। हमारे माता-पिताके कितने ही परिचितोंको इस निर्णयसे बड़ा आश्चर्य हुआ। पुरानी लकीरपर चलनेवाले भारतीयोंके विचारसे, जो पूर्णतः ब्रिटिश तरीकोंसे चलनेवाली शिक्षा-प्रणालीके आदी थे, अमेरिकन ढंगकी शिक्षाका कोई महत्त्व न था। उनकी दृष्टिमें ऐसी शिक्षा देना, न देना, बराबर ही था।

"क्या आप अपनी लड़कियोंको अंकगणित सीखनेके बजाय इधर उधर परिभ्रमणकी शिक्षा दिलाना चाहती हैं?"—एक महिलाने तीखे स्वरमें मेरी मातासे पूछा। "और अंकगणितमें भी क्या तुम नहीं देखती हो कि वे डालर और सेण्टमें सब हिसाब-किताब करेंगी?" यह बात अकल्याणकर भविष्य-कथनके रूपमें कही गयी थी।

जहाँतक मेरा सम्बन्ध है, मुझे तो डालर और सेण्टके कारण मानों मोक्षकी प्राप्ति हुई, क्योंकि पौंड, शिलिंग, पेंस, फ्लोरिन, अर्द्ध पेनी और अर्द्ध क्राउनकी जटिलताएँ तो मेरी समझमें ही नहीं आती थीं और न मैं उन्हें याद करनेमें कभी कामयाब हुई। एक डालरमें सौ सेण्ट होते हैं, बस इतना ही तो उसमें याद करना पड़ता है। अब मुझे अंकगणितमें अधिक नम्बर मिलने लगे और मेरा नाम पुरस्कार पानेवालोंकी सूचीमें आने लगा जिसे देखकर मुझे स्वयं बड़ा आश्चर्य होता था। इलाहाबादकी उमस पैदा करनेवाली गरमी इलाहाबादमें ही रह गयी थी। उसके बदले यहाँ हिमालयकी तरो ताजा बना देनेवाली शुद्ध हवा मिलती थी और "हाई रोड्ज़ आफ हिस्ट्री" नामक पुस्तकसे तथा ऐसी ही अन्य सब बातोंसे जो मुझे अप्रिय लगती थीं, अब मेरा पीछा छूट गया था।

हमने काम और खेलके विविध कार्यक्रममें हिस्सा लेना शुरू किया।

हम खेलोंमें शामिल होती थीं, नाटकोंके अभिनयमें तथा छात्रों द्वारा चलाये जानेवाले शासनकार्यमें। लेखाने और मैंने स्कूलके दोनों समूह-वादनोंमें नाम लिखा लिया और रीताने पियानोका अभ्यास आरंभ किया। अब हमारा विद्यालय अग्निपरीक्षाका स्थान न रहकर खेलकी वस्तु बन गया और छुट्टियोंके बाद हम पुनः वहाँ जानेके लिए उत्सुक रहतीं।

एक बार एक महाशय मेरी माताजीसे मिलने आये तो मम्मीने उनसे कहा—"आपको मेरे अमेरिकन बच्चोंसे अवश्य मिलना चाहिये।"

"हाँ, अवश्य, अवश्य"—उन्होंने कहा, यद्यपि माके शब्दोंसे उन्हें कुछ आश्चर्य तो हुआ ही था। उन्होंने तबतक दम नहीं लिया जबतक हम लोग कमरेमें दाखिल नहीं हो गयीं और उनसे हमारा परिचय नहीं करा दिया गया।

हमने वहाँ बहुतसे ग्राम्य शब्द सीख लिये जिन्हें हम अपने कान-वेंटके पुराने साथियोंको सुनाती थीं। उनकी माताओंको हमारी यह अमेरिकन शब्दावली पसन्द नहीं आती थी किन्तु पापूको उसमें बड़ा आनन्द आता था और उन्होंने लेखाका नाम "चन्द्रलेखा अमेरिकाना" रख दिया, क्योंकि लेखाके पास ऐसे शब्दोंका सबसे अधिक संग्रह था और इनका प्रयोग कर सखियोंको चक्करमें डालनेमें उन्हें बड़ा मजा मालूम होता था।

समाजमें साधारणतया हमारी पढ़ाई-लिखाईका यह तरीका पसंद नहीं किया जा रहा था और इस सम्बन्धमें बहुतोंकी यही भावना थी कि "इन बच्चोंकी इससे कोई भलाई न होगी।" अवश्य ही लोगोंने यह बात बहुत पहले ही मान ली थी कि हमारे मातापिता पागल हो गये हैं!—पिता ऐसा जिसने जोरशोरसे चलनेवाली अपनी वकालतपर लात मार दी और इस तरह अपना आर्थिक भविष्य चौपट कर दिया, एक ऐसे खब्ती आदमीके फेरमें पड़कर जिसका विश्वास था कि आत्मत्यागसे ही हमें स्वतंत्रता मिल जायगी, माँ ऐसी जो मोटे-मोटे, भद्दे, अनाकर्षक कपड़े पहनती है और जिसे अपनी गृहस्थी तथा बाल बच्चोंकी तरफ ध्यान देनेकी अपेक्षा बन्दीगृहमें पड़े-पड़े जीवन खपाना ज्यादा पसन्द है। ये दोनों तो इतने आगे बढ़ चुके हैं कि अब इन्हें

कोई बचा नहीं सकता किन्तु इनके भोले-भाले, बेचारे बच्चोंका भला क्या होगा ?

वुडस्टाकमें हम लोगोंको जिन क्रिया-कलापोंमें हिस्सा लेना पड़ा, उनमें एक यह था कि मैंने और रीताने "ब्लूबर्ड ज" (जूमियर कैम्प फायर गर्ल्स) में नाम लिखा लिया था। इसमें भरती होनेकी पक्की स्वीकृति मिलनेके पूर्व प्रत्येक लड़कीको "ईश्वर, राजा और देश" के प्रति निष्ठाकी शपथ लेनी पड़ती थी। रीताको और मुझे ऐसी शपथ ग्रहण करनेमें भारी परेशानी मालूम हो रही थी क्योंकि ब्रिटिश नरेशको हम अपना राजा नहीं मानती थीं, इसलिए इस सम्बन्धमें हम लोगोने पापूसे और मम्मीसे सलाह ली जो इस अवसरपर मंसूरी आये थे। उन्होंने स्कूलके प्रिंसिपलसे इस विषयपर बातचीत की, जो एक बुद्धिमान और समझदार आदमी था। उसने हमारे दृष्टिकोणके सम्बन्धमें सहानुभूतिपूर्ण रुख अख्तियार किया और यह बात मंजूर कर ली कि यदि हम "ईश्वर या देश"के प्रति शपथ ग्रहण कर लें तो इतनेसे काम चल जायगा।

निदान बहुत दिनोंसे जिस अवसरकी प्रतीक्षा की जा रही थी, वह आ पहुँचा। रीताने और मैंने अपनी खाकी पोशाक पहनी, नीले रंगके टाई बाँध लिये और तब अन्य "ब्लूबर्ड ज्ञ"के बीचमें अपना स्थान ग्रहण किया। कमरेमें सन्नाटा छाया हुआ था और जिन बालक-बालिकाओंकी भरती "ब्लूबर्ड ज"में की जानेवाली थी, उनके साभिमान माता पिता अवसरकी प्रतीक्षामें बैठे हुए थे। निदान मेरी पारी आयी और मैं होश-हवास दुरुस्त रखते हुए, जमीनकी तरफ निगाह किये, आगे बढ़ी, धीमे, अस्पष्टसे स्वरमें शपथ ग्रहण की और अपनी जगहपर लौट आयी।

जब रीताकी बारी आयी, वह कदम बढ़ाती हुई सामने गयी और उसने स्पष्ट गूँजती हुई आवाजमें कहा "मैं ईश्वरकी सेवा करनेकी शपथ लेती हूँ........।"यहाँ वह विशेष अभिप्रायसे रुक गयी और उस अखण्ड निस्तब्धतामें एकके बाद दूसरा सेकेण्ड क्रमशः बीतता गया। रीताने अपना गला साफ किया और ऊँची आवाजमें बोलते हुए वाक्य पूरा किया "—और अपने देशकी भी!" विजयोल्लासकी दृष्टिसे

उसने कमरेमें चारो तरफ निगाह दौड़ायी जब कि मैं टकटकी बाँधकर उसे देख रही थी। मम्मी और पापूने ओठोंपर आती हुई मुसकानको किसी तरह रोकनेका प्रयत्न किया।

बादमें मैंने उसे झिड़कते हुए कहा—"तुम्हें यह बात मालूम थी न कि तुम एक महत्त्वपूर्ण शपथ ग्रहण करने जा रही हो ? तुम्हें उसका ऐसा प्रदर्शन करनेकी क्या आवश्यकता थी ?"

उसने बड़े निर्दोष भावसे अपनी भूरी आँखोंसे मेरी तरफ देखा और पूछा—"क्या मुझसे कोई गलती हो गयी ?"

वुडस्टाकमें प्रारंभके कुछ दिनोंमें एक बार मुझे कुछ लज्जित-सा होना पड़ा था, जब बीचमें छुट्टीके समय आठ वर्षके मेरे एक साथीने मुझसे पूछा—"कहिये, क्या यह सत्य है कि आपके माता-पिता जेलकी सजा काट चुके हैं ?"

मुझे कुछ परेशानी भी हुई, फिर भी मैंने सिर हिला कर सूचित कर दिया कि बात सही है। मेरी समझमें नहीं आया कि मैं वह सारी पृष्ठभूमि उसे कैसे समझाती जिसे मैं समझती थी कि सभी लोग जानते हैं। मुझे लगा कि अब मेरे मित्रगण मेरे बारेमें न जाने क्या-क्या सोचेंगे।

"उन्हें जेल क्यों जाना पड़ा ? क्या उन्होंने किसी चीजकी चोरी की थी ?"

"जी नहीं"—मैंने शीघ्रतासे कहा—"इस तरहकी कोई बात नहीं।" मैं व्यग्रतापूर्वक उपयुक्त शब्द ढूँढने लगी और तब बोली—"बात यह है कि मेरे माता-पिता चाहते हैं कि अंग्रेज लोग भारत छोड़ दें और जब वे यही बात कहते हैं तो वे गिरफ्तार कर लिये जाते हैं।"

"आह, यह तो ठीक नहीं है"—वह सहानुभूति दिखलाते हुए बोला—"आप जानती ही हैं कि पहले अंग्रेज लोग अमेरिकामें भी विद्यमान थे किन्तु अब वे वहाँ नहीं हैं। मेरा अनुमान है कि वही बात यहाँ होकर रहेगी।"

मेरे इस मित्रने कक्षाके अन्य लोगोंसे भी हमारी स्थिति समझा दी होगी, क्योंकि इस घटनाके बाद फिर मुझसे इस तरहके कोई भी प्रश्न नहीं पूछे गये।

चौथा अध्याय

चुनाव और उसके बाद

वुडस्टाकसे घर जानेकी हमारी पहली छुट्टी विशेष स्मरणीय है। सन् १९३६ ही वह वर्ष था जब कांग्रेसने प्रान्तोंकी विधान सभाओंके चुनावमें भाग लेनेका निश्चय किया। हम लोग स्कूल छोड़कर दिसम्बर-में घर आयीं। चारो तरफ दौड़धूप और जोशका तूफान-सा फैला हुआ था जिसमें हम भी फँस गयीं। पापू तथा मम्मी, दोनों ही उत्तरप्रदेशीय विधानसभाके चुनावमें खड़े हो रहे थे। मम्मीका निर्वाचन क्षेत्र कान-पुरका देहाती क्षेत्र था और पापूका चुनाव क्षेत्र इलाहाबादके पास ही, नदीके उस पार था जिसे "जमुना-पार" कहते हैं।

किसी भी विदेशीके लिए यह बात एक विचित्र विरोधाभास-सी प्रतीत हो सकती थी कि ये निर्वाचन ऐसे देशमें होने जा रहे थे, जो स्वतन्त्र नहीं था। वस्तुतः इसमें विरोधाभास जैसी कोई बात न थी। भारत पर लागू किये जानेवाले नये संविधान 'भारत सरकारके अधि-नियम १९३५' के अनुसार देशका वास्तविक शासन-सूत्र तो अब भी वाइसरायके ही हाथमें बना रहनेवाला था और केन्द्रीय सरकार, पहिले की ही तरह, अब भी उसीके इशारे चलती रहती, जिसका नियन्त्रण सभी मुख्य विभागोंपर कायम रहता। प्रान्तोंको कुछ विषयोंपर सीमित अधिकार मिलनेवाला था किन्तु यह भी वाइसराय द्वारा जारी किये गये अध्यादेश द्वारा रद्द किया जा सकता था। ऐसा जान पड़ता था मानों वाइसराय सारी दुनियामें सबसे अधिक शक्तिशाली व्यक्ति हो, उन सम्राट्से भी बढ़कर जिनका प्रतिनिधित्व वह करता था। कारण यह था कि ४० करोड़ जनताके जीवन-मरणका अधिकार उसके हाथ में था।

हम लोगोंने पापूसे पूछा कि ऐसी स्थितिमें, जब कि हम सारे खेलको मिथ्या ढोंग समझ रहे थे, हम लोग उस चुनावमें क्यों हिस्सा लेने जा रहे थे, जो उक्त अधिनियमके अनुसार किया जा रहा था?

"उसपर इस दृष्टिसे विचार करो"–पापूने हमें समझाते हुए कहा—"हमारे सामने कोई विकल्प नहीं रखा गया। हम इसे पसन्द करें या न करें, यह संविधान लागू होकर रहेगा। इसे स्वरा-यकी एक मंजिल कहना मूर्खताकी बात है, क्योंकि स्वराज्य तो जनतासे ही प्राप्त हो सकता है। कई हजार मीलकी दूरीपर स्थित किसी देश द्वारा वह हमें, दानमें दिये गये टुकड़ोंकी तरह, प्रदत्त नहीं किया जा सकता। किन्तु जब वह हमारे सामने आ ही गया है,–हम चाहे जिस नामसे उसे पुकारें—तब हम दोमेंसे एक ही बात कर सकते हैं। या तो हम उसे बिलकुल ठुकरा दें, उसकी सर्वथा उपेक्षा करें, या फिर उसे एक चुनौतीके रूपमें स्वीकार करें। कांग्रेसने उसे स्वीकार करनेका निर्णय किया है, क्योंकि वह हम लोगोंको, जो चुनावमें खड़े होना चाहते हैं, जनतासे घनिष्ठतर सम्पर्क स्थापित करनेका मौका देगा। चुनावमें जीत जाना उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है, जितना उन सिद्धान्तोंके अनुसार उसमें भाग लेना जिन्हें हम उचित और ठीक समझते हैं। यदि हम जीत जाते है तो यह उन सिद्धान्तोंकी तथा उन सब बातोंकी जीत होगी जिनका समर्थन और प्रतिपादन कांग्रेस करती रही है।

"और यदि हम लोग जीत न सके तो?"—हमने चिन्तित भावसे पूछा।

"तब भी कोई हानि नहीं"–पापूने जवाब दिया—"क्योंकि प्रान्तीय सरकारोंको वस्तुतः बहुत कम अधिकार प्राप्त होंगे। किन्तु स्मरण रहे कि जीतना या हार जाना मुख्य चीज नहीं है। हम जानना चाहते हैं कि देशकी हमारे सम्बन्धमें क्या राय है। पिछले कई वर्षोंसे हम कतिपय आदर्शों और सिद्धान्तोंके लिए लड़ते रहे हैं और हम खुल्लम-खुल्ला उनकी घोषणा करते हैं। अब हम देखेगें कि लोगोंने उनकी ओर ध्यान दिया है और उन्हें समझा है या नहीं। भारतकी जनताकी दृष्टिमें भी उन आदर्शोंका कोई महत्त्व है या नहीं? इसी बातका पता लगा लेना हमारे लिए आवश्यक है।

निर्वाचन सम्बन्धी कार्यके सिलसिलेमें जब हमारे माता-पिताको दौरेपर जाना पड़ता, तब अक्सर हम लोग भी उनके साथ जातीं, उनके भाषणोंको सुनतीं, वहाँ मिलनेवाले बच्चोंके साथ खेलतीं और गुड़ डाल-

कर मीठा किया हुआ, तथा लम्बे गिलासोंमें रखा हुआ गाढ़ा, मलाईदार दूध पी जाती थीं जो पापूके निर्वाचन-क्षेत्रमें रहनेवाले ग्रामीण हमारे लिए लाया करते थे। कभी-कभी हम लोग नानी-मा तथा बीबी-माके पास घरमें ही रह जाती थीं, क्योंकि उनका ख्याल था कि धूलसे भरी हुई सड़कें तथा राजनीतिक सभाएँ ऐसी जगहें नहीं हैं जहाँ बच्चोंको जाना चाहिये।

एक बार पापू अपने चुनाव-क्षेत्रसे हिरनका एक छोटासा बच्चा ले आये और फिर किसी अन्य बार एक सारस लाये जिसे हम लोग "जानी वाकर" कहती थीं। यह "जानी वाकर" बहुत ही अकृतज्ञ तथा दुष्ट स्वभावका पक्षी था। हम प्यारके साथ उसपर हाथ फेरना चाहती थीं तो वह, जब भी उसे मौका मिलता था, अपनी नुकीली तेज चोंचसे हमें कोंच देता था। परिवारके व्यक्ति तथा बाहरी आदमी, समान रूपसे उसके शत्रु थे। अक्सर हम डाकिये-को, किसी नौकरको या मिलनेके लिए आये हुए किसी आदमीको बागके आरपार तेजीसे दौड़ते हुए देखती थीं और जानी वाकर अपनी लम्बी-लम्बी टाँगोंसे उनके पीछे झपटता हुआ देख पड़ता था। केवल एक ही व्यक्तिका लिहाज वह करता था और वह थी मेहतरानी जो उसे खानेको दिया करती थी। पापूके एक मवक्किलने उपहारके रूपमें उसे अर्पित किया था, इसलिए उसे निकाल बाहर करनेका साहस हम-लोग नहीं कर सके और उसकी तमाम शैतानी बरदाश्त करते रहे। उसके सम्बन्धमें एक ही अच्छी बात थी—दूरसे वह बड़ा शोभनीय सा देख पड़ता था, सुन्दर अदावाला, श्वेत वर्ण, रक्तचंचु प्राणी जो गुलाबी रंगकी अपनी असाधारण रूपसे लम्बी टांगोंमेंसे कभी एकपर और कभी दूसरीपर शरीरका संतुलन करते हुए बड़ी खूबीके साथ जमीनपरसे बीन-बान कर कीड़े-मकोड़ोंको खाता रहता था।

चुनावकी दौड़धूप हमारे जीवनकी, साथ ही राष्ट्रके जीवनकी भी, एक उत्साहवर्द्धक घटना थी। वह कांग्रेस दलके उस महत्त्वपूर्ण निर्णय-की सूचक थी जो उसने पहली बार विभिन्न राजनीतिक दलोंकी शक्तिका अन्दाज लगानेकी दृष्टिसे सरकारके साथ सहयोग करनेके पक्षमें ग्रहण किया था। वह स्वतंत्र देशमें होनेवाले किसी चुनावसे भी अधिक खल-

बली पैदा करनेवाला था, क्योंकि वह एक चुनौतीका सूचक था। राष्ट्रकी माँगोंके सामने थोड़ा-सा झुकनेवाली सरकारने यह देखनेका निश्चय किया कि गुलामीमें डूबे हुए लोग इस अवसरके अनुरूप अपने आपको उठा सकते हैं या नहीं और स्वराजकी स्थापनाके लिए यह पहला उपाय ग्रहण कर सकते हैं या नहीं।

पापूने हमें समझा दिया कि चुनावके सिलसिलेमें कितना कठिन काम करना पड़ता है । कांग्रेसको पहली बार कतिपय व्यावहारिक समस्याओंका सामना करना पड़ा। इनमेंसे एक थी मतदाताओंको मत-दान केन्द्रतक पहुँचानेके लिए सवारियोंका वैसा ही इन्तजाम करनेमें उसकी असमर्थता, जैसा अन्य दलवाले कर सकते थे । पैदल चलते रहनेके कारण जिन ग्रामीणोंके पाँवोंमें छालेसे पड़ गये थे, उनके लिए मोटर बसमें या अन्य सवारीमें बैठकर मतदान कक्षतककी यात्रा करना काफी आकर्षणकी वस्तु थी। अनेक बार तो उन्हें मतदान केन्द्र-तक पहुँचनेमें बहुत दूरतकका फासला तय करना पड़ता था और कांग्रेस उन्हें वहाँतक ले जानेके लिए किसी सरल और आरामदेह उपायका प्रयोग नहीं कर सकती थी । किन्तु कठिनाईका सामना तो औसत दरजेके प्रत्येक भारतीयको प्रायः प्रतिदिन ही करना पड़ता है और वह उसे अच्छी तरह समझता है। यदि कोई बड़ी उदारता दिखला कर एकाएक उसे आराम पहुँचानेकी बात कहता है तो भले ही वह उससे कुछ आकर्षित हो जाय किन्तु वह उसे सन्देहकी दृष्टिसे ही देखता है।

कांग्रेसने भारतवासियोंसे अनुरोध किया कि वे उसी आत्मत्यागकी भावनासे मतदान केन्द्रोंतककी यात्रा करें जिससे प्रेरित होकर वे पचासों मील पैदल चलकर गंगा स्नानके उद्देश्यसे तीर्थयात्रा करने जाते हैं। कांग्रेसने बतलाया कि चुनावके लिए जाना भी एक तरहकी तीर्थयात्रा ही है और इसकी सफलता भी आत्मत्याग और आत्म-समर्पणकी भावनापर ही अवलम्बित है। "पैदल चलो" की पुकारका लोगोंने वैसे ही उत्साहसे अनुपालन किया जैसा कि वे प्रायः ऐसे अवसरोंपर करते ही हैं जब उनसे "वीरता प्रदर्शन" की माँग की जाती है। वे यह काम और भी अधिक उत्साहसे कर सके, क्योंकि

उनके सामने एक और उदाहरण, देहातियोंसे बहुत कुछ मिलते-जुलते महात्मा गान्धीका था, जिन्होंने सन् १९३१ में उस नमक कानूनको तोड़नेके लिए जिसे हम अन्यायपूर्ण समझते थे, हाथमें डंडा लिये हुए समुद्रतटतक कई मील लम्बी पैदल यात्रा की थी।

अपने माता-पिताके समर्थनमें हम लोगोंने भी जोरोंसे कार्य करना आरम्भ कर दिया और जब ११ प्रदेशोंमेंसे ७ में कांग्रेसका बहुमत घोषित किया गया, तब हमारे हृदयमें उत्साहकी जो उमंग दौड़ गयी वह वास्तवमें राष्ट्रके उत्साहकी ही छाया थी। चुनावके बाद भारत धन एवं शक्तिके प्रभावसे अछूता निकल आया। उसने तपेतपाये कांग्रेस कर्मियोंके पक्षमें मत दिया और यह दिखला दिया था कि दुनियाका एक कोना ऐसा भी है जहाँ राजनीतिज्ञों एवं तपस्वियोंमें, राजनीति और कष्ट-सहनमें, गहरा मेलजोल है, गठबन्धन है।

परिणाम घोषित होनेके पहलेके दिन हम लोगोंके लिए बड़ी दुविधा और चिन्ताके दिन थे। हमें न तो भोजन अच्छा लगता था और न नींद ही आती थी। जब-जब टेलीफोनकी घंटी बजती थी, हम लोग समाचार सुननेके लिए दौड़ती ही रहती थीं। एक रातकी बात है। हम तीनों बहिनें अकेली रसोईघरमें भोजन कर रही थीं कि इतनेमें तार-वालेने आवाज दी। लेखाने झपटकर तारका लिफाफा ले लिया और उसे फाड़कर पढ़ा। लिखा था "मम्मीके लिए हाँ" (यस फॉर मम्मी)। हम लोग स्तब्ध होकर एक दूसरीकी तरफ देखती रह गयीं।

लेखाने कुछ सोचा और फिर एकाएक चिल्ला उठी—"हाँ वाले मम्मीके लिए—इसका मतलब हुआ, अधिक वोट मम्मीके पक्षमें आये अर्थात् मम्मी चुनावमें जीत गयीं।"

यह जानकर कि हम लोग बोलचालके अमेरिकन शब्दोंका अधिक प्रयोग करती हैं, मम्मीने ख्याल किया कि हमारे पास अपनी जीतका समाचार सूचित करनेके लिए सबसे उपयुक्त शब्द होगा 'ये' (Yeah) किन्तु तारघरके बाबूने समझा कि इसमें कुछ गलती हो गयी है, इस-लिए उसने 'ये' का 'यस' (Yes) बना दिया। हम लोगोंने अपनी थालियाँ छोड़ दीं और भोजन करनेकी टेबिलके ही चारों तरफ उन्मत्त होकर नाचना शुरू कर दिया। हम लोग तूफानकी तरह नानी-माँ के

कमरेमें दाखिल हो गयी, जहाँ वे तथा बीबी-माँ फर्श पर बैठी हुई रामायण पढ़ रही थीं, और गानेकी स्वरलहरीमें यह खबर उन्हें सुना दी।

एक बार फिर हमने ऐसी ही खुशी मनायी जब, कुछ ही दिनोंके बाद, यह समाचार मिला कि पापूने अपने प्रतिद्वन्द्वीको पछाड़ दिया है, जो उस जिलेका एक बहुत शक्तिशाली एवं सम्पन्न जमींदार था।

इन घटनाओंका स्वाभाविक परिणाम ग्रीष्म ऋतुमें प्रकट हुआ, जब मम्मीका पत्र हमें वुडस्टाकमें मिला था कि वे उत्तरप्रदेशीय मन्त्रि-मण्डलमें मन्त्रिणी नियुक्त हुई हैं। उन्हें स्वास्थ्य विभाग सौंपा गया था। हिन्दुस्तान भरके पत्रों और पत्रिकाओंने सजधजके साथ मम्मीके चित्र छापे जिसमें वे काले बालोंवाली सुन्दर रमणीके रूपमें दिखलायी गयी थीं। वे प्रथम भारतीय महिला थीं जिन्हें मंत्रिमण्डलमें स्थान मिला हो और दुनियाकी भी उन दो चार प्रथम महिलाओंमेंसे वे एक थीं, जो ऐसे महत्त्वपूर्ण पदपर नियुक्त हुई हों। मित्रोंने बधाईके तार और पत्र हमारे पास भेजे, जिन्हें पाकर हमने अपने आपको गर्वान्वित समझा।

अगले दो सालकी जाड़ेकी छुट्टियोंमें हम लोग इलाहाबादके बजाय लखनऊ गयीं, क्योंकि हमारे प्रदेशकी राजधानी लखनऊ ही है। हमारे लिए जीवनका सिलसिला पहलेकी ही तरह चलता रहा किन्तु अब हमारे लिए एक आनन्दप्रद बात यह भी थी कि हम पिकनिककी टोकरी-में रखकर मम्मीके लिए दोपहरका भोजन मंत्रालय ले जाती थीं और वहाँ हम अपने कानोंसे सुनती थीं कि किस तरह लोग मम्मीको "माननीया मंत्रिणी महोदया" कहकर सम्बोधन करते थे।

जब मैं पहली बार सचिवालयमें पहुँची तो मैं चाकलेटमें लिपटा हुआ कागज रद्दीकी टोकरीमें फेंकनेके लिए तमाम बरामदेमें घूमती फिरी किन्तु मुझे एक भी "अवकरी" (कूड़ेदानी) न दिखायी दी। मैं मम्मीके दफ्तरमें चली गयी और मैंने उनसे इसकी शिकायत की।

"सचमुच यह एक ध्यान देने योग्य बात है,"—उन्होंने स्वीकार किया—"क्यों नहीं तुम इस सम्बन्धमें एक पुरजा मुख्य मंत्रीके पास भेज देतीं?"

मैंने मुख्य मंत्रीका अर्थात् पंडित गोविन्दवल्लभ पन्तका अपने घरमें कई बार स्वागत किया था और इस समय मुझे ऊँचे-पूरे डील-

डौलका, उनकी नीचे लटकती हुई सी भूरी मूछोंका और उनकी चम-चमाती हुई आँखोंका स्मरण हो आया। किन्तु सरकारी तौरसे उन्हें पत्र लिखना दूसरी चीज थी। मम्मीके हिम्मत दिलानेपर मैंने हिचकिचाते हुए चन्द पंक्तियोंमें यह शिकायत लिखी और उनसे प्रार्थना की कि सचिवालयके बरामदेमें रद्दी फेंकनेकी टोकरियाँ रखा दी जायँ। मुझे उस समय बड़ी खुशी हुई जब मुझे मालूम हुआ कि मेरी यह प्रार्थना मंजूर कर ली गयी।

मम्मीने अपना दफ्तर बड़े आकर्षक ढंगसे सजाया था और सचि-वालयके उद्यानोंसे तोड़े गये गुलाबके गुलदस्तोंसे उसकी शोभा और भी बढ़ गयी थी। जब उन्होंने पहले पहल अपनी रुचिके अनुसार कमरेको नयी-नयी चीज़ोंसे सुसज्जित करनेका उपक्रम किया तो उनके द्वारा किये जानेवाले परिवर्त्तनोंको देखकर उनका सचिव चिन्तित और भयभीत-सा हो उठा। उसने ख्याल किया कि दफ्तरमें स्त्रियोंकी छोटी-मोटी रुचिके अनुरूप चिह्न देख पड़नेपर महत्त्वपूर्ण कार्योंमें बाधा पड़ना निश्चित है। जब उन्होंने आदेश दिया कि फूल तोड़कर मेरी टेबिलपर रखे जायँ तो वह स्पष्ट रूपसे शंकित सा हो उठा।

"किन्तु माननीया मंत्रिणी जी, ऐसा तो पहले कभी नहीं हुआ," उसने विवश होकर कहना प्रारम्भ किया।

"तो अब होगा।" मम्मीने जोर देते हुए कहा और पौधोंकी पत्तियाँ आदि छाँटनेवाली कैंची लेकर वे स्वयं बगीचेमें जाकर फूल इकट्ठे करने को तैयार हो गयीं।

उनका सचिव अब यह सोचकर और भी अधिक घबड़ा गया कि यह तो उससे भी अधिक अशोभनीय बात होगी कि माननीया मंत्रिणी स्वयं ही, राह चलतोंकी पूरी निगाहमें खड़ी होकर, अपने हाथसे फूलोंका चयन करें। उसने तुरत ही उन्हे आश्वासन दिया कि माली लोग प्रतिदिन आपके कमरेमें गुलाबके फूल पहुँचा दिया करेंगे।

'विजयालक्ष्मी' का नाम उत्तरप्रदेशके गाँवोंमे दन्तकथाकी तरह फैल गया और मेरी माँके अनुकरणपर बहुतसे बच्चोंका यह नाम रखा गया। जहाँ भी वे जातीं, जनतामें, विशेषकर स्त्रियोंमें—बूढ़ी हों या जवान—वे सर्वप्रिय हो जातीं। उनके अधिकारोंका वे अथक भावसे

समर्थन करतीं। नारीके लिए कितनी अधिक सफलता एवं उत्कर्ष प्राप्त करना सम्भव हो सकता है, मम्मीको वे इसका जाज्वल्यमान उदाहरण समझतीं। युवती नारियाँ उनके पदानुसरणका प्रयत्न करतीं, बूढ़ी सयानी महिलाएँ यह सोचकर दुःखित होतीं कि उनके कोई बेटा नहीं है पर वे उनके कामके लिए बराबर आशीर्वाद देती थीं, उनका स्वहस्ताक्षरित फोटो रखनेके लिए लोग विशेष लालायित रहते, इसलिये बालकों तथा प्राप्त-वयस्कोंकी बड़ी संख्या हमेशा इसकी माँग करती रहती थी।

उनके पास दफ्तरमें हजारों चिट्ठियाँ पहुँचती थीं, जिनमें छोटीसे छोटी और जटिलसे जटिल प्रार्थनाएँ की जातीं, सरकारी मामलोंके सम्बन्धमें भी और निजी मामलोंमें भी। कभी-कभी उनमें अत्यन्त ही करुणाजनक भावसे तुरन्त ही सहायता करनेको कहा जाता और उनका प्रारम्भ विभ्रान्त ढंगसे कुछ-कुछ इस तरह किया जाता—"प्यारी बहन, तुम ही मेरी माँ हो और तुम ही पिता। यदि तुम मेरी सहायता नहीं कर सकतीं तो और कोई नहीं कर सकता।"

उत्तरप्रदेशके प्रत्येक निवासीके लिए व्यक्तिगत रूपसे यह बड़े अभिमान और गौरवकी वस्तु समझी जाती थी कि मम्मीने इस तरह और ऐसी उच्च सफलता प्राप्त की जो उन्हें मिली। किन्तु यहाँवालोंकी दृष्टिमें यह एक स्वाभाविक-सी घटना थी, जो उससे अधिक कुछ भी न थी जिसकी आशा वे मोतीलाल नेहरू जैसे महान् नेताकी कन्यासे कर सकते थे। जहाँ देशके अन्य-अन्य प्रान्तवालोंने उनकी सफलतापर बड़ा हर्ष प्रकट किया और उनकी बड़ी प्रशंसा की, वहाँ उत्तरप्रदेशने इसपर शान्तभावसे वैसा सन्तोष प्रकट किया जैसा उस पिताको होता है जो अपनी प्रिय पुत्रीकी प्रतिभाको देखकर उसके सम्बन्धमें की गयी आशाको पूर्ण होते देखता है।

(भारतमें) कोई महिला मन्त्रिणीका पद ग्रहण करे, कोई स्त्री हैजे अथवा दुर्भिक्षसे पीड़ित क्षेत्रोंका दौरा करती हुई वैसा महत्त्वका काम करे, जैसा अभी तक किसी नारीने नहीं किया था—यह कुछ ऐसी नयी और बेजोड़-सी बात थी कि कुछ लोगोंको अभी तक विश्वास नहीं होता था कि ये बातें सचमुच सत्य हैं। एक बार जब वे भाषण कर रही थीं तब पके बालोंवाले एक किसानने आश्चर्य प्रकट करते हुए अपना

सिर हिलाया और अपने पड़ोसीसे कहा "हाँ भाई, बात सची है। ये जो हमारे सामने भाषण कर रही हैं, वास्तवमें एक महिला ही हैं।"

किसी स्त्रीने इसके पहले इतना ऊँचा पद प्राप्त नहीं किया था किन्तु स्त्रियों और पुरुषोंमें समानता है, यह विचार भारतीयोंके लिए कोई नयी और बाहरी वस्तु न थी। प्रथाओं और रिवाजोंके पीछे शताब्दियोंमे छिपी रहनेके बावजूद यह चीज इस देशमें बहुत पुराने जमानेसे बराबर मौजूद रही है, जब कि पत्नी पुरुषकी सम्मानित एवं बराबरीकी संगिनी या सहचरी रही है। संस्कृत साहित्यमें पत्नीको अर्द्धांगिनी भी कहा है अर्थात् मनुष्यका आधा भाग, जो एक मिला-जुला पूर्णांग बनानेके लिए परमावश्यक है। इसे दबानेके अनेक प्रयत्न किये गये, फिर भी यह विचार बराबर जीवित बना रहा और गांधीजी के पथप्रदर्शनमें वह एकबार फिर सबके सामने आ गया।

पुरुषोंसे अपनी समताकी घोषणा करनेके लिए भारतीय नारियोंको अधिकार माँगनेवाली पश्चिमकी नारियोंकी तरह जुलूस बनाकर प्रदर्शन नहीं करना पड़ा और न उन्हें नारी-परिधानका परित्याग कर पुरुषों जैसी पोशाक पहननेकी ही आवश्यकता पड़ी। इन सब उपायों-का सहारा लेनेकी यहाँ नौबत ही नहीं आयी। गांधीजीने राष्ट्रीय आन्दोलनमें पुरुषोंके साथ-साथ हिस्सा ग्रहण करनेके लिए स्त्रियोंका आह्वान किया और वे स्वाभाविक रूपसे उठ खड़ी हुईं मानो इस कामके लिए उनका जन्म ही हुआ हो—मानो वे पैदा ही इसलिए हुई हों कि सार्वजनिक मंचोंपरसे राजनीतिक विषयोंपर भाषण करें, जब पुलिस उनके शान्तिमय समारोहोंपर आक्रमण करे तो उसके आघातोंको सहन करें और अपने बच्चोंसे पृथक् होकर महीनों जेलकी यातना सहें। वह एक तरहका अनोखा, मनमौजी ढंगका, स्वेच्छया स्वीकृत अनुशासन था। मम्मी उन सुदृढ़ हृदयोंवाली नारियोंमेंसे केवल एक थीं।

पश्चिममें नारियोंकी बन्धन-मुक्तिका एक परिणाम यह हुआ कि उनके पहनावे आदिमें अन्तर आ गया। ऊँचा साया पहिनना और बाल कटवाकर उनकी लम्बाई बहुत छोटी करा लेना स्वतन्त्र नारीका फैशन बन गया। इसके विपरीत (स्वतन्त्रता-प्राप्तिके बाद भी) भारतीय नारियोंकी वेशभूषा आदिमें कुल मिलाकर कोई विशेष परिवर्तन नहीं

हुआ। वे अब भी अपनी सौन्दर्यवर्द्धक, मनोरम साड़ियाँ पहनती हैं, जिससे सिद्ध होता है कि महिलोचित वेषभूषामें भी अपना काम पूरी योग्यता एवं क्षमतासे किया जा सकता है। लम्बे बालोंका होना अब भी नारीके लिए सौन्दर्यका सूचक माना जाता है और बहुत-सी भारतीय स्त्रियाँ बराबर लम्बे बाल रखना ही पसन्द करती हैं।

अध्याय ५

बीचका समय

रीता और मैं लखनऊकी याद कभी भूल नहीं सकती। इसका कारण वह निजी अनुभव है जो हमें वहाँ प्राप्त हुआ। मम्मी वहाँ पर मन्त्रिणी थीं, इससे उसका कोई सम्बन्ध नहीं। जीवनमें पहली बार वहाँ हमारे विचार-स्वातन्त्र्यमें बाधा उपस्थित हुई और इस सम्बन्धमें हम कुछ भी नहीं कर सकती थीं, इसीसे हमें बड़ी परेशानी-सी मालूम होती थी। मन्त्रिपद पर मम्मीकी नियुक्ति होनेके बाद पड़नेवाली शीतऋतुमें हम एक स्विस-इटैलियन गवर्नेसकी देख-रेखमें रख दी गयीं, जिसका सुदृढ़ विश्वास था कि मनुष्यको किसी न किसी तरहके मनोनियन्त्रणका अभ्यास अवश्य करना चाहिये। हम उसे "मैडमाइसेल" कहा करती थीं। वह हमें फ्रेंच भाषा उतना नहीं पढ़ाती थी जितना हमें अपने ढंगपर विचार-नियन्त्रण करना सिखलाती थी, जो हमें बिलकुल पसन्द न था।

जानेके कुछ ही दिनों बाद उसने हमारे लिए "वी विजडम" नामकी पत्रिका मँगाना शुरू कर दिया। उसमें नियमित रूपसे एक प्रार्थना छपा करती थी जिसका शीर्षक रहता था "विश्वासकी प्रार्थना"। इसे हमें याद कर लेना पड़ता था और हर रातको सुनाना पड़ता था। प्रतिदिन हमें १५ मिनट तक चुपचाप ध्यानमग्न होनेका अभ्यास करना पड़ता था। कुछ क्षणोंके लिए भी मौन साधन करना हमारे लिए मुश्किल था, अतः १५ मिनट तक इस स्थितिमें रहनेसे हमें लगता था मानो एक युग हमने बरबाद कर दिया हो।

"आखिर यह ध्यान या समाधि लगाना है क्या चीज?" रीताने एक बार झुँझलाहटके साथ पूछा।

"वह एक तरहका सोचना या विचार करना ही है", मैड माइसेलने जवाब दिया।

"किन्तु १५ मिनट तक चुपचाप बैठे बिना भी तो मैं सोच सकती हूँ" रीताने अपना उज्र पेश करते हुए कहा।

"चुपचाप बैठे रहनेसे हमें अधिक स्पष्टतापूर्वक सोचनेमें सहायता मिलती है" मैडमाइसेलने कहा और ऐसा रुख ग्रहण किया जिससे मालूम हो गया कि इस सम्बन्धमें और वाद-विवाद करना उसे पसन्द नहीं।

एक दिन मुझे गहरी सरदी लग गयी और मम्मीने दफ्तर जानेके पहले मैडमाइसेलसे कहा कि लड़कीको विस्तरेपर लेटा रहने दो और डाक्टरको बुलवाकर उसे दिखला दो। एक घण्टेके बाद मम्मीने टेली-फोन किया और पूछा कि डाक्टरने क्या सलाह दी।

"मैंने तो उन्हें बुलाया ही नहीं, श्रीमती पंडित," मैडमाइसेलने जबाब दिया।

"सो क्यों?" मम्मीने चिन्तित भावसे पूछा।

"उसका मतलब होता एक तरहकी नैतिक पराजय", दृढ़तापूर्वक जवाब दिया गया।

जो हो, मैडमाइसेलकी इच्छाके विरुद्ध डाक्टर बुलाया गया और उससे सलाह ली गयी।

दो-चार दिनोंके बाद एक रातमें मम्मी एक दावतसे कुछ देरमें पहुँचीं। वे दबे पाँव उस कमरेकी ओर बढ़ीं जिसमें मैं तथा रीता सोयी हुई थी। वे देहलीपर रुक गयीं और उन्होंने मुँहसे निकलती हुई चीख-को जबरन् रोक लिया। उन्होंने देखा कि मैडमाइसेलकी अद्भुत-सी लगनेवाली आकृति लम्बा-सा रातका परिधान पहने हुए रीताके विस्तरे-के किनारे बैठी हुई है और धीमी आवाजमें कुछ बुदबुदा रही है तथा अपने छाया जैसे हाथ रीताके चेहरेके ऊपरसे आगे-पीछे घुमा-सी रही है। मम्मीने अपनेको सँभाला और शान्तभावसे कमरेमें प्रविष्ट होते हुए वहाँका सन्नाटा दूर कर दिया।

"क्या मैं पूछ सकती हूँ मैडमाइसेल कि आप क्या कर रही हैं?" उन्होंने गवर्नेससे सीधा प्रश्न किया।

"मैं स्वतः-सुझावकी प्रक्रियाका प्रयोग कर रही हूँ" मैडमाइसेलने, बिस्तरेके पाससे उठते हुए कहा, "आप देखती ही हैं श्रीमती पंडित,

कि रीता इधर कई दिनोंसे शैतानी अधिक करती रही है और मुझे निश्चय प्रतीत होता है कि थोड़ा-सा स्वतःसुझावका अभ्यास उसका मर्ज ठीक कर देगा। बच्चा जब सोता रहता है, तब इसका अधिक प्रभाव पड़ता है।"

इस उत्तरके बाद मम्मीको मैडमाइसेल रूपी व्याधिसे छुट्टी मिल गयी और यह भली महिला इस घटनाके बाद शीघ्र ही हमसे पृथक् हो गयी। उसी जाड़ेमें एन्ना आर्नशोल्ट हमारे परिवारमें प्रविष्ट हुईं। वे लम्बी-सी, इकहरे बदनकी डेनिश महिला थीं। उनके बाल लोहे जैसे रंगके आँखें नीले रंगकी, चिकना हलका गेहुँवा रंग, व सामनेकी ओर झुकनेवाला कदम।

उन्होंने आते ही हम लोगोंसे कहा—"अच्छा आइये, आजसे हम लोग एक दूसरेके मित्र बनने जा रहे हैं। तुम लोग मुझे "ताँते एन्ना" कहकर पुकारना।"

और ताँता एन्नाने हमारे जीवनमें बहुत-सी बातें सिखानेवाली संस्था जैसा स्थान बना लिया। शीतल जलसे स्नान करने, व्यायाम एवं धूप-स्नानमें उनका अत्यधिक विश्वास था। मसूरीमें दिसम्बरके महीनेमें सबेरेके वक्त जब कड़ाकेकी सरदी पड़ती थी, वे हमें बेरहमीसे बिस्तरेपरसे खींच लेतीं और और स्नानगृहकी ओर ले जातीं, जहाँ फव्वारेकी बरफ जैसी फुहारोंसे हमें स्नान करना पड़ता। इसके बाद हम लोग घरके बाहर पहाड़ीकी ढालपर चमकती हुई धूपवाले पीलेसे क्षेत्रकी ओर टहलने जातीं, जहाँ हम गहरी साँसें लेकर प्राणायामका अभ्यास करतीं। यदि हम लोग कभी बहुत कड़ी सरदीकी बात कहकर विरोध करतीं, तो एक तिरस्कारपूण-सा उत्तर मिलता—"वाह! हम लोग वाइकिंग डाकूकी तरह फौलादकी जो बनी हैं, ख्याल तो करो!" और सचमुच हम लोग वाइकिंग बनकर ही रहीं।

ताँते एन्नाको उन लोगोंसे बड़ी घृणा थी जो अपना काम खुद नहीं करते। उनकी देखरेखमें हम लोग खुद अपने बिस्तरे बिछातीं, जूतोंमें अपने हाथोंसे ही पालिश लगातीं और अपना कपड़ा सीना एवं मरम्मत करना भी सीख गयीं। बोर्डिंग-स्कूलके बाहर हमने यह काम पहले कभी

नहीं किया था क्योंकि घरपर नौकर लोग तो थे ही जो सब काम कर दिया करते थे।

"उठकर बैठो, सीधी कमर करके टहलो", इस तरहके आदेश वे हमेशा हम लोगोंको देती रहती थीं। "भारत स्वतंत्र कैसे होगा, यदि तुम्हारी उम्रके बालक-बालिकाएँ छाती तानकर बैठनेके बजाय, ढीली-ढाली और झुकी हुई मुद्रामें बैठनेकी आदत डाल लें ? मेरी तरफ देखो, मैं किस तरह सीधी, तनकर बैठती हूँ और मैं तुम लोगोंसे बहुत ज्यादा उम्रकी हूँ।"

"क्या उम्र है आपकी, ताँते एन्ना ?" रीताने जिज्ञासापूर्वक पूछा। उनकी उम्रके सम्बन्धमें हम लोग आपसमें कई बार चर्चा कर चुकी थीं किन्तु अभी तक किसी निश्चित निर्णयपर नहीं पहुँच पायी थीं।

उन्होंने सोच-साचकर जवाब दिया "मेरी उम्र १०० वर्षकी है" और ऐसा प्रतीत हुआ मानो यह "हैंस एण्डर्सन"की कहानियोंमें किसी भूली हुई कहानीकी प्रतिध्वनि हो।

"यह तो बहुत ज्यादा उम्र हुई", रीताने कहा "आप ही दुनियामें सबसे अधिक उम्रकी बुढ़िया है।"

"तुम अपने आपको कितनी जवान समझती हो, यह अधिक महत्त्वकी बात है।"

उनमें किसी ऐसे व्यक्तिकी अपेक्षा जिन्हें हम जानती थीं, कहीं अधिक जीवनी शक्ति थी। वे बड़ी उत्साहपूर्ण शाकाहारिणी थीं और अक्सर वे कभी-कभी परिमिताहारका सहारा लेकर केवल कच्ची तरकारी खाती थीं जिनमें कच्चे आलू भी शामिल हैं। उनका उत्साह इतना बढ़ा हुआ था कि उन्होंने हमारे शिकारी कुत्ते टैंगिल तकको शाकाहारी कुत्ता बनाना चाहा किन्तु उन्हें उस समय यह प्रयत्न छोड़ देना पड़ा, जब शाकका रसा खाकर वह सुस्त-सा रहने लगा।

ताँते एन्नाने हम लोगोंके अभीतकके अस्तव्यस्तसे जीवनमें एकरसता ला दी और सुन्दर अनुशासनमें चलना हमें सिखा दिया। उनकी एक-एक चीज हमें आकर्षित कर लेती थी, क्योंकि उनकी तरह अन्य किसी गवर्नेसने आजतक हमारी उतनी देखभाल नहीं की थी। हम लोगोंमेंसे किसीका भी जन्म उस समय नहीं हुआ था जब वे भारत आयी

थीं। वे थियासाफिस्ट बन गयीं और बादमें सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक सर जगदीशचन्द्र वसुके सचिवके रूपमें काम करने लगीं। जब वे बाहर निकलती थीं, तब हमेशा ही साड़ी पहन लिया करती थीं। किसी भी यूरोपीय महिलाके लिए इस हद तक भारतीय रंग-ढंग अपना लेना असाधारण बात थी। वे हमारे मित्रों, सम्बन्धियों और नौकरों तकके लिए ताँते एन्ना बन गयीं और लोग उनका विपुल शक्ति-संचय देखकर आश्चर्य करते-करते कभी नहीं थकते थे। वे तैराक थीं और टेनिस तथा बैडमिंटन बड़े उत्साहके साथ खेला करती थीं और गरमियोंमें तीसरे पहर जब झुलसा देनेवाली गरमी तथा सूर्यकी कठोर चमकसे परेशान होकर लोग ठण्डे, अँधेरे कमरोंमें लेटकर झपकी लेनेका प्रयत्न करते, तब ताँते एन्ना उघारे सिर अपनी बाइसिकिल पर चढ़ जातीं और एक मील दूर बाजारमें जाकर मम्मीके लिए सामान खरीद लातीं थीं। शहरके यूरोपीय निवासियोंका पक्का विश्वास था कि वे बिलकुल पागल हैं।

अध्याय ६

घरका वातावरण

किसी भी भारतीय घरका वर्णन तबतक पूरा नहीं कहा जा सकता जबतक उसके साथ उन लोगोंका भी हालचाल नहीं बताया जाता जिनका जीवन उसकी सेवा करनेमें बीतता है। हमारे जीवनके निर्माण में परिवारके नौकरोंका बड़ा हाथ रहा है। माता-पिताके जेल चले जाने पर जब हमें उनसे अलग रहना पड़ता था, तब ये लोग यदि हमें अपने बच्चोंकी ही तरह मानते हुए, स्नेह और सावधानीसे हमें बड़ा करनेके लिए हमारे साथ न होते तो हमें ऐसी प्रतीति हुए बिना न रहती मानो हम संकटकी दरियामें बह गये हों और घरसे हमारा उन्मूलन कर दिया गया हो। उनके शान्त एवं निष्ठापूर्ण अनुरागमें भारतकी आत्मा ही प्रतिबिम्बितसी जान पड़ती थी, जो वैयक्तिक दुःखों एवं कष्टोंको सहते-सहते बूढ़ी हो गयी हो, जिसपर शायद सैकड़ों विपत्तियाँ आयी हों, फिर भी जो अभीतक शान्त और सुस्थिर बनी हुई हो।

इस भावनाकी जीती-जागती प्रतिमूर्ति थी कूड़ा बटोरनेवाली हमारी जमादारिन लछमनिया। प्रतिवर्ष, एक दिनके बाद दूसरे दिन हम उसे हाथमें झाड़ू लिये हुए झुककर दूर्वाक्षेत्र (लान) से सूखे पत्तोंको बटोरते हुए अथवा कभी-कभी एक स्थानपर बैठकर कूचीसे घरके संगमर-मरके फर्शको साफ करते हुए देखती थीं। उसके चेहरेपर झुर्रियाँ आ गयी थीं। किन्तु उसकी आँखोंमें चमक थी और जब वह बोलती थी तो मुसकुरानेके कारण बहुत ज्यादा पान खानेसे काले पड़े हुए उसके दाँत दिखाई पड़ जाते थे। वह प्रायः कम ही कपड़े—फटी-सी साड़ी और ब्लाउज पहने रहती थी, क्योंकि हम लोग चाहे कितने ही अधिक कपड़े उसे क्यों न देतीं, वे उसके शीघ्रतासे बढ़ते हुए परिवारकी दृष्टिसे कभी काफी नहीं हो पाते थे। कानोंमें वह चाँदीके बड़े-बड़े ऐरन पहने रहती थी जो इतने वजनी थे कि उन्हें सम्हालनेके लिए वे हुक या पेंच पूरा

काम नहीं दे सकते थे जो कानकी लौमें पड़े रहते थे, वरन् उनका भार हलका करनेके लिए कानोंके चारों ओर एक जंजीर भी लपेटनी पड़ती थी। फिर भी इन सिकड़ियोंके बावजूद उसके कानके छेद अधिक वजनके कारण फटकर बड़े हो गये थे। उसकी चिकनी, साँवली कलाइयोंपर शीशेकी रंगीन चूड़ियाँ चमकती रहती थीं, पैरके टखनोंके चारों तरफ वह ठोस, वजनी कड़े पहने रहती थी और प्रत्येक पाँवकी एक उँगलीमें एक एक बिछिया पड़ा रहता था। वह गरीब थी और क्षुद्र कुलमें उत्पन्न हुई थी, फिर भी वह नारी ही थी और उसमें नारीके ही याग्य आभूषणोंके प्रति अभिरुचि एवं अभिमान दृष्टिगोचर होता था।

"लछमनिया, क्या ये तुम्हारे ऐरन तुम्हें तकलीफ नहीं देते?" मैंने बड़े सचिन्त भावसे पूछा। जब-जब मैं उसके कानोंकी लौमें हुए बड़े-बड़े छेदोंको देखती थी, तब-तब मुझे अपनी सिहरन रोकनेके लिए विशेष प्रयत्न करना पड़ता था।

इसपर उसे हँसी आ गयी और उसने जवाब दिया—"नहीं, मेरी नन्हीं बची, मुझे इनसे कोई तकलीफ नहीं। इन ऐरनोंको पहनते-पहनते मेरी आदत पड़ गयी है।"

उसने मेरे कानोंकी तरफ गौरसे देखा और बोली—"तुम्हें अब अपने कान छिदवा लेने चाहिये। तुम काफी बड़ी हो गयी हो।"

लेखा और मैं सचमुच चाहती थीं कि हमारे कान छेद दिये जायँ ताकि जब हम साड़ी पहिनकर तैयार हों तो कानमें बुंदे पहन सकें जैसा कि हमारी कितनी ही सखियाँ किया करती हैं। किन्तु जब कभी हम पापूसे इस सम्बन्धमें कोई चर्चा करतीं तो उनकी भृकुटी चढ़ जाती और वे बुदबुदा उठते—"कितना वहशियाना रिवाज है।"

लछमनियाके बच्चे सुन्दर थे—कुन्दन-सी देह, घुँघराले भूरे-से बाल, मटमैली-सी आँखें। लछमनियाकी झाड़ूसे उठे धूलके बादलमें झुण्डके झुण्ड ये बच्चे एक दूसरेके ऊपर इस तरह लुढ़कते-पुड़कते थे जैसे छोटे-छोटे पिल्ले आपसमें खेलवाड़ करते हों। ऐसा लगता था, मानो धूलसे उन्हें कोई परेशानी नहीं होती, न ग्रीष्म ऋतुकी लूसे और न दिसम्बरके जाड़ेमें पड़नेवाली ओससे। वे उसी तरह बढ़ते थे, जिस तरह खुले आकाशमें सूर्यकी तरफ टहनियाँ फैलानेवाले पौधे बढ़ते चलते

हैं। गरमी-सरदीकी उन कठिनाइयोंकी परवाह उन्हें नहीं रहती, जिनसे हमारे जैसे सँभाल-सँभालकर उगाये जानेवाले फूलोंके पौधे परेशान रहते हैं। लछमनिया जब कामपर जाती तो अपने छोटेसे छोटे बच्चों, डेढ़ महीनेके शिशुको भी, साथमें लिये रहती, यद्यपि वह बड़ी आसानी-से उस झोपड़ीमें छोड़ा जा सकता था जो अमरूदके पेड़ोंकी वाटिकाके समीप स्थित थी और जिसमें वह रहती थी।

"तुम उसे घर पर ही क्यों नहीं छोड़ देतीं?" मैंने उससे पूछा। "क्या वहाँपर वह अधिक सुखी न रहेगा?"

उसने मुझे निश्चय दिलाते हुए कहा—"नहीं, वह यहाँही सुखी है और यहाँ जब भी उसे भूख लगे, मैं तुरन्त दूध पिला सकती हूँ।" मैंने नजर दौड़ायी तो देखा कि एक ओर नीमके पेड़के नीचे गन्दासा कपड़ा बिछा हुआ है। उसीपर छोटा बच्चा पीठके बल लेटा हुआ है। लछमनियाने अभी-अभी सरसोंके तेलसे उसकी अच्छी तरह मालिश की थी, जिससे उसकी छोटीसी देह खूब चमक रही थी।

लछमनियाने जिस तरह बेरहमीसे उसके हाथ-पाँवकी मालिश की थी और फिर उलटकर पेटके बल लिटा दिया था, उससे किञ्चित् भय-भीत सी होकर मैंने कहा, "उसके सम्बन्धमें और अधिक सावधानीकी जरूरत है, नहीं तो उसे चोट लग जानेकी सम्भावना है।"

"नहीं, नहीं, उसे चोट नहीं लगेगी," उसने मुसकराते हुए कहा। "यदि मैं ठिकानेसे उसकी मालिश न करूँ तो वह मजबूत कैसे बनेगा?"

इस कठोर व्यवहारसे बच्चेको कोई परेशानी हुई हो, ऐसा नहीं जान पड़ता था। मालिशके बाद नीमकी छायामें वह सो गया—छोटा-सा, उघारे बदन लेटा हुआ शिशु जिसकी एक कलाईपर काला डोरा बँधा हुआ था। यह डोरा उसे किसी भी तरहकी दुर्घटना या विपत्तिसे बचानेके लिए एक तरहका टोटका था।

सुन्दर नामका हरिजन हमारा "बेयरर" (भृत-परिवेषक) था। भोजन करते वक्त वह हमारे निकट खड़ा रहता था और हमारे कमरेकी देखभाल भी वही करता था। मैं नहीं जानती कि वह हम लोगोंके परि-वारमें कब आया था। मुझे तो लगता था, मानो वह हमेशासे ही वहाँ

रहा हो और हम लोगोंकी देखभाल बराबर करता रहा हो—छोटे कदका, साँवला-सा लघुकाय व्यक्ति था वह, जा "सुन्दर" नाम होते हुए भी "असुन्दर" ही माना जायगा।

"मैं शायद उसे सुन्दर नहीं ही कह सकता", पापूने एक दिन जोर देते हुए कहा। "सुन्दरताकी दृष्टिसे यह बिलकुल अनुचित होगा।"

"किन्तु आपको उसे सुन्दर ही कहना पड़ेगा", मर्म्मीने आग्रहपूर्वक कहा। "यह तो उसका नाम ही है और जब इतनी उम्र उसकी बीत गयी है तो उसे बदलनेकी बात सोचना व्यर्थ है।"

"अच्छी बात है, यही ठीक है", पापूने समझौता-सा करते हुए कहा, "मैं उसे "गुआपो" कहूँगा, जिसका अर्थ भी, स्पेनिश भाषामें सुन्दर है। उतना स्पष्ट न होनेके कारण अधिक नहीं खटकेगा।"

और पापूके लिए वह हमेशा गुआपो ही बना रहा। उसके हाथ-पाँव चौड़े, फैले हुए, उभड़ी हुई नसोंवाले तथा खुरदरेसे थे। वे पुराने पेड़ोंकी जड़ोंसे जितने मिलते-जुलते थे, उतने अन्य किसीसे नहीं मिलते थे। उसके चेहरेपर गहरी झुर्रियाँ पड़ी हुई थीं और उसकी आवाज मुर्गेकी बाँग जैसी थी। प्रत्येक बार जब श्रीमती सरोजनी नायडू हम लोगोंसे मिलने-जुलने आतीं, वे उससे पूछ बैठतीं—"हरे ईश्वर, क्या तुम अभी जिन्दा ही हो, सुन्दर ?" और वह नम्रतापूर्वक सिर हिला देता।

सुन्दर नियमित रूपसे हमें झिड़का करता था और धैर्यपूर्वक मना कर, फुसलाकर हमें भोजन करनेके लिए राजी कर लेता था। हमारे जीवनमें गवर्नेसको हस्तक्षेप करते देखकर उसे बहुत बुरा लगता था। हम जहाँ जाती थीं, वहीं वह हमारे साथ जाता था—मसूरी, लखनऊ या अलमोड़ा—किन्तु जितना सुखी वह इलाहाबादमें रहता था, उतना अन्यत्र नहीं, क्योंकि इलाहाबादमें वह अन्य नौकरोंको भी हुक्म दे सकता था और जब वह कुछ कहता था, तब अन्य लोगोंको उधर ध्यान देना ही पड़ता था। इलाहाबादमें रहना उसे अधिक पसन्द होनेकी एक वजह और थी—उसके लिए वह एक पवित्र नगर था, जैसा कि करोड़ों भारतीयोंके लिए है।

वह अक्सर कहा करता था—"इलाहाबादसे अधिक पवित्र हवा

और कहींकी नहीं है, क्योंकि यह हवा गंगा और जमुना, दोनों की है।"

हमारे परिवारका दरजी, मुहम्मद हुसेन एक और बुड्ढा तथा प्रिय सेवक था। उसने मम्मीके विवाहकी पोशाकके कितने ही कपड़े सिये थे और तभीसे वह उनकी सेवामें रह गया था। मुझे कोई ऐसा समय याद नहीं आता जब कि यह दरजी, यदि जाड़ेके दिन होते तो, बरामदे के धूपवाले हिस्सेमें तथा गरमियोंमें छायायुक्त कोनेमें पाँवपर पाँव रखे "घरघर" करती हुई अपनी मशीनके सामने न बैठा रहता हो। वह पुराने ढंगकी मशीन थी जिसमें हेंडिल लगा हुआ था। उसीपर हमारे बचपनके अधिकतर कपड़े सिये गये थे।

दरजीके पास रंगीन डोरा लपेटनेकी बड़ी सुन्दर-सुन्दर गिट्टियाँ (रीलें) रहती थीं जिन्हें हम उससे अपने खेलनेके लिए माँग लेती थीं। जिस थैली में वह सीनेका सामान रखता था, उसमेंसे हम बचे हुए रेशमी तथा साटनके टुकड़े निकाल लेती थीं और उनसे गुड़ियोंके कपड़े तैयार कर लेती थीं। कामके घण्टोंके बीचमें दो बार वह मशीन छोड़कर हट जाता था और मक्केकी दिशामें मुँह करके नमाज पढ़ा करता था, क्योंकि वह धर्मनिष्ठ मुसलमान था। जब वह प्रार्थनामें व्यस्त रहता, तब हम हमेशा अपना कार्यकलाप बन्द कर देती थीं और सम्मानसूचक शान्तिधारण किये हुए तबतक प्रतीक्षा करतीं जबतक वह अपनी मशीन पर काम करनेके लिए लौट न आता। तभी हम फिर अपना खेलना आरंभ कर देती थीं।

आनन्दभवनमें दो चौकीदार थे। एक तो दिनमें दर्शकों और मिलनेके लिए आनेवालोंकी भीड़को काबूमें रखनेका प्रयत्न करता था और दूसरा रातमें पहरा दिया करता था। नानी-माँ दोनोंमें एकसे भी खुश न थीं और वे उनकी डाँट-फटकार तथा झिड़कियोंके भयसे हमेशा काँपते रहते थे। एक दिन बंसी, जो दिनका चौकीदार था—एक भीरु-सा छोटा आदमी, जिसके घुटने चलते समय आपसमें टकरा जाते थे, और जो सर्वदा ही दर्शकोंकी भीड़का नियन्त्रण करनेमें असमर्थ रहता था—दौड़ता हुआ मेरी नानीके कमरेमें आया। उसने डरते-डरते धीमी आवाजमें कुछ अस्पष्ट से शब्द कहे जिनका संकेत लोगोंकी उस भीड़-की ओर था जो दर्शनोंकी प्रतीक्षामें बाहर खड़ी थी।

"जाओ, उनसे कह दो कि वे घरका परिदर्शन नहीं कर सकते" नानी-माँने रुखाईसे कहा, "कितनी बार मुझे तुमसे कहना होगा कि किसी भी व्यक्तिको घरके अन्दर मत आने दो ?"

बंसीने एकाएक ऐसा भाव दर्शाया मानों वह वर्षोंसे भेड़ोंकी तरह आज्ञा-पालनका आदी रहा हो, और हैरानीसे हाथ झटकारते हुए दृढ़तापूर्वक बोला—"किन्तु मैं कह रहा हूँ कि वे आपके दर्शन करना चाहते हैं, खुद आपके, मकानके नहीं।"

नानी-माँको कुछ सूझ न पड़ा और हतबुद्धि-सी होकर उन्होंने दर्शकोंको सामने आने देना स्वीकार कर लिया, जो वे पहले कभी नहीं करती थीं। वे लोग एकके बाद एक बरामदेमे इकट्ठे हो गये ताकि उस भव्य भवनकी स्वामिनीकी क्षणिक झलक पा सकें।

रातके चौकीदारसे भी नानी-माँ इसी तरह अप्रसन्न रहती थीं।

"यह कमबख्त पहरा देनेके बजाय रातभर सोता रहता है" उन्होंने शिकायत करते हुए कहा।

"नहीं, ऐसी बात नहीं" बीबी-माँने तसल्ली देते हुए कहा "वह बराबर सावधान रहता है। आप चिन्तित न हों।"

"यदि वह मुँहसे कुछ बोलता नहीं, आवाज नहीं करता. तो मैं कैसे जानूँ कि वह जाग रहा है या सो रहा है ?"

इसके बादसे रातमें पहरा देनेवाले चौकीदारको साफ-साफ हिदायत कर दी गयी कि वह बीच-बीचमें खाँस लिया करे, गला साफ कर लिया करे और कभी-कभी जोरसे आवाज भी किया करे। रातके अन्धकारमें थोड़ी-थोड़ी देरके बाद इस तरह की जानेवाली आवाज सुनकर मेरी लघुकाय नानीजीकी आशंका दूर हो जाती थी और वे निश्चिन्त भावसे सो सकती थीं।

हरि जब अस्तव्यस्त बालोंवाला ५-६ वर्षका बालक था, तभी एक दिन भटकता हुआ वह नेहरू परिवारमें जा पहुँचा। उसका पिता, जो एक अंग्रेज अफसरके घरमें भोजन बनानेका काम करता था, एक गैर जिम्मेदार,अत्यन्त शराबी तथा बदमाश था जो अपनी पत्नीको बेरहमीसे पीटता था। अन्तमें लाचार होकर बेचारी स्त्रीने स्वराज भवनके अहाते-में शरण ली और इस प्रकार हरि मेरे नानाकी नजरोंमें आया। नानूजी

संकटमें पड़े हुए लोगोंकी सहायता करनेके लिए हमेशा तत्पर रहते ही थे, अतः उन्होंने जब तेज बुद्धिवाले छोटे बालक हरिको देखा तो इस हरिजन लड़केको रख लेनेका निश्चय किया। इस प्रकार हरि परिवारका काम करते हुए परवरिश पाने लगा और नानूजीने उसे स्कूलमें पढ़नेके लिए भी भेजा।

नियमों और नियन्त्रणोंके जीवनका आदी न होनेके कारण वह खुशी-खुशी इनकी उपेक्षा किया करता था। वह बेहद झूठ बोलता था, जब भी मौका मिलता चोरी करनेसे न चूकता और उसपर जिस बातके लिए विश्वास किया जाता, उसे वह बिना किसी पसोपेशके भंग कर देता था। नानूजीकी उदारता बहुत बढ़ी हुई थी, कभी कभी तो वह दोषकी कोटि तक पहुँच जाती थी, किन्तु झूठ और बेईमानी उन्हें असह्य थी। उनका महान् क्रोध एक बार उभाड़ दिये जानेपर बड़ी मुश्किलसे शान्त होता था। जब उन्हें हरिकी करतूतोंका पता चला तो उन्होंने उसे खूब अच्छी तरह पीटा और हरि फिर कभी वापस न आनेका संकल्प करके घरसे भाग गया। किन्तु उसे वापस आना ही पड़ा, घटनाके कुछ ही दिनों बाद; क्योंकि उसे शीघ्र ही मालूम हो गया कि उसके मालिक न्यायी एवं दयालु थे और ऐसा अच्छा दूसरा स्वामी उसे आसानीसे नहीं मिल सकता। वह फिर नौकरीमें ले लिया गया और सिखा पढ़ाकर खास खिदमतगार बना दिया गया। नानूजीके कठोर प्रशिक्षणमें अनुशासित होकर उसने अपना काम अच्छी तरह करना सीख लिया किन्तु यह उसका गैर जिम्मेदाराना भला स्वभाव ही था जिससे वह परिवारका एक अंग-सा बन गया—बड़ोंका विश्वासपात्र और छोटोंका सहचर एवं साथ खेलनेवाला। जबतक हम लोग कुछ बड़ी हुईं, तबतक उसने ऐसे स्थायी सदस्यका स्थान प्राप्त कर लिया था जिसे प्रत्येक वह व्यक्ति जानता था जो कभी आनन्दभवनमें रह चुका हो। वह शीघ्र ही हमारा मनोनुकूल साथी बन गया।

वह छोटे कदका आदमी था, जिसकी ऊँचाई मुश्किलसे पाँच फुट रही होगी, और वह बड़ी मौजमें चला करता था। शैतान बच्चों जैसा उसका व्यवहार उन प्रौढ़ व्यक्तियोंसे सर्वथा भिन्न था, जिन्हें हमने आजतक देखा-सुना था। उसके कानोंमेंसे काले-काले बाल बाहर निकले

हुए थे जिनके कारण उसकी शकल रोमन लोगोंके सींग-पूछवाले देवताओं जैसी लगती थी और जिसे देखकर हमें बड़ा अचम्भा होता था। वह अपने भव्य अतीतकी कल्पित एवं असम्भव कथाएँ बड़े अनोखे ढंगसे कहा करता था—उन दिनोंकी जब उसकी दानशीलताकी चारों तरफ शोहरत मच गयी थी और जब वह पन्द्रह-पन्द्रह रुपयोंके* खचियों नोट सड़कपर फिरनेवाले भिखमंगोंमें यों ही बाँट दिया करता था। यदि हम उसके पास उस समय पहुँचतीं जब वह कोई काम कर रहा होता तो वह जूतोंपर पालिश करना छोड़कर उन्हें अलग फेंक देता या जिन कपड़ोंको तहिया रहा होता, उन्हें वैसे ही छोड़कर खड़ा हो जाता और न जाने कैसी-कैसी अजीब सूरत-शकल बनाकर हँसीकी इस तरहकी बातें करने लगता कि हँसते-हँसते हमारे नेत्रोंसे आँसू बहने लगते और हमें उससे यह सब बन्द करनेका आग्रह करना पड़ता।

"यह सब काम जो मैं कर रहा हूँ", अपने अधूरे कामोंकी तरफ अजीब ढंगसे हाथ मटकाते हुए वह तिरस्कारपूर्वक कहने लगता "इस लिए कर रहा हूँ कि जिसमें समय किसी तरह बीत जाय। वरना मेरा मुख्य काम तो छोटे बच्चोंके लिए नाचना और गाना है।"

बिना सिर-पैरकी जो कहानियाँ वह बड़ी रुचिके साथ हमें सुनाया करता था, उन्हें सुनते-सुनते हम कभी थकती न थीं और हम उन्हे बारबार दोहरानेके लिए उसे विवश किया करती थीं।

मैं उसे छेड़कर कहती—"अच्छा, उस समयको बात तो बताओ जब तुमपर घड़ी चुरानेका अभियोग लगाया गया था।"

"घड़ी चुराना!" ताने भरे स्वरमें वह बोल उठता, "मैं जो गरीबोंको दान दिया करता था और गंगामें नित्य स्नान किया करता था, घड़ी चुराने जाता! क्या मेरे पास पर्याप्त संख्यामें, शायद उससे अधिक, सोनेकी घड़ियाँ मौजूद न थीं? मेरे जैसे धनी और प्रसिद्ध आदमीके अनेक शत्रु हों, यह स्वाभाविक ही था। क्या तुम जानती हो कि मैं पकड़ लिया गया था और मुझे छः महीने फाँसीको सजा हुई थी?"

---

* इसमे हँसोकी बात यह है कि १५-१५ रुपयोके नोट भारतमे होते ही नहीं।

यथेष्ट प्रभावित होकर हमने सहानुभूति-सूचक भावसे सिर हिला दिया।

"छः महीनेके लिए गलेमें फन्दा डालकर लटका दिया जाना! किसी निरपराध व्यक्तिके लिए क्या आप इससे अधिक भयंकर सजाकी बात सोच सकती हैं?"

सचमुच हम लोग नहीं सोच सकती थीं, निरपराधकी तो जाने दीजिये, अपराधी व्यक्तियोंके लिए भी नहीं।

"मुझे इस बातका भी निश्चय न था कि मैं उस फाँसीसे जिन्दा बचा रह सकूँगा।"

ऐसा कहते समय उसने फाँसीका अभिनय करते हुए इतने जोरसे अपनी गर्दन दबायी कि उसे देखकर हमारा भी गला घुटने लगा और हमने भी सिर हिला दिया।

"निस्सन्देह मेरे प्रभाव और दबदबाने ही मुझे उस भयावह आरोप-से छुटकारा दिलाया। जजको जब यह मालूम हो गया कि मैं कौन हूँ तो उसने मुझे तुरन्त मुक्त कर दिया।"

हमने राहतकी साँस ली।

इतनेमें हरि चिल्ला उठा, इतने जोरसे कि हम लोग उछल पड़ीं। "कोई भी आदमी हरिके साथ ऐसा व्यवहार कर चुपचाप नहीं चला जा सकता। क्या तुम जानती हो कि मैंने उस जजको क्या पाठ पढ़ाया?"

"हाँ, क्या किया तुमने?" हमने पूछा।

हरिने बदला लेनेका भाव प्रकट करते हुए कहा, "अदालतसे हटने-के पहले ही मैंने उस बूढ़े न्यायाधीशको पकड़ लिया और उसके सिरको दबाकर दोनों कानोंके ठीक बीचमें कर दिया।"

"उसके साथ तुमने उचित ही व्यवहार किया" रीताने सन्तोष-पूर्वक कहा।

"प्रत्येक बार जब वह शीशेमें अपनी शकल देखता है, तब उसे मेरी याद आ जाती है" हरिने अपना कथन समाप्त करते हुए कहा।

नानूजीको इस लड़केसे, जिसकी उन्होंने सहायता की थी, बड़ी आशा थी। उनका विश्वास था कि हरि एक निजी सेवकके सिवा कुछ

और भी बड़ा बन सकेगा और ऐसा देखनेमें आया है कि जिसपर नानूजीने कृपा की, खुश किस्मतीने भी उसका साथ दिया। हरिको ऐसा सुनहला अवसर प्राप्त तो हुआ किन्तु उस समय हुआ जब उसके स्वामीकी मृत्यु हो चुकी थी। यह अवसर सन् १९३६ में आया जब कांग्रेस दलने उत्तरप्रदेशीय विधान सभाके चुनावमें उसे अपने एक उम्मेदवारके रूपमें खड़ा किया। इसपर हम लोगोंको भी उतनी ही प्रसन्नता हुई जितनी हरिको हुई और किसी भी उम्मेदवारको शायद इतने उत्साही प्रचारक न मिले होंगे जितने हरिको (हम लोगोंके रूपमें) मिले थे। लेखा, रीता और मैं—तीनोंने अपने मित्रके पक्षमें बिना थके हुए लगातार प्रचार किया और मतदानके दिन हमलोग कांग्रेसकी लाल-हरी मतदान-पेटिकाओंके पास बड़े शंकालु हृदयसे खड़ी रहीं। जब हरिके चुन लिए जानेकी घोषणा हुई तो हम लोग मारे खुशीके पागल हो उठीं। उसकी जीतका सारा श्रेय हमने लिया। हरि पूरी शानके साथ विधान सभाकी बैठकोंमें सम्मलित होता रहा, उस समय तक जब कि सन् १९४० में कांग्रेस मन्त्रिमण्डलोंने अपने-अपने पदोंसे इस्तीफा दे दिया। इस प्रकार एक समयका यह अनाथ, असहाय बालक जीवनमें अब काफी आगे बढ़ आया था।

जब कांग्रेसने ब्रिटेनके साथ युद्धोद्योगमे सहयोग न करनेका निश्चय किया, तब परिवारके अन्य सदस्योंकी तरह हरि भी गिरफ्तार कर लिया गया। पुलिसकी भद्दी सी शकलवाली लारी जब उसे लेने पहुँची तो हमने बड़ी प्रसन्नताके साथ उसे बिदाई दी। जेलयात्रा उसके लिए सफलताकी चरम सीमा थी और इसका उसे बड़ा अभिमान था। कुछ दिनोंके बाद नैनी जेलमें उसका मुकदमा हुआ, जहाँ सफेदी किये हुए छोटेसे कमरेमें हम लोग भी लकड़ीकी बेंच पर जाकर बैठ गयी थीं।

"तुम्हारी उम्र क्या है ?" मजिस्ट्रेटने सवाल किया, जो युवावस्था-का एक अंग्रेज था।

हरि कुछ देरतक सोचता रहा। उसे अपनी उम्रका कोई अन्दाज न था। "मैं कह नहीं सकता" अन्तमें उसने अफसोसके साथ कहा, "किन्तु इतना मैं जानता हूँ कि जब पंडित जी (जवाहरलालजी)

कालेजसे पढ़कर इंग्लैण्डसे लौटे, तभीसे मैंने रोज डाढ़ी बनाना शुरू किया था।"

मजिस्ट्रेट मुस्कुरा पड़ा, यद्यपि उसने अपनेको रोकनेकी बड़ी कोशिश की।

हरिको एक वर्ष कैदकी सजा हुई और हम लोग चिन्तितभावसे उसके छूट कर वापस आनेकी प्रतीक्षा करती रहीं। घरमें बड़ी उदासी-सी छायी रहती थी क्योंकि उसका यह सबसे खुशदिल मेम्बर बाहर था। जिस दिन हमें खबर मिली कि आज हरि जेलसे छूट जायगा, उस दिन हम लोग बड़ी उत्सुकताके साथ सामनेकी सीढ़ियोंपर उसका इन्तजार करती रहीं। अन्तमें एक ताँगा खटखट करता हुआ बरसातीमें आकर रुक गया और उसके भीतरसे न पहिचाने जाने योग्य एक मोटी तोंदल शकल बाहर कूद पड़ी। वह दुबला-पतला, छोटा आदमी गायब हो चुका था और उसके स्थान पर खड़ा था यह उन्नतिशीलसा देख पड़नेवाला उसका प्रतिरूप। जबरन लादी गयी बेकारीके समय में हरिका वजन १४ सेर बढ़ गया था और यह फिर कभी कम नहीं हुआ। वह जितना ऊँचा था, उतना ही चौड़ा लगने लगा था। जेलयात्रा करनेवाले बहुतसे लोगोंको वहाँ कष्टका ही अनुभव होता है, किन्तु हरिके लिए वह एक सुखद विश्रामकाल प्रमाणित हुआ। उस समयसे उसकी मोटाईको लेकर परिवारमें खूब हँसी-मजाक होने लगा और अन्य सभी नौकर यह कहने लगे कि यदि शहीद बननेका ऐसा परिणाम होता हो तो हम लोग भी कारावासमें कुछ महीने रहना पसन्द करेंगे।

हमारे नौकर भी देशकी राजनीतिमें गहरी दिलचस्पी लेते थे क्योंकि हमारे माता-पितासे उसका इतना ज्यादा तालुक था। "गिरफ्तार और मुकदमा" यही शब्द हमेशा उनकी जबानपर रहते थे। हमारे परिवारसे सम्बन्ध होनेके कारण वे गौरव और अभिमानका अनुभव करते थे। जब हमारे माता-पिता जेल जाते तो वे रोते थे और उनके छोड़ दिये जाने पर उन्हें खुशी होती थी। हमारा माली, नेकदिल राम, प्रत्येक बार जब पिताजी जेल जाते थे तो बड़ा दुःखी होता था। तब ऐसा कोई नहीं रह जाता था, जो उसके साथ-साथ बागमें घूमता और उसके प्यारे कामकी सराहना करता, कोई और ऐसा न था जिसके साथ वह नये

पौधोंको लगानेके सम्बन्धमें परामर्श करता, पुष्प वृक्षोंकी हालतपर या तरकारीकी क्यारियोंपर बातचीत करता। पापू तथा राम, दोनोंके हृदयोंमें पेड़ों, फूलों तथा सभी उद्भिजोंके लिए समान रूपसे स्नेह विद्यमान था। हम लोगोंने सन्तरे तथा अंगूरके जो पेड़ लगाये थे, उनके समूहोंके बीच काम करते हुए रामको देखकर पापू कभी-कभी कह दिया करते थे, "अपने यहाँ एक बुद्धिमान आदमी है; वह अच्छी तरह जानता है कि कौन चीजें टिकेंगी, कौन नहीं।" पापू जब गिरफ्तार कर लिये जाते थे, तब राम अपने आँसुओंको कभी रोक नहीं सकता था और जब अपने प्रिय स्वामीको विदा करनेका समय आता तब वे बिना रुके उसके चेहरेपर बराबर बहते रहते थे। पापू उसके गले मिले विना कभी प्रस्थान नहीं करते थे और वे यह कहकर उसको सान्त्वना भी दे दिया करते कि मैं शीघ्र ही वापस आ जाऊँगा। पापू हमेशा ही कहा करते थे कि राम जैसे आदमियोंके लिए ही देशकी स्वतन्त्रता प्राप्त करना जरूरी है, क्योंकि भारतकी भूमि वास्तवमें इन सीधे-सादे, भले आदमियोंकी ही है।

जहाँ किसीके माता पिता रहें, वहीं उसका घर समझना चाहिये, अतः जहाँ हम सब रहते थे वहीं हमारा घर हो जाता था, किन्तु सच्चेसे सच्चे अर्थमें वस्तुतः आनन्दभवन ही हमारा घर था। यहीं हमें अपने नौकरोंके वे चेहरे देखनेको मिलते थे जिनसे हम बखूबी परिचित थीं, यहीं अमरूदके वे बाग थे जहाँ हम खेला करती थीं और चिल्लाहट मचानेवाले सुग्गोंके आक्रमणोंसे कच्चे-कच्चे कड़े अमरूद चोरीसे तोड़ लिया करती थीं। वहीं संगमरमरके बने चिकने-चिकने फर्श थे, वह पुस्तकालय था जहाँ पहुँचनेके लिए चक्करदार सीढ़ियाँ थीं तथा जहाँ बैठकर हम दिल बहलानेके लिए पुस्तकें पढ़ा करती थीं और जहाँ एक छोटा जीना उस छतपर जानेके लिए था जहाँ हम धूपस्नान किया करती थीं तथा कभी-कभी गरमियोंमें सोया करती थीं और जहाँ हर-साल २६वीं जनवरीको राष्ट्रीय ध्वजा फहराकर हम भारतीय स्वतन्त्रताका लक्ष्य प्राप्त करनेके लिए नये सिरेसे प्रतिज्ञा किया करती थीं।

इसी घरमें ग्रीष्म ऋतुके दिनोंमें हम लोग सबेरेके वक्त अपनी-अपनी गर्दनके चारों तरफ तौलिया बाँधकर एक टबके आसपास बैठ

जाया करती थीं और एक-एक करके कितने ही मीठे, रसीले आम चूस डाला करती थीं। वहाँ ही हम सन्ध्याकी किरणोंसे स्नात बागमें शामका वक्त ऊखके लम्बे टुकड़े चूसनेमें बिताया करती थीं। कभी-कभी बीबी माँ पासके बाजारसे स्वादिष्ट चाट मँगा लिया करती थीं। ये सूखे पत्तोंके दोनोंमें आया करती थीं। हमें सबसे अच्छे लगते थे दही-बड़े, जो उड़दकी दालकी पिट्ठीसे बनाकर दहीमें डुबा दिये जाते थे और ऊपरसे मिर्च छिड़क दी जाती थी। गरमी जब तेज पड़ती थी, तब हम लोग तरबूजका रस बरफमें डालकर कई गिलास पी जाती थीं या फिर नमक, मिर्च तथा जीरा डालकर तैयार किया गया मट्ठा पीती थीं और इमलीका बना खटमिट्ठा ठंढा पना भी चखा करती थीं।

प्रतिवर्ष ही पर्वों और उत्सवोंकी परम्परा हमें आनन्दित करनेके लिए आया करती थी। मार्चके अन्तमें बड़े सवेरे ही कश्मीरी नये वर्षका आरम्भ (नवरोज) होता है। मम्मी हम लोगोंको सबेरे ही उठा देतीं और कहतीं "नवरोज मुबारक" (नववर्ष तुम्हारे लिए सुखमय हो)। वे क्रम-क्रमसे हममेंसे प्रत्येककी चारपाईके एक किनारे बैठ जातीं और अपने सामने वह थाली रख लेतीं जो वे लिये रहती थीं। थालीमें उर्वरताके संकेतस्वरूप थोडा-सा नया चावल, दूध तथा नारियलकी मिठाई, बादाम, पिस्ता, ताजे फल, फूल, थोडा-सा दही, एक कटोरीमें लाल-लाल रोरी और एक शीशा रहता था। रोरीमें तथा दहीमें उँगली डुबोकर हम लोगोंमेंसे प्रत्येकके ललाटपर वे टीका करतीं और खानेके लिए थोडी-सी मिठाई देकर हमारे हाथमें शीशा थमा देतीं जिसमें हम अपना चेहरा देख लें। इस प्रकार हमारे नववर्षका आरम्भ होता था, जब अग्निशिखाके रंगका गुलमोहर बागमें खिल उठता था और घरकी स्त्रियाँ नयी उज्ज्वल साड़ियाँ धारण कर लेती थीं।

नवरोजके कुछ ही पहले होली आ जाती है। यह पर्व वसन्त या ग्रीष्म ऋतुके आरम्भका सूचक माना जाता है। यह त्यौहार अन्य सब पर्वोंकी अपेक्षा अधिक आनन्दपूर्ण होता है, जब बूढ़े और जवानमें, स्वामी और सेवकमें तथा अजनबी-अजनबीमें कोई भेद-भाव या अन्तर नहीं रह जाता। होलीके समय हम औचित्य तथा परम्पराओंके समस्त बंधन तोड़ डालती थीं और आनन्दोत्सवके हुल्लड़में तल्लीन हो जाती

थीं—कभी हम एक दूसरेके चेहरोंपर अबीर पोत देतीं और कभी एक दूसरेको अथवा रास्ता चलनेवालोंतकको पिचकारीसे रंग फेंककर सराबोर कर देती थीं।

होलीका यह उत्सव बागमें हुआ करता था। मित्रोंके सम्मिलित होते जानेसे हुल्लड़बाजोंकी भीड़ भी बढ़ती जाती थी। वृत्ताकार बरामदेमें कतार बाँधकर भिन्न-भिन्न रगोंसे भरे हुए डोल रखे रहते थे जिनमेंसे लेकर हम अपनी बाल्टी, जब उसका सब रंग समाप्त हो जाता था तब भर लिया करती थीं। उस छोटेसे कुण्डकी जिसमें पापूने कुमुदिनीके फूल लगाये थे, उस समय बडी दुर्दशा हो जाती थी, जब समाजके नेता, उच्च न्यायालयके न्यायाधीश, कांग्रेसके मुखियागण तथा जानेवाले अन्य महान् व्यक्ति हो हुल्लडके साथ वहाँ ले जाये जाते और उसकी पंकिल गहराईमें गोता खानेके लिए ढकेल दिये जाते थे। जब हमारा सब रंग समाप्त हो जाता तो हम लोग झुण्डके झुण्ड, हुरदंग मचानेपर आमादा टोली बनकर, मोटरकारमें पिल पडते और अपने-अपने मित्रोंसे मिलनेके लिए उनके घर जा पहुँचते।

कुछ महीनोंके बाद हम लोग राखीका त्योहार मनातीं। उस दिन लड़कियाँ अपने भाइयोंके, या जिन्हें वे भाईकी तरह मानती हों, उनके हाथोंमें राखी बाँधती हैं। इसके बदलेमें भाईको कोई वस्तु यह दिखलानेके लिए अपनी बहिनको भेंटस्वरूप देनी चाहिये कि सालभरतक वह उसकी रक्षा करेगा, जब भी उसको इसकी जरूरत होगी। पुराने जमानेमें उन लोगोंमें जो सम्पन्न थे, प्रायः रत्नजटित कुरती भेंटस्वरूप देनेकी परम्परा थी किन्तु आजकल यह कोई भी चीज हो सकती है और अक्सर तो लोग इत्रकी एक शीशी ही दे दिया करते हैं। जो व्यक्ति किसी लड़कीकी राखी स्वीकार करता है, उसका यह फर्ज हो जाता है कि उसे अपनी बहिन मान ले। तब यह उसका पवित्र एवं वीरोचित कर्त्तव्य हो जाता है कि जब कभी आवश्यकता पड़े, वह उसकी सहायता करे, भले ही इसके कारण उसे खर्चमें पड़ना पड़े या कष्ट उठाना पड़े।

भारतीय इतिहासमें इसका एक ज्वलन्त उदाहरण १६वीं शतीसे मिलता है, जब चित्तौड़की रानी कर्णवतीने दिल्लीके मुगल सम्राट् हुमायूँ-

के पास राखी भेजी थी और उनसे आक्रमण करनेवाली सेनाओंके विरुद्ध सहायता पहुँचानेकी प्रार्थना की थी। यद्यपि उस समय सम्राट्के सामने अपनी ही कई समस्याएँ थीं और यद्यपि वह जानता था कि चित्तौड़पर हमला करनेवाला उसका हम-मजहब ही है, फिर भी वह रानीकी सहायताके लिए सेना लेकर दिल्लीसे चल पड़ा। दिल्लीसे चित्तौड़ बहुत दूर पड़ता है इसलिए उसके वहाँ पहुँचते-पहुँचते काफी देर हो गयी। आक्रमणकारीके सामने चित्तौड़ ठहर न सका और रानी कर्ण-वतीको सैकड़ों अन्य राजपूत नारियोंके साथ जलती चितापर कूद कर प्राण दे देने पड़े, जिससे उनके शत्रुके हाथमें पड़ने और अपमानित किये जानेकी नौबत न आवे। यद्यपि यह घटना दुःखान्त है, फिर भी इससे रक्षाबन्धनका आश्चर्यपूर्ण एवं वीरोचित स्वरूप स्पष्ट हो जाता है।

जब हम लोग छोटी थीं, तब मुझे और रीताको अन्य त्योहारोंसे अधिक मजा गुड़िया-पंचमीमें आता था। यह गुड़ियोंका त्योहार है जिसे छोटी लड़कियाँ ही मनाती हैं। इस दिन हम लोग अपनी सखियों-को और उनकी गुड़ियोंको चाय पानीके लिए अपने यहाँ आमंत्रित करती थीं। हम गुड़ियोंको सुन्दर, नयी पोशाक पहनाती थीं, उनके गुण-दोषोंके सम्बन्धमें बातचीत करती थीं और उनका विवाह ठीक करती थीं। मम्मी मनिहारिनको बुलवा देती थीं और जब वह आ जाती तो हम लोग उसकी चूड़ियोंकी तारीफ करती हुई उसके चारों तरफ बैठ जाती थीं। हमारी कलाइयोंपर वह एक-एक करके चूड़ियाँ पहना देती थी।

जब मनिहारिन बड़ी चतुराईसे मेरे लिए छोटी-सी चूड़ी चुनकर निकालती तो मैं विरोध करती हुई बोल उठती—"वह मुझे कभी नहीं हो सकती। वह तो बहुत छोटी है।" किन्तु बीचकी उँगली और अँगूठेके बीचमें चूड़ी पकड़कर वह मेरे हाथको ऐसी कुशलतासे उसके भीतर डालती मानो मेरे हाथमें कोमल मांसके सिवा हड्डी एक भी न हो, जिससे वह गीली मिट्टीकी तरह उसे दबाकर, उभारकर अपनी इच्छाके अनुरूप बना लेती। जब हम सबको ठीक-ठीक मापकी चूड़ियाँ पहना दी जातीं, तब चूड़ीवाली हमारी गुड़ियोंके लिए और भी छोटी चूड़ियाँ ढूँढ़ निकालती।

दीवाली, जो नवम्बरमें पड़ती है, बड़ा सुन्दर त्योहार माना जाता है। यह उस दिनकी स्मृतिमें मनायी जाती है, जब शताब्दियों पहले, राम चौदह वर्षका वनवास समाप्त कर अपनी राजधानी अयोध्याको लौटे थे। यह वह दिन है जब उस आनन्दपूर्ण शुभागमनकी स्मृतिमें छोटे-छोटे चिराग जलाकर हर घरमें रोशनी की जाती है और जब धनकी देवी लक्ष्मीकी प्रार्थना की जाती है। आनन्दभवनमें पूजा सम्बन्धी धार्मिक कृत्य बीबी माँके छोटेसे उपासनागृहमें किया जाता था। हम लोग सौन्दर्य और श्रीकी देवीके प्रति सम्मान तथा भक्ति प्रदर्शित करनेके लिए उस घरमें इकट्ठी होती थीं, जहाँ लाल कमलके आसनपर देदीप्यमान होती हुई लक्ष्मीका चित्र सामने प्रस्थापित रहता था। तसवीरके नीचे चाँदीकी चमचम करती हुई थालियाँ रखी रहती थीं जिनमें फूल, फल, अक्षत, तथा बढ़िया तैयार की गयी मिठाई भरी रहती थी। धूपबत्तीकी धीमी-धीमी सुगन्ध कमरेमें चारों तरफ फैली रहती थी।

दीवालीके दिन थालियों या रकाबियोंमें भरभरकर मिठाइयाँ और फल रिश्तेदारोंके तथा मित्रोंके घर भेजे जाते थे और नौकरोंमें भी बाँटे जाते थे। इसी तरहकी थालियाँ मिठाई और फलोंसे भरी हुई, हमारे घर भी आया करती थीं। किन्तु दीवालीका वास्तविक आनन्द सन्ध्या समाप्त होनेके बाद उस समय आता था जब मकानोंपर रोशनीका किया जाना शुरू होता था। अँधेरा होनेके पहले ही ऊपरके तथा नीचेके बरामदेमें और छतके मुँडेरेपर नौकर प्रत्येक बत्तीको प्रज्वलित कर देते। जोश और उमंगमें भर कर हम लोग इधरसे उधर फुदकती फिरतीं और ध्यानसे देखती रहतीं कि किस तरह दीयोंकी रोशनी तीव्रतर होती जाती और उनकी संख्या बढ़ती जाती जबतक कि सारा मकान ऐसा लगने लगता मानो चारो तरफके अंधकारको चीरकर झलमल करता हुआ परियोंका महल हमारी आँखोंके सामने आविर्भूत हो गया हो।

भोजन करनेके बाद पापू हम लोगोंको मोटरमें बैठाकर शहरमें घुमानेके लिए ले जाते थे जहाँ प्रत्येक घर इसी तरह जगमग करता देख पड़ता। गरीबोंके छोटे-छोटे मकानों या झोपड़ोंमें भी दो-चार दीपक टिमटिमाते नजर आते, क्योंकि ऐसा लोगोंका विश्वास है कि जिनके घरोंमें दीवालीकी रातमें अँधेरा छाया रहता है, उन्हें लक्ष्मीजीका आशीर्वाद नहीं प्राप्त होता।

अध्याय ७

युद्धके दिन

सन् १९३९ में जब युद्ध छिड़ गया तब हमारे जीवनमें फिर अनिश्चितता बढ़ गयी। हम नहीं जानती थीं कि इस नये आकस्मिक संकटके सामने कांग्रेसकी नीति क्या रुख अख्तियार करेगी और उसका क्या प्रभाव हमारे माता-पितापर पड़ेगा। शान्तिमय हिमालयके अंचलमें स्थित स्कूलमें पढ़ते समय रेडिओसे जो समाचार हम लोग प्रतिदिन सुना करती थीं उससे हमारी चिन्ता बढ़ती जाती थी। मैं उस समय १२ वर्ष की ही थी, अतः रेडियोपर जब नये-नये शब्दों तथा पदसमूहोंकी बाढ़-सी आने लगती और आलोचकगण भयोत्पादक सम्भावनाओंकी भविष्यवाणी करने लगते तो मेरी बुद्धि चकरा जाती। उस समय अपनी मानसिक उथल-पुथल दूर करनेके लिए मैं पापूको पत्र लिखा करती थी। मैंने लिखा—

होमस्टेड, मसूरी
११ सितम्बर

"प्रिय पापू,

संसार भयावह स्थितिसे गुजर रहा है और ऐसी कितनी ही बातें हैं जिन्हें मैं समझ नहीं पा रही हूँ।

"क्या आप सोचते हैं कि भारतको इंग्लैण्डकी सहायता करनी चाहिये? यदि वह सहायता करे तो जर्मनी पराजित हो जायगा, जो एक अच्छी बात होगी। यदि वह मदद नहीं देता तो इंग्लैण्डकी पराजय हो सकती है। तब जर्मनी तथा जापान, दोनों मिलकर भारतमें घुसनेका प्रयत्न करेंगे। उस समय अहिंसासे क्या लाभ होगा? मैं नहीं जानती कि अहिंसासे कभी कोई भलाई हुई हो। मैं समझती हूँ कि हुई अवश्य होगी, फिर भी यदि जर्मनी तथा जापान भारतमें घुस आयें तो यह निश्चित है कि अहिंसासे कोई काम न निकलेगा। तब या तो हमें उनके

साथ युद्ध करना होगा या उनकी दासता स्वीकार करनी होगी। मैं सोचती हूँ कि हमें खुशी-खुशी लड़ना ही चाहिये पैट्रिक हेनरीकी तरह जो कहा करता था—"या तो मुझे स्वाधीनता दो या फिर मर जाने दो।"

"आपकी इस सम्बन्धमें क्या राय है ?

"क्या आप मुझे यह भी समझानेकी कृपा करेंगे कि साम्यवाद (कम्यूनिज्म) का मतलब क्या है ? मैंने लेखासे पूछा था किन्तु उसने कहा कि आप बहुत अच्छी तरहसे मुझे समझा सकेंगे।

"आपके चरणोंमें सादर अभिवादन करती हुई,

आपकी प्यारी पुत्री—तारू।"

पापूने जवाब दिया—

लखनऊ
१९ सितम्बर, १९३९

"प्रिय बेटी तारू,

तुम्हारी ११ तारीखकी चिट्ठी मिली। तुम्हारे विचार और तुम्हारे प्रश्न पढ़कर मुझे बड़ी खुशी हुई। जो व्यक्ति पूछताछ किया करता है, सत्य जाननेकी चेष्टा करता है, वही कठिन समस्याओंका हल ढूँढ़ पाता है। जो प्रश्न तुमने पूछे हैं, उनका हल तलाश करनेमें आज देशके अनेक बड़े-बड़े नेताओंके मस्तिष्क संलग्न हैं। कांग्रेसकी कार्यसमितिने एक लम्बा वक्तव्य प्रकाशित किया है जिसे मामूने तैयार किया था। उसमें वही बातें कही गयी हैं जो आज देशके बहुतसे लोगोंके दिमागोंमें उठ रही हैं। थोड़ेमें उसमें यही कहा गया है कि हम विजयी हिटलरशाहीका प्रसव नहीं होने देना चाहते। हम स्वतंत्रता, शान्ति एवं उन्नतिके समर्थक हैं। हम ऐसी लड़ाइयोंके विरोधी हैं जिनका उद्देश्य हिंसा और शस्त्रबलसे कमजोर राष्ट्रोंकी स्वाधीनता नष्ट करना है। यदि इंगलैण्ड राष्ट्रोंकी स्वाधीनताके पक्षमें है तो फिर उसे भारतपर जबरन कब्जा नहीं जमाये रखना चाहिये और न यहाँके लोगोंको गुलाम बनाकर रखना चाहिये। स्वतन्त्रताका अर्थ केवल यूरोपीय देशोंकी ही स्वतन्त्रता न लिया जाना चाहिये। यह स्वतन्त्रता सब देशोंके लिए होनी चाहिये, अर्थात् एशिया तथा अफ्रिकाके देशोंके लिए भी। यदि ब्रिटिश सरकार इसे माननेको तैयार हो तो भारतके लोग एक नयी और बेहतर

दुनियाकी स्थापनामें ब्रिटेनके साथ सहयोग करनेको तैयार हैं। ७ अक्टूबरको भारतीय कांग्रेस कमेटीकी एक बैठक वर्धामें होने जा रही है। यह कमेटी एक तरहसे भारतकी गैर-सरकारी पार्लमेण्ट है जिसमें भारतके प्रान्तोंके चुने हुए प्रतिनिधि रहते हैं। मैं भी उसका एक सदस्य हूँ और मुझे भी इस महत्त्वपूर्ण प्रश्नपर अपना मत देना होगा कि युद्धके प्रति हम लोगोंका रुख क्या हो।

"अहिंसा अच्छी चीज है, मेरी बेटी। जब हम लड़ाई लड़ते हैं, तब हम बहुतसे हिंसात्मक एवं जघन्य काम किया करते हैं किन्तु जब युद्ध समाप्त हो जाता है, तब युद्धलग्न राष्ट्र एक टेबिलके चारो तरफ बैठकर शान्तिके प्रश्नपर विचार करते हैं। यह बात इससे कहीं ज्यादा अच्छी होगी कि मनुष्य लोग उन सब प्रश्नोंपर, जिनके सम्बन्धमें आपसमें मतभेद हो, निरुद्विग्न एवं शान्त भावसे बातचीत करनेका प्रयत्न करें, न कि एक दूसरेको मार डालने या नष्ट करनेकी चेष्टा करें। इस संसारमें बहुत-सी सुन्दर चीजें हैं जिनका उपभोग हममेंसे प्रत्येक कर सकता है। इसी तरह दुःखकी भी बहुत-सी बातें हैं किन्तु युद्धकी विभीषिकाएँ जोड़कर उनकी संख्या और बढ़ाना पागलपन है।

किन्तु यदि कुछ शैतान लोग हमारे देशपर चढ़ दौड़े तो हम केवल अहिंसाकी बात कर उसे बचा नहीं सकते। ताकतका सामना ताकतसे ही करना होगा। किन्तु हमें केवल उतनी ही शान्तिका प्रयोग करना चाहिये जितनी आत्मरक्षाके लिए आवश्यक हो, नहीं तो इस बातका खतरा है कि हम स्वयं भी पशु सदृश और क्रूर बन जायँ।

"साम्यवादका मतलब है एक ही कामके लिए साथ मिलकर और लाभमें समान रूपसे हिस्सा लेते हुए ऐसा प्रयत्न करना जिसमें सबके साथ समान न्याय हो सके। यह बड़ा अच्छा विचार है। इसका लक्ष्य वर्गहीन समाजकी स्थापना है—ऐसा समाज जहाँ एक ओर तो ऐसे धनाढ्य, ऊँचे वंशके या शक्तिशाली आदमी न हों जिनके पास दुनिया-की सभी अच्छी-अच्छी चीजें बल्कि उनसे भी कुछ अधिक हों, दूसरी ओर जहाँ ऐसी बहुसंख्यक जनता भी न हो जिसके पास न पहननेको ठिकानेके कपड़े हों, न खानेको पर्याप्त भोजन और न रहने योग्य मकान हों।...यही साम्यवादका सिद्धान्त है किन्तु सिद्धान्तमें और

उसके व्यावहारिक प्रयोगमें आकाश-पातालका अन्तर है। तुम "सरमन आन दि माउण्ट" (ईसा मसीह द्वारा पहाड़ी पर दिया गया उपदेश) जानती हो और यह भी जानती हो कि एक ईसाईका रंगढंग, स्वरूपादि कैसा होना चाहिये और उसे अन्य क्रिस्तानोंके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये। अब जरा गौरसे देखो कि ईसाई, अंग्रेज, फ्रेंच, जर्मन तथा अन्य किस तरह रहते हैं और उनका आचार-व्यवहार जैसा होना चाहिये उससे कितना भिन्न है। यही हाल कम्यूनिस्टों (साम्यवादियों) का है। नात्सी तथा कम्यूनिस्ट सरकारें विपत्तिमें पड़े हुए उस पोलैण्डको बीचमेंसे चीरे डाल रही हैं जो अपनेसे अधिक प्रबल शत्रु सैनिकोंसे बहादुरीके साथ लड़ रहा है।

"बेटी, तुम्हें शान्त और स्वस्थ रहना चाहिये। हम एक महान् राष्ट्रके नागरिक हैं और हम लोगोंमेंसे जो ब्राह्मण हैं उनकी यह महती परम्परा रही है कि वे शान्ति, सहिष्णुता और संस्कृतिके समर्थक तथा बुराईके कट्टर विरोधी रहे हैं। यदि हम उद्विग्न हो उठें तो हम शुद्ध भावसे विचार न कर सकेंगे और न सही ढंगसे काम कर सकेंगे। इसलिए हमारे लिए सबसे अधिक आवश्यक यह है कि हम अपना मानसिक संतुलन न खो दें और घबराहटके चिह्न न प्रकट करने लगें। युद्ध लम्बे अरसेतक, कई वर्षोंतक, चल सकता है और हमें भी बहुत दिनोंतक शारीरिक तथा मानसिक दृढ़ताकी आवश्यकता होगी जिससे हम दूसरोंकी सहायता कर सकें।

"तुम्हें, लेखा और रीताको मेरा प्यार,

पापू।"

मेरी बहिनोंने तथा मैंने अपने माता-पिताके इस विचारसे सहमत होनेकी चेष्टा की कि समस्याओंका निपटारा करनेके लिए अहिंसाका तरीका एक उत्तम उपाय है किन्तु हम लोगोंको इसका पूरा विश्वास नहीं ही हो सका कि सचमुच ऐसी बात है। महीनों तक इस विषयमें पापू तथा मम्मीके साथ हम लोगोंका पत्रव्यवहार चलता रहा जिसमें हम बार-बार अपने तर्क उपस्थित करती थीं और जो बुद्धिको चक्करमें डालनेवाली नयी-नयी घटनाएँ होती थीं, उनका आशय समझानेकी प्रार्थना करती थीं। यह उसी वाद-विवादका लघु रूप था जो कांग्रेसमें

और गांधीजीमें चल रहा था। मेरी एक चिट्ठीका, जो मैंने उन्हें लिखी थी, जवाब देते हुए पापूने लिखा—

आनन्दभवन,
१ जुलाई, १९४०

"प्रिय बेटी तारू,

तुम्हारे मनोरंजक पत्रके लिए धन्यवाद किन्तु तुमने एक कठिन प्रश्न किया है—"क्या अहिंसाका उपाय इतना उपयोगी माना जा सकता है कि किसी देशपर हमला होनेपर उससे उसकी रक्षा की जा सके? ठीक है, बिलकुल यही सवाल कांग्रेस कार्य समिति और गांधीजीके सामने विचारार्थ उपस्थित हुआ था। थोड़ेमें, समितिकी राय थी कि इससे काम नहीं चल सकता किन्तु गांधीजीका दृढ़ विश्वास था और अब भी है कि अहिंसाका मार्ग ही रक्षाका उपाय है। जब हम लोग फिर इकट्ठे होंगे तो हम भी एक छोटी-सी कार्य-समिति बनायेंगे, है न? यतः गत बीस वर्षोंसे मुझे गांधीजीके विचार विदित रहे हैं, इसलिए मैं सम्भवतः उनका दृष्टिकोण सामने रख सकूँ और तुम सब लोग उसके विरुद्ध तर्क उपस्थित करनेका प्रयास करना।

"तुम देखती ही हो कि हम भारतके लोग बातें करना बहुत जानते हैं और हम बुद्धिमानीके साथ सोचा भी करते हैं—इसे ही दार्शनिक अभिरुचि कहते हैं। इस प्रकार हम जो बुद्धिमानीके साथ किसीको चोट न पहुँचाने, बदला न लेने, घूँसेका जवाब घूँसेसे न देनेकी बात करते हैं, वह हमारे देशमें बहुत पुराने जमानेसे प्रचलित रही है। बुद्ध भगवान्‌के समयसे हम उसे सुनते आ रहे हैं। गांधीजीने इसका पुनरुज्जीवन किया और राजनीतिक लक्ष्यपूर्तिके लिए इसे अत्यधिक महत्त्व प्रदान किया। भीषण महायुद्धके समय भी हमारे बुद्धिमान् राजनीतिज्ञ इसपर वाद-विवाद करते रहे। इसलिए हमारे लिए यह एक निराली वस्तु है। और जब इसके कारण होमस्टेडमें रहनेवाली हमारी छोटी समझदार बेटीके मनमें भी उथल-पुथल मची हुई है तो इस विषयपर हमें बैठकर अच्छी बहस कर लेनी चाहिये और काममें सन्नद्ध होनेके लिए शंकाओंका निवारण कर लेना चाहिये।

"तुम्हारे तर्कोंको सुनकर मुझे प्रसन्नता होगी। मैं तुमसे भी कुछ

सोख सकता हूँ और यदि आवश्यक हुआ तो मैं अपनी राय भी बदल सकता हूँ और तुम्हारे पक्षमें वोट दे सकता हूँ। इसी तरह शायद तुम भी मेरी बातें सुननेके बाद यही करनेको तैयार हो जाओ। एक तीसरी बात भी हो सकती है—हम आपसमें इस नतीजे पर पहुँच सकते हैं कि "दोनों ही पक्षमें बहुत कुछ कहा जा सकता है" और इस तरह हम अपने-अपने विचारोंपर ही कायम रह जावें।

तुम्हारा सस्नेह,
पापू।"

कांग्रेसने युद्धोद्योगमें ब्रिटेनके साथ सहयोग न करनेका निर्णय किया, इसलिए हम लोग दिसम्बर १९४० में जब स्कूलसे घर लौटीं, तब असहयोग आन्दोलनका नया दौरा शुरू हो गया था और मामू गिरफ्तार किये जा चुके थे। मम्मीके भी गिरफ्तार होनेकी सम्भावना थी, अतः उन्हें इसके पहले ही हम लोगोंके लिए बहुत-सी बातोंका इन्तजाम करना था। लेखाको अब कालेजमें नाम लिखाना था और उसे इजावेल थौबर्न कालेज, लखनऊ भेजनेकी पूरी तैयारी करनी थी। रीताको और मुझे ताते एन्नाके साथ आनन्दभवनमें रहना था और हमारी पढ़ाईके लिए निजी शिक्षकोंकी व्यवस्था करनी थी। अन्तिम क्षणकी परेशानियोंमें उद्विग्न होनेके कारण मम्मीको इतना वक्त न मिला कि आरामसे बैठकर वे हम लोगोंसे बात-चीत कर सकतीं। इसलिए एक रातको देरतक जागते रहकर उन्होंने हममेंसे प्रत्येकके लिए एक-एक लम्बी चिट्ठी लिखी जिसमें उन्होंने नये सत्याग्रह आन्दोलनका महत्त्व हमें समझानेकी चेष्टा की थी। रीता सबसे छोटी थी, इसलिए मम्मीने उसे पूरी तरहसे समझाकर लिखा था और यह भी बतलाया था कि किन कारणोंसे वे पुनः शीघ्र ही जेल जानेवाली हैं। अन्तमें उन्होंने लिखा—

"मामू पहले ही जेल जा चुके हैं। पापू एक या दो दिनोंके भीतर जा रहे हैं और मेरी बारी भी अगले सप्ताह आ जायगी। तुम, लेखा और तारा जेलके बाहर रह जाओगी, फिर भी तुम्हारी गणना भी सत्याग्रहियोंमें ही की जायगी और तुम आनन्दभवनपर तिरंगा झण्डा लहराते रहनेका ध्यान रखकर आन्दोलनमें अपनी छोटीसी सहायता

प्रदान करोगी। यह एक बड़ा काम है और इसमें तुम्हारी सहायता भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण मानी जायगी जितनी हमलोगों की। तुम्हें कभी-कभी कुछ अकेलापन जरूर मालूम होगा किन्तु यदि तुम ध्यान रखो कि लड़ाई चल रही है और इस समय जाने कितने बालक-बालिकाओंकी अपने माँ-बापसे पृथक् रहना पड़ता है, तो तुम्हें उतना अफसोस न होगा।

"मैं चाहती हूँ कि तुम खुश रहो। यदि तुम खुश रहोगी और स्वस्थ भी तो पापू और मैं भी प्रसन्न रहूँगी। यह सब थोड़े ही दिनोंको बात है। शीघ्र ही हम फिर घर वापस लौटेंगे, इसलिए तुम हमेशाकी ही तरह बहादुर और खुश बनी रहना। हम चाहती हैं कि मुसक्यान तथा हिम्मत इस संघर्षमें विजयी हों जिसका आशय होगा हम सबके लिए और इस बड़े भारी तथा सुन्दर देश भारतके लिए पूर्ण स्वतंत्रता। बेटी, तुम इस बातका खयाल रखना कि तुम, मैं और पापू तथा मामू, सबके सब मिलकर उसे स्वतंत्र बनानेमें सहायता कर रहे हैं। क्या यह ऐसी चीज नहीं जिसका हमें गर्व होना चाहिये और जिससे हमें खुशी भी होना चाहिये।

मम्मी ने जब यह चिट्ठी लिखी थी, तब उनकी आँखोंमें आँसू झलक आये थे और उन कई महीनोंमें जब वे अपने बच्चोंसे बिछुड़ गयी थीं तब भी वे रोती थीं या नहीं यह बात हमें कभी ज्ञात नहीं हो सकी। इस प्रकार वे सव जेल को चले गये। उनके मुक्त होनेके बाद हमें जीवनके मामूली दिन बितानेकी थोड़ीसी फुरसत मिली और अगस्त १९४२के प्रारम्भमें एकबार फिर हमें राजनीतिमें सक्रिय रूपसे प्रविष्ट होना पड़ा।

अध्याय ८

इन्दिराका विवाह

हमारी ममेरी बहिन इन्दिराके विवाहसे १९४२के सालका शुभारम्भ हुआ। यूरोपमें लम्बे अरसे तक ठहरनेके बाद वे कुछ ही महीने पहले भारत वापस आयी थीं। मैं और रीता भद्दे ढंगसे उनके साथ-साथ भवनके चारो तरफ, उन्हें प्रशंसाकी दृष्टिसे देखती हुई, घूमती रहीं। उनका विवाह ही आनन्दभवनमें होने वाला प्रथम परम्परागत विवाह था, क्योंकि मम्मीका विवाह स्वराजभवनमें हुआ था और मौसीका विवाह एक अल्पकालिक रजिस्ट्री द्वारा सम्पन्न हुआ था। सामान्य रूपसे होनेवाली टीम-टाम आदि उसमें कुछ न थी।

हिन्दुओंकी परम्पराके अनुसार विवाह एक धूमधामका तथा खर्चीला समारोह है। उसकी मुख्य रस्मवाला अंश उसका भव्य पटाक्षेप मात्र है। शुरूमें होता यह है कि पंडितोंकी सलाहसे लड़के-लड़कियोंके माँ-बाप ही विवाहका दिन नियुक्त करते हैं। यह कोई गैर-मामूली तरीका नहीं है और केवल विवाह तक ही सीमित नहीं है। कोई भी सनातनी हिन्दू कोई महत्वपूर्ण कार्य मनमाने तौरसे नहीं शुरू कर देता—चाहे उसे नये घरमें जाना हो, लम्बी यात्राके लिए प्रस्थान करना हो और चाहे उसका विवाह होने जा रहा हो। वह पहले पंडित-से पूछेगा कि किस दिन नक्षत्रोंका शुभ योग है ताकि उसका अनुष्ठान सफल होनेकी अधिकसे अधिक सम्भावना हो। भारतीयोंका स्वभाव उतावलीसे दूर रहनेका होता है, क्योंकि इस आदर्शपर उनका पालन-पोषण किया जाता है कि सब तरहके निर्णय सोचसमझकर, शान्ति-पूर्वक किये जाने चाहिये। निर्णय जितना ही अधिक महत्वपूर्ण होगा, उतनी ही अधिक शान्तिके साथ उसपर पहुँचना चाहिये। इसलिए कोई भी भारतीय इस बातका विचार नहीं कर सकता कि एक दिन सबेरे उठकर यों ही घोषित कर दे कि अगले दिन अगले सप्ताह या अगले महीने ही उसका विवाह होने जा रहा है।

यह बहुत कुछ पंडितकी राय पर निर्भर करता है जो शुभ दिन शोध कर बतलाता है। हमारा परिवार कट्टर सनातनी परिवार तो न था किन्तु उसकी जड़ें देशकी सांस्कृतिक परम्परासे सम्बद्ध थीं, इसलिए पण्डितकी सहायतासे मार्चमें एक शुभ दिन विवाहके लिए निश्चित किया गया।

समारोहका आरम्भ प्रायः उस समय होता है जबकि वर ,उसके सम्बन्धी तथा मित्र, विवाहके एक-दो दिन पहले, कन्याके नगर (या ग्राम) में पहुँच जाते है। जिस समय उनका आगमन होता है, फूल-मालाओं आदिसे स्टेशनपर ही उनका स्वागत-सत्कार किया जाता है और उसी क्षणसे वे कन्या पक्षके सम्मान्य अतिथि माने जाते हैं। "सम्मान्य अतिथि" कहना अनावश्यक है, क्योंकि भारतमें अतिथि स्वतः ही एक सम्मान्य व्यक्ति समझा जाता है। चाहे वह कोई भी हो, यदि वह शुभ भावनासे तुम्हारे घरमें प्रवेश करता है तो तुम्हें उसका अत्यन्त हार्दिक स्वागत करना ही चाहिये। किसी भी समय आये हुए अतिथिके लिए, विवाहके समय आये हुएके लिए तो और भी अधिक, यह बात सत्य है। वर तथा उसके साथके लोगोंको ठहरानेके लिए एकाध मकानमें दो तीन दिनकी व्यवस्था कर ली जाती है जहाँ कन्या पक्षके आदमी भोजन, मिष्ठान्नादिसे उनका सत्कार करते हैं और कन्या परिवारके नौकर उनका हुक्म बजा लानेके लिए प्रस्तुत रहते हैं। यही विवाहका सामान्य रूप है किन्तु इन्दिराके विवाहमें बारातको ठहरानेके लिए मकानकी आवश्यकता नहीं पड़ी, क्योंकि फीरोज गांधीका परिवार पहलेसे ही इलाहाबादमें रहता था।

गायन तथा वाद्य विवाहोत्सवका एक अंग होता है। वह पृष्ठ-भूमिमें जारी रहता है और विवाह-कृत्यके पहले हर रीति-रस्मके साथ-साथ चलता रहता है। उत्तरी भारतमें वाद्यका काम प्रायः शह-नाईसे लिया जाता है जिसके मधुर किन्तु कुछ-कुछ करुणामय स्वर उस समयकी खुशियालीमें थोड़ी-सी वेदनाकी आवाज भी मिला देते हैं। शादीमें बाजा बजानेके लिए अक्सर विशेषज्ञ और कुशल संगीतज्ञ ही आमंत्रित किये जाते हैं, यहाँतक कि कभी-कभी उन्हें देशके दूरस्थ भागोंसे बुलवाना पड़ता है। इन्दिराके विवाहमें यह भी नहीं किया

गया, क्योंकि उस समय और उस मकानमें, जहाँ महत्त्वपूर्ण राजनीतिक सम्मेलनादि होते रहते थे, संगीतका कार्यक्रम लगातार जारी रखना असम्भव था। इसलिए इन्दिराका विवाह पुराने रिवाजोंके साथ उन नये प्रतिबन्धोंकी खिचड़ी सदृश था जो परिस्थितियोंके कारण लगाये गये थे।

मम्मीके विवाहमें ऐसा नहीं करना पड़ा था। उनका विवाह सन् १९२१ में हुआ था, जो नेहरू परिवारके लिए भारी परिवर्तनोंका वर्ष था। यद्यपि गांधीजीका प्रभाव स्वराज भवनके परिवारका मार्ग-दर्शन करने लगा था, फिर भी विवाहमें गांधीजीके ढंगकी सादगीको इसके सिवा कोई स्थान नहीं दिया गया कि मम्मीने विवाह-कृत्यके समय खादीकी साड़ी पहनी थी। अन्य सब बातोंमें बँधी हुई पुरानी परम्पराका ही अनुसरण किया गया था, जिसमें घंटोंतक मंत्रादिका पाठ, सप्तपदी आदि विविध कृत्य होते रहे और सैकड़ोंकी संख्यामें एकत्र हुए मेहमानोंको आला दरजेकी दावत दी गयी जिसमें उन्होंने नानूजीका वह शाही ठाट-बाट अपनी आखोंसे देखा होगा जिसकी चर्चा उन्होंने अनगिनत लोगोंसे सुनी थी।

मम्मीको, जो अपने पिताकी बड़ी लाड़ली बेटी थीं, वधूकी पोशाकके रूपमें चमचम करती हुई बढ़िया १०१ साड़ियाँ दी गयी थीं। प्रत्येक साड़ीके साथ मेल खानेवाला सुन्दर ब्लाउज तथा साटनके स्लीपर आदि दिये गये थे। उनके जेवर रानियों जैसे थे, क्योंकि हारों, ऐरनों ब्रेसलेटोंके कितने ही थानोंके सिवा जो सामान्यतया नवविवाहिता वधूको दिये जाते हैं, मम्मीको सोनेकी करधनी भी जैसी उस समय भारतीय स्त्रियाँ पहना करती थीं, और सोनेके बाजूबंद तथा सोनेकी पायलें भी दी गयी थीं। साधारण तौरसे पायलें चाँदीकी ही बनती है, क्योंकि यह मान्यता है कि रानियों तथा देवी-देवताओंको छोड़कर सोनेका कोई भी जेवर कमरके नीचे नहीं पहना जाता। किन्तु नानूजी शाही मिजाजके आदमी थे जो इस तरहका भेद-भाव माननेको तैयार न थे। इन बहुमूल्य वस्त्रों तथा आभूषणोंके सिवा मम्मीको लिननके पर्दे, टेबिल कुरसी आदि लकड़ीका सामान और चाँदीके बरतन आदि अपना नया घर सजानेके लिए तथा एक मोटरकार, यहाँतक कि एक

घोड़ा भी दिया गया था। बचपनमें ही उन्हें घोड़ेकी सवारी करना सिखलाया गया था और घोड़ोंका शौक उन्हें अपने पितासे ही बरासतमें मिला था। वह ऐसा वधूपहार था जिसका महत्त्व उस सबसे कहीं अधिक था जो साधारणतया किसी लड़कीको उसके माता-पिता देते हैं।

विवाह कृत्य समाप्त होनेके बाद मम्मीने जब परम्परानुसार वधूकी पोशाक पहन ली थी, तब उनका जो फोटो लिया गया था, वह उस समयकी तड़क-भड़क और खर्चीलेपनका साक्षी है। उसमें वे गुड़िया जैसी वधूके रूपमें माता-पिताके चरणोंके पास एक गलीचेपर बड़े सलज्जभावसे बैठी हुई दिखायी गयी हैं। वे सुनहले तारोंकी साड़ी पहने हुई थीं जिसके किनारेपर हीरा, मोती आदि टँके हुए थे। उसका पल्ला उनके माथेपर था किन्तु इसके कारण मोतियोंसे भरी हुई उनकी माँग छिपने नहीं पायी थी। उनके लम्बे-लम्बे बाल, जैसा कि मम्मीने स्वयं बतलाया था, सोनेके डोरोंसे गूँथे गये थे और गर्दनके ऊपर रत्न-जटित पिनोंकी सहायतासे लपेट दिये गये थे। चित्रमें उनके पास ही बैठे हुए पापू परियोंकी कहानीके राजकुमार सदृश देख पड़ते थे। वे रेशमी अचकन, चूड़ीदार पैजामा पहने हुए थे और सिरपर पारदर्शक महीन बनारसी कपड़ेका साफा चारो तरफ पूला पूला-सा लपेटा हुआ था।

जो लोग मम्मीके विवाहमें उपस्थित रहे होंगे, उन्हें सन् १९३३मे हुई मौसीकी शादी बिलकुल ही दूसरे ढंगकी लगी होगी। नानूजीका देवलोक तीन वर्ष पहले ही हो चुका था और नानी माँ, जिनका स्वास्थ्य कभी भी बढ़िया नहीं रहा, अपनी दुर्बल-सी प्रतिच्छाया मात्र रह गयी थीं। १९३३ का वर्ष राजनीतिक तपस्या एवं अल्पोपयोग का समय था। अक्तूबरमें मामू जेलसे छूट तो गये थे किन्तु कोई भी नहीं जानता था कि वे कब पुनः गिरफ्तार कर लिये जायँगे। इन सब बातोंकी वजहसे यह विवाह बहुत सादगीसे और थोड़ेमें निष्पन्न करना पड़ा। उसमें केवल इतनी ही काररवाई हुई कि मौसीने हलके गुलाबी रंगकी खादीकी पोशाक पहन ली और बैठकखानेमें उपस्थित हो गयीं जहाँ संक्षेपमें विवाहकी रजिस्ट्री (निबन्धन)की क्रिया पूरी कर दी गयी।

हम लोग कमरेमें एक तरफ गम्भीर मुद्रामें बैठी हुई थीं और हमें तो इसमें विवाह जैसी कोई चीज नजर ही नहीं आयी; क्योंकि इलाहाबादमें कश्मीरी शादियाँ जिस धूमधाम और आनन्दोत्सवके साथ हुआ करती थीं, उनके साथ इसकी रंचमात्र भी समानता न थी। इस नैराश्य भावके साथ हमें यह सोचकर भी दुःख हो रहा था कि मौसी बहुत दूर बम्बईमें एक ऊँचे, शान्त अजनबीके साथ, जिनका नाम राजा हठीसिंह है, रहेंगी और ऊपरी मंजिलका उनका कमरा, जहाँ वे कपड़ोंके एक पुराने सन्दूकमेंसे अच्छे-अच्छे भड़कीले कपड़े निकाल कर हमें सजाया करती थीं और गाना तथा नाचना सिखलाती थीं, अब खाली पड़ा रहेगा। हमारे लिए यह बड़ी उदासीका समय था और कमरेके उस पार पलंगपर मुरझायी हुई और सुस्तसी लेटी हुई नानी माँको देखकर, जिनके छोटे-छोटे गोरे हाथ, सफेद साड़ीके वाहर निकले हुए, करीब-करीब पारदर्शकसे दिखाई देते थे। वहाँ उपस्थित प्रत्येक व्यक्तिके चेहरेपर गम्भीर शान्ति छा जाती थी। सर तेजबहादुर सप्रू ने, जो नानूजीके प्रिय मित्र रह चुके थे, जब रजिस्ट्रीका काम समाप्त हो गया तब मानो हमारे ही दिलकी आश्चर्यभावना प्रकट करते हुए पूछा था—"लेकिन शादी अब कब होने जा रही है?" वे भी इस बातका विश्वास न कर सके कि (इस विवाहमें) पुरानी परिपाटीकी इस हद्-तक उपेक्षा कर दी गयी है कि सब रीति-रस्मों और कृत्योंका सम्पूर्ण रूपसे परित्याग ही कर दिया गया है।

अब जब इन्दिराके विवाहकी चर्चा चली तो सारे भारतवर्षमें दिलचस्पीकी लहर-सी फैल गयी और देशके प्रत्येक भागसे तरह-तरहके उपहारोंका आना शुरू हो गया। उनके कमरेमें पार्सलों या बण्डलोंपर लपटे हुए कागजों और साटनके फीतोंका ढेर लग गया, जिनके भीतरसे चाँदीकी चीज़ों, सुन्दर साड़ियों और बीचमें मखमलके अस्तरवाले छोटे डब्बेमें रखे हुए आभूषणोंके उपहार निकलते थे। इनमेंसे कई उपहार तो फिरसे सावधानीसे लपेट कर भेजनेवालोंके पास लौटा देने पड़ते थे, क्योंकि परिवारके लोग उन्हें जानते न थे।

किसी पवित्र एवं गुरुत्वपूर्ण अवसरका ठीक-ठीक आशय हम समझ लें, ऐसा क्वचित् ही होता है। अपनी बाल्यावस्थामें हम कितने

ही विवाहोत्सवोंमें सम्मिलित हो चुकी थीं और हम तत्सम्बन्धी रीति-रस्मोंको भी देख चुकी थीं किन्तु पुरोहित द्वारा शास्त्रोंके सभी मंत्र संस्कृतमें उच्चरित होनेके कारण हम उनका अर्थ बिलकुल नहीं समझ पाती थीं। अब यह विवाह आनन्दभवनमें ही होने जा रहा था, अतः हमारी इच्छा हुई कि इसकी छोटी-छोटी बातोंका भी आशय समझें और हमने पापूसे इसकी चर्चा की। हमारी दृष्टिमें प्रेम-बन्धनकी पराकाष्ठाका नाम ही विवाह है और यही बात हमने स्फूर्तिप्रेरित होकर पापूसे कह दी।

पापूने जवाब दिया "हाँ, बात तो ठीक है, इसमें सन्देह नहीं किन्तु हमारे इस भारतवर्षमें यह केवल उन दो व्यक्तियोंके ही आपसके सम्बन्धकी चीज नहीं समझी जाती जो एक दूसरेसे विवाह-बद्ध होते हैं। एक अर्थमें यह समाजके प्रति उन दोनोंका आत्मार्पण भी है। हमारे यहाँ विवाहके समय जो मंत्र पढ़े जाते हैं, उनमें इस बातपर भी जोर दिया जाता है। मैं नहीं कह सकता कि दुनियामें और भी कोई ऐसा देश है जहाँ विवाहका यह पहलू सामने रखा जाता हो।"

"क्या विवाहकी पूरी-पूरी सनातन परिपाटी यहाँ दोहरायी जायगी?" हम लोगोंने पूछा, क्योंकि हम जानतीं थीं कि हिन्दू विवाह-पद्धति तो रातभर जारी रह सकती है।

"नहीं" पापूने जवाब दिया, "मामू उसके एक परिष्कृत, संक्षिप्त रूपके ही पक्षमें हैं, इसलिए पद्धतिका केवल मुख्य और आवश्यक अंश ही अनुष्ठित किया जायगा, क्योंकि वास्तवमें इतना ही करनेकी आवश्यकता है और इसीका कुछ अर्थ भी होता है। इसमें घण्टे, डेढ़ घण्टेसे अधिक समय नहीं लगना चाहिये।"

विवाहकी सारी कारवाई उस खुले, गोलाकार बरामदेमें होनेवाली थी जो नानी माँके कमरेके बाहर पड़ता था। बरामदेके सामने, कई गजके फासलेपर वे कमरे थे जिनमें कभी बीबी माँ रहती थीं। आनन्द भवन इस समय उतना भरा-पूरा न था जितना वह एक जमानेमें था। वर्षाका समय बीत जानेसे उसमें काफी अन्तर आ गया था। सबसे बड़ा अन्तर तो स्वयं इन्दिराकी माँ, हम लोगोंकी मामीके न रहनेसे आ गया था, जो कई वर्षोंसे दुर्बल चली आ रही थीं और लम्बी

बीमारीके बाद सन् १९३६में ही यूरोपमें स्वर्ग सिधार चुकी थीं। मामूली तौरसे कन्याके माता-पिता उसके तथा वरके सामने पड़े हुए आसनोंपर बैठते हैं किन्तु कृत्य सम्पन्न करनेके लिए केवल मामूका आसन बिछानेके बजाय, एक आसन और बिछाया गया था जिसपर मामी बैठतीं (यदि वे जिन्दा होतीं तो)। उस छोटेसे रिक्त आसनको देखकर सभीके हृदयपर दुःखकी छाया छा जाती थी, क्योकि उससे इन्दिराकी साहसवती, वीर माताकी स्मृति जाग्रत हो उठती थी, जिन्होंने अपने स्वास्थ्यका बलिदान उस पवित्र कार्यके लिए कर दिया था जो उन्हें इससे भी अधिक बहुमूल्य प्रतीत होता था।

इन्दि (इन्दिरा) अपने कमरेसे प्याजी रंगकी खादीकी साड़ी पहिनकर आयीं जो उनके पिता द्वारा काते गये सूतकी बनी थी और जिसपर बढ़िया रुपहली बेल टँकी हुई थी। वे अपने पिताके पास बैठ गयीं, क्योंकि जबतक कन्यादान नहीं हो जाता तबतक वे अपने पिताके ही परिवारकी सदस्या थीं। "कन्यादान"का अर्थ है पिता द्वारा वरके हाथ कन्याका अर्पित कर दिया जाना, करीब-करीब उसी तरह जिस तरह ईसाइयोंके विवाहमें होता है। भारतवर्षमें यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण और ऊँचे दरजेका दान माना जाता है, क्योंकि कन्यासे अधिक बहुमूल्य वस्तु किसीके पास और क्या हो सकती है। कभी-कभी ऐसा होता है कि जिस आदमीके अपनी निजकी लड़की नहीं होती, वह इस अवसरके लिए खासतौरसे अपने भाई या अन्य किसीकी लड़कीको अपनी बनाकर कन्यादानकी रस्म अदा करता है जिसमें वह इसके पुण्यका भागी बन सके। पुरोहित द्वारा आवश्यक मंत्रोंका पढ़ा जाना समाप्त हो जानेके बाद इन्दिराने फीरोजके बगलमें आसन ग्रहण किया और अब वे अपने पिताके सामने बैठीं।

बरामदा आमके हरे पत्तों आदिसे खूब सजाया गया था और बीचमें एक बेदिका बना दी गयी थी जिसमें पवित्रताके प्रतीकस्वरूप अग्नि रखी गयी थी। हिन्दू विधिके अनुसार विवाहित वर-वधूको विवाहके प्रमाणपत्रकी आवश्यकता नहीं रहती, क्योंकि अग्निदेव स्वयं ही उस कृत्यके साक्षी होते हैं। निमंत्रित लोग बरामदेमें बिछी दरियोंपर तथा सीढ़ियोंसे उतरकर नीचे रखी हुई कुरसियोंपर बैठाये

गये थे किन्तु आनन्द भवनमें होनेवाले इस विवाहोत्सवका इतना जबरदस्त आकर्षण था कि सैकड़ों नागरिक बिना बुलाये ही वहाँ पहुँच गये थे जिन्हें कोई रोक नहीं सका था। विवाहकृत्य देखनेके लिए वे लोग घेरा बाँधकर खड़े हो गये थे और उनमें जो अधिक फुरतीले थे वे अधिक अच्छी तरह देखनेके इरादेसे पेड़ोंतकपर चढ़ गये थे। इस आकर्षक दृश्यके बीचमें अमेरिकन फैशनकी एक पत्रिका-का फोटोग्राफर भी, अपने सरो-सामानके साथ, धक्कम-धक्का करते हुए किसी तरह पहुँच गया था। पसीनेकी बूँदें उसकी कनपटियोंसे बहकर ऊपरके ओंठपर चमक रही थीं। मार्चका महीना और सबेरेका समय था जब थोड़ी-थोड़ी गरमी पड़ रही थी। मंत्रोच्चारण करनेवाले पुरोहितकी आवाज कभी प्रखर तथा कभी मन्द हो जाती थी और अग्नि प्रज्वलित हो रही थी जैसे-जैसे चाँदीके चम्मचसे उसमें घीकी आहुति डाली जाती थी। आगकी लहराती हुई लाल-पीली लपटोंके चारों तरफ खड़ी हुई झुण्डकी झुण्ड महिलाओंकी मुलायम रेशमी साड़ियाँ धूपमें रंग-बिरंगी होकर चमक रही थीं।

बरामदेके एक मटमैलेसे पत्थरके खम्भेके पास खड़ी होकर मम्मी भी विवाहकी काररवाई देख रही थीं किन्तु उनकी आखोंमें आँसू भरे हुए थे। मैं समझ नहीं पा रही थी कि वे किस दुःखसे दुःखित होकर रो रही थीं, सो भी इन लोगोंके सामने, जैसा कि उन्होंने कभी नहीं किया था। क्या उन्हें इन्दिराकी माँका स्मरण हो आया था जो इस खुशीके अवसरपर मौजूद न थीं, या उन्हें स्वयं अपने ही माता-पिता तथा चाचीकी याद सता रही थी? या हो सकता है कि बागकी दीवारके उस पार खड़े हुए स्वराज भवनपर उनकी नजर पड़ी हो जो किसी समय जीवन एवं हास-विलाससे प्रतिध्वनित हुआ रहता था किन्तु जिसका आज परित्यक्त एवं खोखला सा ढाँचा मात्र रह गया था। इस सिलसिलेमें क्या वे अपने ही उस विवाहकी याद कर रही थीं जो उसी भवनमें हुआ था तथा पहलेसे जाने जा सकने योग्य उन परि-वर्तनोंकी बात सोच रही थीं जो उनके परिवारमें उस समयके बाद हुए थे? उन्होंने बहुत पहले ही विवाह कालके कीमती और भड़कीले कपड़ोंका परित्याग कर दिया था। उनके पासकी अत्यन्त बहुमूल्य

वस्तुओंमेंसे कितनी ही पुलिस उन धावोंके समय उठा ले गयी जो सविनय अवज्ञा आन्दोलनके समय किये गये थे। सन् १९२१ की उस फूल जैसी सुकुमार नववधूने जो सब तरहसे सुरक्षित थी, स्वप्नमें भी खयाल न किया था, कि भविष्यमें उसके लिए कैसी कठिनाइयोंके दिन आनेवाले थे । और अब २१ वर्ष बाद दूसरे आनन्द भवनमें एक और युवती एवं सुन्दरी वधूने वैसी ही शपथ ग्रहण की। कौन जाने कितने शीघ्र उससे युक्त मौखिक आत्मसमर्पणको वास्तविक सत्यमें परिणत करनेको कहा जायगा ? मम्मीने अवश्य ही मन-ही-मन यह प्रार्थना की होगी कि यह वधू भी भावी परीक्षाओंमेंसे उसी तरह सफलतापूर्वक बाहर निकल सके जिस तरह मैं स्वयं निकल सकी थी।

कन्यादानकी रस्म पूरी हो जानेके बाद तत्सम्बन्धी कृत्योंमें मामूका अंश समाप्त हो गया। वे उठ बैठे और एक तरफ जाकर खड़े हो गये। वर-वधू भी एक दूसरेका हाथ पकड़े हुए सप्तपदीके लिए, अर्थात् सात कदम चलकर अग्निका फेरा पूरा करनेके लिए, उठ खड़े हुए। इसी समय उन्होंने एक दूसरेके प्रति प्रतिज्ञाएँ कीं, पुरोहित संस्कृतमें जिन शब्दोंका उच्चारण करता था, उन्हें ये दोनों क्रम-क्रमसे दोहराते थे। पुनः अपने-अपने स्थानोंपर आसीन हो जानेके पश्चात् उन्होंने वे शब्द भी दोहराये जिनके द्वारा उन्होंने समाज तथा संसारकी सेवामें अपने आपको लगानेकी प्रतिज्ञा की। इसके बाद रस्मका वह हिस्सा पूरा किया गया जिसमें वधूके भी मित्र और रिश्तेदार हिस्सा ग्रहण करते हैं। अपनी-अपनी जगह छोड़कर हम लोग इन्दिराके पास गये और उनपर पुष्पदलकी वर्षा कर हम लोगोंने वे श्लोक पढ़े जिनमें उनसे कहा गया था कि वे युग-युगसे चली आनेवाली भारतीय नारीत्वकी मान्य परम्पराओंका गौरवके साथ पालन करें। श्लोकमें भारतकी अत्यन्त धर्यशीला, पतिव्रता नारियोंका उदाहरण सामने रखा गया था और इन पंक्तियोंने ही, विवाह कृत्यके अन्य किसी अंशकी अपेक्षा अधिक अच्छी तरहसे, हमारे सामने विवाहका हिन्दू आदर्श स्पष्ट कर दिया। पापूने हम लोगोंको बतलाया था कि विवाह दो व्यक्तियोंके बीच प्रेम और साथ रहनेके सम्बन्धके सिवा कुछ और भी है, क्योंकि वे दोनों

मात्र दो व्यक्ति ही नहीं हैं। वे अतीतकी तथा भावी पीढ़ियोंको मिलानेके बीचकी कड़ीके सदृश हैं। विवाह वह आब-हवा है जिसमें नयी पीढ़ीका पौधा पुष्पित होता है। अन्तमें, विवाह एक तरहसे ब्रह्माण्ड सन्बन्धी योजनाकी प्रतिक्षण होनेवाली पूर्तिका सूचक है, जिससे हिन्दुओंके प्राचीन कालके उच्च आदर्शोंका महत्व आधुनिक भारतकी नव-वधूके लिए भी अक्षुण्ण बना रहता है। हम लोगोंके लिए यह इस बातका एक और प्रमाण था कि भारतकी संस्कृति एक जीती-जागती चीज है जो उसके दैनिक जीवनमें अभिव्यक्त होती रहती है। वह कोई ऐसी वस्तु नहीं जो पुरानी पुस्तकों तथा स्मारकोंमें गड़ी रह गयी और भुला दी गयी हो।

इन्दिरा और फीरोज आनन्दभवनसे थोड़ी दूरपर स्थित एक मकानमें चले गये, ताकि अनिश्चित भविष्य द्वारा कर्मक्षेत्रमें आहूत होनेके पहले वे दो चार महीने आनन्दपूर्वक बितावें। उसी सालके सितम्बरमें वे दोनों कैद कर लिये जानेवाले थे, क्योंकि असहयोगियोंके विरुद्ध जो कानून लागू था, वह उन युवक-युवतियोंके प्रति कोई नरमी नहीं दिखलाता था जिन्होंने हालमें ही विवाहित जीवनका आरम्भ किया हो।

अध्याय १

भारतीय स्वर मेल

संगीत भारतीय जीवनका एक मुख्य अंग है। उस सभ्यतामें जो अभीतक यन्त्रोंपर पूर्णरूपसे विश्वास नहीं करती, ऐसा होना ही चाहिये। भारतीय लोग दिलके भीतरसे ही अधिक संगीतप्रिय हों या संगीतकी उन्हें अन्य लोगोंसे अधिक जानकारी हो, ऐसी बात नहीं है, किन्तु वे मानों स्वाभाविक प्रेरणासे ही अपने विचार तथा भाव संगीतके जरिये प्रकट करते हैं। यह संगीत उच्चकोटिका होता है या नहीं, मैं कह नहीं सकती किन्तु वह होता है सीधा-सादा, हृदयपूर्ण तथा स्वाभाविक। खुली सड़कपर जब बैलगाड़ी हिलती-डुलती धीरे-धीरे चलती है तो उसमें ही शायद कोई ऐसी विचित्रता होती है जिससे प्रेरित होकर गाड़ीवान तान छेड़ देता है। इसी तरह जब झुण्डकी झुण्ड औरतें सिरपर घासका बोझा लाद कर झूमती हुई-सी चलती हैं, तो उनके मुँहसे मानों स्वतः ही गीतकी लय निकल पड़ती है। कारण क्या है, यह तो हम नहीं कह सकती थीं किन्तु इतना हम जानती थीं कि भारतीय लोग उतनी ही स्वतंत्रतासे गाते तथा नाचते हैं जितनी स्वतन्त्रतासे वे साँस लेते हैं।

गरमीकी रातोंमें इलाहाबादमें जब हमारी चारपाई लानपर बिछायी जाती थी और हम बाँसके डंडोंपर फैलायी हुई मसहरीके छिद्रोंमेंसे चमकते हुए तारोंको देखती रहती थीं, तब हम अक्सर बागकी दीवारके उस पार किसी जानेवालेको अपनी आनन्दपूर्ण गायन-लहरीको धीमी रोशनीवाली, निर्जन सड़कपर बिखेरते हुए सुना करती थीं। बड़े सबेरे कभी-कभी हमारी नींद गंगास्नानके लिए जाते हुए किसी भक्तकी मधुर गीतध्वनि सुनकर खुल जाती थी। इस गानेवालेने हमारे मनमें एक तरहका कौतूहल-सा उत्पन्न कर दिया था। हमने उसे कभी देखा नहीं और न यही मालूम हुआ कि वह कौन था किन्तु उसका प्रातः-

कालीन गायन हमारे लिए एक परिचित-सी चीज हो गयी और जब उसने हमारे घरके निकटसे होकर जाना बन्द कर दिया तो हम लोगोंको बहुत दिनोंतक उसकी याद आती रही।

मसूरी तथा अलमोड़ाके पहाड़ी क्षेत्रमें हम लोग अक्सर इधर-उधर आने-जाने वाले कुलीके गीतकी मँडराती हुई स्वरलहरी सुनकर चौंक पड़ती थीं। पहाड़ी गीतकी एक अपनी विशेष करुण ध्वनि, कुछ-कुछ एक ही लयवाली होती है। उसकी झांई रहस्यमय ढंगसे घाटीके वार-पार छा जाती थी और किसी दूरस्थ श्रोताके जवाबसे टकराकर पुनः प्रकम्पित हो उठती थी। कभी-कभी उसका मोहक प्रभाव बाँसुरीकी मधुर स्वरलहरीके कारण और भी अधिक बढ़ जाता था।

एक बार हम लोग लकड़ीके बने एक सायबानके पाससे जा रही थीं, जहाँ फटे-पुराने कपड़े पहने हुए कुली लोग शामके वक्त छोटी-सी आगके निकट जाड़ा दूर करनेके लिए इकट्ठे हो गये थे और जहाँ वे क्रम-क्रमसे एक ही हुक्का पीकर धूम्रपानकी अपनी इच्छा पूरी कर रहे थे। उस समय हमने एक दूसरी ही तरहका गाना सुना। वहाँ लकड़ीके सुवासित धुएँके बीच, लाल-लाल जलते हुए अंगारोंकी सुखद चमकमें और हुक्काकी मटमैली नीली-सी गरम राखके संसर्गमें जो गाना चल रहा था, वह एक आदमीकी तान न होकर समवेत गान था और उसकी ध्वनि स्फूर्तिदायिनी तथा हृदयोन्मेषिनी थी। एक कुली मुख्य गायकके रूपमें गीतका आरम्भ करता था और दूसरे लोग उसके बाद समवेत रूपसे उसे दोहराया करते थे, जिससे चैतन्यवर्द्धक लय उत्पन्न होती चलती थी।

भारतीय लोग जिस तरह शहरकी सड़कोंपर स्वच्छन्द भावसे गाना गा सकते थे, चाहे कितनी ही भीड़ हो, गाड़ियों सवारियोंका ताँता लगा हो और कामकाजके कारण शोरगुल हो रहा हो, उसी तरह वे अपने आप नाचनेमें भी प्रवृत्त हो सकते हैं केवल इसलिए कि ऐसा करनेमें उन्हें विशेष आनन्द आता है। प्रत्येक प्रदेशमें लोकनृत्योंका अपूर्व भाण्डार रहता है और प्रत्येक त्योहार तथा खुशीके अवसरपर उनकी बहार देखनेको मिल सकती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि चिन्तायुक्त रहते हुए भी लोग (कुछ समयके लिए) चिन्तामुक्त हो सकते हैं, वृद्धा-

वस्थाके चंगुलमें तेजीसे फँसते जाते हुए भी जो कुछ ही समयमें उनका दुःखद अन्त कर डालती है, यौवनका अनुभव कर सकते हैं और पीड़ासे उद्विग्न होते हुए भी बिलकुल निरपराध तथा प्रसन्नचित्त-से प्रतीत हो सकते हैं। रीताने और मैंने अपनी इस अनोखी रासतकी एक झलक अलमोड़ेमें स्थित उदयशंकरके संस्कृतिके केन्द्रमें देखी, जहाँ हमने ग्रीष्मकालीन अभ्यास-क्रममें नाम लिखाया था।

खाली हमें उतना सुन्दर कभी नहीं लगा जितना १९४२ की गरमियोंमें प्रतीत हुआ। हमें इसकी कोई पूर्व कल्पना भी नहीं थी कि परिवारके हम सब सदस्य अन्तिम बार यहाँ साथ-साथ रह रहे हैं, क्योंकि हिमालयके उस दूरस्थ क्षेत्रकी सुहावनी शान्तिमें कौन इस बातकी भविष्यद्वाणी कर सकता था कि कारावास तथा विछोह होनेमें कुछ ही महीनोंकी देर है और यह कि इस बारकी जेलयात्रा ही पापूकी अन्तिम यात्रा होगी? यदि हमें इसकी प्रतीति हुई होती तो हम पूरी गरमीभर खालीमें ही बनी रहतीं, जहाँ हमारे माता-पिता रह रहे थे, पर हम तो अलग-अलग स्थानोंमें रहनेके लिए चल पड़ीं—लेखा हमारे चचेरे भाइयोंके साथ पिंडारी हिमनद देखने के लिए चली गयीं और रीता तथा मैं, पापू के सुझावपर दस मील दूर स्थित उदयशंकरके संस्कृति केन्द्रमें दाखिल हो गयीं।

फिर भी कमसे कम कुछ समयके लिए तो हम लोग साथ-साथ थे ही, जब कि हम खालीके विविध दृश्योंको देखकर अपने नेत्रों तथा हृदयकी तृप्ति करते रहते थे। जैसा कि हमेशा होता है, मैदानोंकी झुलसा देनेवाली सख्त गरमीके बाद पहाड़ी हवा ज्यादा आराम देनेवाली और बड़ी अच्छी मालूम होती है। मई और जूनमें तो इलाहाबाद बिलकुल भट्ठीकी तरह मालूम पड़ता था और जबतक जुलाईका महीना नहीं आ गया तथा मौसिमी हवाने प्यासी भूमिको वर्षासे गीला नहीं कर दिया, तबतक वह पुनः आरामसे रह सकने योग्य स्थान नहीं बन सका। अलमोड़ातककी यात्रा हम लोगोंने दो मंजिलोंमें तय की, बल्कि तीन मंजिल कहिये, क्योंकि आखिरी एक मील हमें पहाड़के ऊपर खालीतक पैदल ही चलकर तय करना पड़ा। यात्राका पूर्वार्द्ध हमने रेल द्वारा तय किया और उत्तरार्द्ध मोटरगाड़ी

द्वारा। इस दूसरे हिस्सेकी यात्रासे ही हमें विशेष आनन्द प्राप्त हुआ, विशेषकर उस समय जब पापू स्वयं गाड़ी चलाते थे। सड़क कम चौड़ी तथा चक्कर काटती हुई पहाड़पर चढ़ती थी और प्रत्येक मोड़पर जब हमारी गाड़ी घूमती थी, तब अधिक ठण्ढी हवाके झकोरे हमारी साँसके साथ प्रविष्ट होते थे, यहाँतक कि अन्तमें हम सदाबहार जंगलोंमेंसे जाने लगे जो फूलदार पेड़ोंसे युक्त नदीके उन किनारोंके निकट थे, जहाँ नीले और सफेद रंगके वायलेट फूल बिखरे हुए थे। कभी-कभी पापू किसी जलप्रपातके पास मोटर रोक देते थे ताकि हम अपने हाथोंकी अंजलि बनाकर उसे पी सकते जबकि वह सुस्वादु रूप ग्रहण करते हुए हमारी अंजलिमें प्रपतित होता। मार्गमें यात्रियोंके लिए एक छोटा-सा उपाहार गृह था, जिसमें केवल एक ही कमरा था जो बनावट-में भद्दा सा लगते हुए भी बिलकुल साफ-सुथरा था। भोजन पीतलकी छोटी थालियोंमें लाया गया। वह सीधा-सादा किन्तु स्वादिष्ट था और हमने उसे एक चतुष्कोण टेबिलपर रखकर खाया। हमेशा गरम-गरम, फूली हुई पूड़ियाँ तथा तरकारी—(अक्सर आलूकी शोरबेदार तरकारी जिसमें खूब मसाला पड़ा रहता या कद्दूकी तरकारी) और बर्फकी तरह जमा हुआ ठण्ढा दही, ठोस, सफेद तथा मलाईदार, जिसके भीतर धँसाकर चाकूसे अलग-अलग टुकड़े कर दिये जा सकते, फिर भी निकालनेपर चाकू बिलकुल साफ बना रहता। भोजन कर चुकनेके बाद हम हाथ धो डालते और नजदीकके किसी झरने से बरफके समान ठण्ढा पानी पीकर, तरोताजा होकर यात्राका सिलसिला फिर शुरू कर देते।

खालीका मौसिम मैदानी मौसिमके विपरीत, हलकी-हलकी सुहावनी गरमीवाला तथा निद्रा लानेवाला था और उस सालकी गरमीमें पापू द्वारा पाली गयी मधुमक्खियाँ मानों अधिक तेजीसे फूलोंपरसे छत्तेपर और छत्तेपरसे फूलोंपर उड़ रही थीं। पहाड़ीके पार्श्व डेजी तथा जंगली ऑरचिड फूलोंसे ढँके हुए थे। हम मीठे और बैगनी रंगके बेरी नामक फल खानेके लिए पेड़ोंपर चढ़ जाती थीं और सबेरे "पारिज" ग्रहण करते समय गुरारे, रसदार पीले फल खाया करती थीं।

हमलोगोंने टेबिल बनानेकी चटाइयोंका एक तरीका, ताड़के नुकीले पत्तोंको मोड़कर परस्पर सी देनेका सीख लिया था। रीता और मेरा इरादा अभी खालीसे कहीं अन्यत्र जानेका नहीं था किन्तु जब लेखा हमारे चचेरे भाइयोंके साथ पिंडारी हिमनद देखने चली गयीं, तब पापूने खयाल किया कि यह एक बड़ी दयनीय बात होगी यदि हम यह देखते हुए भी कि उदयशंकरका केन्द्र हमारे इतने समीप पड़ता है, हम इस स्थितिसे लाभ न उठावें। संगीतसे उन्हें विशेष अनुराग था, अतः इस बातकी वे कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि उसके सम्बन्ध-में और अधिक ज्ञान प्राप्त करनेका अवसर वे इस तरह उधर ध्यान दिये बिना चुपचाप चूक जाने दें।

जबतक हम उदयशंकरके केन्द्रमें भरती नहीं हो गयीं, रीताने और मैंने, एक गांधीजीको छोड़कर अन्य किसी भी व्यक्तिके पैर नहीं छुए थे। अपनेसे बड़ेके पैर छूनेका अर्थ है उसके प्रति सम्मान और समादर प्रकट करना। भारतके कितने ही हिस्सोंमें बच्चे जब बहुत दिनोंके बाद अपने माता-पितासे मिलते हैं या जब उन्हें छोड़कर अन्यत्र जाने लगते हैं, तब उनके चरण छूते हैं। इसी तरह अन्य शुभ अवसरोंपर भी वे, उनका आशीर्वाद प्राप्त करनेके लिए, पादस्पर्श किया करते हैं। हमने गांधीजीको छोड़कर और किसीके साथ इस परिपाटीका निर्वाह नहीं किया था। इसका एक कारण तो यह था कि हमारे जीवनपर पश्चिमी बातोंका न जाने कितना प्रभाव पड़ा था। दूसरा यह था कि न तो हमारे माता-पिताने और न मामूने कभी सम्मानप्रदर्शनके इस तरीकेकी परवाह की, जब भी किसीने उनके प्रति इसका प्रयोग करना चाहा। मैंने अक्सर देखा था कि जब कोई प्रशंसक झुककर नेहरूजीके चरण छूनेका प्रयत्न करता, तो उनके चेहरेपर परेशानी, अधैर्य और उद्विग्न-ताके चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगते थे। मामू हमेशा इस प्रयासको रोक देते और कह देते थे कि इस तरहका भक्ति-प्रदर्शन मुझे कतई पसन्द नहीं है।

केन्द्रमें सभी विद्यार्थी प्रतिदिन प्रातःकाल जब उदयशंकर की कक्षामें प्रविष्ट होते तब उनके चरण छुवा करते थे। भारतकी प्राचीन परम्पराके अनुसार वे अन्य गुरुओंके भी पैर पड़ा करते थे। जीवनमें पहली

बार हम लोगोंने अपने आपको पूर्णतया भारतीय वातावरणमें पाया जहाँ विदेशी प्रभावकी गन्ध भी नहीं पहुँच पायी थी।

उदयशंकर अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिके नर्तक थे। प्रथम सफलता उन्हें यूरोपमें मिली थी जहाँ पैवलोवाके सहकारी नर्तकके रूपमें उनकी प्रसिद्धि हुई। उन्होंने अपने कुशल साथियोंके साथ ऐसे समयमें यूरोप तथा अमेरिकामें परिभ्रमण किया था जब भारतीय नृत्यकलाके बारेमें बहुत ही कम बातें बाहरवालोंको मालूम थीं। वहाँसे वापस आनेपर उन्होंने अलमोड़ेमें अपना केन्द्र स्थापित किया। मेरा विश्वास है कि यह स्थान उन्होंने इसलिए चुना कि यह "सभ्यता"से काफी अलग-थलग है और इसलिए भी कि यहाँका प्राकृतिक सौन्दर्य ऐसा है जो रामायणकी भव्य कथाओंपर आधारित उनकी रचनाओंके लिए स्वाभाविक पृष्ठभूमिका काम दे सकता है। हर साल सितम्बरमें वे पहाड़ी इलाकेमें राम-रावणके संघर्षका चित्र उपस्थित करनेवाली नृत्यमय रामलीला किया करते थे जिसे देखनेके लिए बहुतसे यात्री उत्तरी भारतके कितने ही स्थानोंसे आया करते थे।

यह केन्द्र भारतमें अपने ढंगका प्रथम नृत्य विद्यालय था, क्योंकि उसका मुख्य उद्देश्य भारतीय नृत्यका कोई बँधा हुआ, निश्चित प्रकार सिखलाना नहीं था। उदयशंकरका विचार भारतीय नृत्यकी परम्परागत पद्धतियोंका आवश्यक तत्त्व मात्र शिक्षणार्थियोंके मनमें जमा देना था और उस तरह नृत्यके एक नये मार्गका उद्विकास करना, जिसमें किसी विशेष प्रविधिके कठोर अनुपालनका बन्धन न हो। उनकी मौलिकता इस बातमें थी कि उन्होंने भारतके लोकनृत्योंके भंडारसे तथा भारतीय जीवनमें भी स्वतंत्रतापूर्वक सामग्री ग्रहण की थी। यही वजह है कि उनका नृत्य भारतके अधिकांश शास्त्रीय नृत्यकी तरह कलाका बहुत अधिक शैलीबद्ध नृत्य न था। वह मानों भारतीय जीवन ही, अपनी सम्पूर्ण भव्य छटा एवं स्वाभाविक सौन्दर्यके साथ, एकत्रीभूतकर संगीतमें ढाल दिया गया था। नृत्य कैसे करना चाहिये, यह सिखलाना उनका लक्ष्य न था, जैसा कि उन्होंने हम लोगोंसे बारबार कहा था। नृत्यकलाका कोई भी चतुर शिक्षक यह काम कर सकता है और नृत्यके महान सिद्धान्तोंका आशय समझानेवाले कितने ही उत्तम विद्या-

लय देश भरमें फैले हुए हैं।

"तुम्हारे भीतर जो नृत्य है, मैं उसे ही बाहर लाना चाहता हूँ," अपना सूत्र समझाते हुए उन्होंने कहा था। उनका दृढ़ विश्वास था कि भारतीय लोग, अपने चारों तरफके जीवनका अवलोकन कर, प्राचीन भारतमें जो बन्धनहीन कला पायी जाती थी, उसका एक अंश अपने कार्यों और गतिविधिमें फिरसे उत्पन्न कर सकते हैं।

इस शिक्षण केन्द्रमें दो प्राचीन प्रकारके नृत्य सिखाये जाते थे— मणिपुरी, आसामका हलका, सुन्दर नृत्य, और कथाकाली, दक्षिण भारतका वीरत्वपूर्ण नृत्य। प्रविधिका थोड़ा-बहुत ज्ञान प्राप्त करनेके लिए प्रत्येक विद्यार्थीको इन दोनोंमेंसे एकका अध्ययन अवश्य करना पड़ता था किन्तु जोर इनपर नहीं था और स्वयं उदयशंकर जो वर्ग चलाते थे, उनमें भी बँधी हुई परिपाटीपर चलनेकी कोई कैद न थी। वे पहाड़ीपर स्थित अपनी एक रंगशालामें लकड़ीके बने फर्शपर पलथी मारकर बैठ जाते थे। हम लोग उनके सामने अर्द्धवृत्त-सा बनाती हुई बैठ जाती थीं और वे हमारे लिए एक शब्दचित्र-सा अंकित करने लगते।

"तुम सब लोग किसान हो जो गाँवके कुएँसे पानी निकालने जा रहे हो किन्तु समय अवर्षण एवं दुष्कालका है और कुएँमें बहुत कम पानी रह गया है। तुम भविष्यके बारेमें सोचते हो जब पानी बिलकुल ही न रहेगा। तुममेंसे कुछ लोग बूढ़े तथा कमजोर हैं अतः चलनेमें भी असमर्थ हैं। कुछ स्त्रियाँ हैं जो गोदमें बच्चे लेकर चल रही हैं और बच्चे रो-रोकर उन्हें परेशान किये हैं। तुम लोग प्रार्थना करते हो कि वर्षा शीघ्र हो जाय जिससे इस यन्त्रणासे तुम्हारा छुटकारा हो सके।"

तब उनके पीछे बैठे बालकगण, उन्होंने अभी-अभी जिस दृश्यका वर्णन किया था, उसके अनुरूप स्वर और लयका ध्यान रखते हुए अपने-अपने बाजोंपर ताल दे उठते। अब हम लोगोंको उठकर खड़ा हो जाना पड़ता और बिना पूर्वाभ्यासके अथवा बिना परस्पर सलाह किये उसी स्थलपर नृत्यकी उपयोजना करनी पड़ती। अवश्य ही हमें सब कुछ अपने आप ही करना पड़ता, क्योंकि परस्पर किसी तरहके संकेत द्वारा कोई बात करनेका समय ही कहाँ मिलता? फिर भी हम सबके कार्योंमें ताल-मेल होना जरूरी था। आरम्भमें कुछ दिनोंतक

तो मुझे बड़ा संकोच-सा, बड़ा ऊटपटाँग सा मालूम होता था जिससे मुझे दुःख भी होता था। तब धीरे-धीरे मैंने देखा कि मेरे अन्य संगी-साथियोंका एक दूसरेकी ओर कोई ध्यान ही न था। उनकी नजर केवल उस तसवीरकी ओर ही थी जिसकी अवतारणा वे सब मिलकर करने जा रहे थे। तब मेरी भी झेंप दूर हो गयी। नृत्यके बाद उदय-शंकर हम सबकी उस सम्मिलित कृतिकी आलोचना करते और हममेंसे प्रत्येकके प्रयत्नका भी पृथक-पृथक विवेचन करते। कभी-कभी वे हम लोगोंसे क्रमशः बिना पूर्व तैयारीके नृत्य आदि करनेको कहते और कुछ समयके बाद यह कठिन परीक्षा देना भी हमारे लिए सम्भव हो गया।

उदयशंकरका विश्वास था कि नाचनेके लिए विशिष्ट पद्धति या प्रविधिके अध्ययनकी उतनी आवश्यकता नहीं है जितनी अपने चारों ओरके संसारके निरीक्षणकी है। उन्हें लगता था कि नाचना कोई ऐसी कला नहीं है जो केवल रंगशाला, रंगमंच या महफिलतक ही सीमित हो। अन्य सब कलाओंकी अपेक्षा वह वास्तविकताके अधिक सन्निकट है, क्योंकि मानव शरीरसे उसका लगाव है। अन्य विद्या-लयोंसे संगीत-प्रविधिमें कुशल जो विद्यार्थी उनके पास आते थे, उनसे वे कहते थे, "जो कुछ आपने सीखा है, उसे भूल जाइये। चीजोंको उसी तरह देखनेका प्रयत्न कीजिए मानो उन्हें आप पहली ही बार देख रहे हो।"

"यदि अपने सिरपर तुम पानीका घड़ा ले जा रहे हो तो तुम शायद इस तरह ठमक-ठमक कर नहीं चल सकते," ऐसा कहकर उन्होंने अपने एक शिष्यको खूब डाँट बतायी। "अगली बार ऐसी औरतको जरा गौरसे देखिये जो सिरपर घड़ा ढो रही हो। देखो कि ऐसा बोझा उठाकर उसे बड़े स्थिर भावसे चलना चाहिये और अपना संतुलन बनाये रखनेके लिए जरा-सा झुक जाना चाहिये"।

शिक्षार्थिनी यह सोचकर कि उसने सुन्दर ढंगका प्रदर्शन किया है, नैराश्यके कारण शिथिल पड़ जायगी। उदयशंकरको अदामें या सुन्दर चेष्टामें कोई दिलचस्पी नहीं है जबतक कि वह वास्तविकतासे उद्भूत न हुई हो। चेष्टाएँ चाहे कितनी ही पूर्ण क्यों न हों, उनका तबतक कोई महत्व नहीं, जबतक कि वास्तविक जीवनसे उनका सम्बन्ध न हो।

याथार्थिक संकेत, मनोभाव, या अभिव्यक्तिके चारो तरफ अगणित अदाओंकी विभिन्नता उत्पन्न की जा सकती है किन्तु नृत्यमें प्रभावकारी संकेतोंके सिवा और भी कुछ रहता है। उसका आन्तरिक आशय तथा सेन्द्रिय पूर्णताकी माँग है कि वह सचाईपर आधारित हो।

केन्द्रमें जिन दो तरहके परम्परागत नृत्योंकी शिक्षा दी जाती है उनमेंसे रीताने तथा मैंने मणिपुरी नृत्य चुना। भारतमें जितने प्रकारके भारतीय नृत्य प्रचलित हैं उनमें यह सबसे सीधा और कम बन्धनों-वाला है। वह किसी कथाका वर्णन नहीं करता जैसा कि कथाकालीमें होता है, उसमें दक्षिण भारतके नृत्य भरत नाट्यम् जैसे कठिन संकेतों-की आवश्यकता नहीं पड़ती और न उत्तरप्रदेशके कथक नृत्य जैसी चपल, एवं जटिल थिरकनका ही अभ्यास करना पड़ता है। उसमें मुखमण्डलकी मांस पेशियोंका कुशल परिचालन भी नहीं करना पड़ता जैसा कि भारतके प्रायः सभी नृत्योंमें करना पड़ता है। उसकी मुख्य शैली हाथ और भुजाके विशेष ढंगके संचालनमें देख पड़ती है, जिसकी मोहकता उसके हलके तथा फुरतीले होने एवं सन्तरण सम्बन्ध सौन्दर्यमें निहित रहती है। इन्हें ही अपने विषयका आधार बना कर विद्यार्थी अपने नृत्योंमें नयी-नयी विभिन्नता ला सकता है।

हमारे मणिपुरी नृत्योंके शिक्षक ७५ वर्षसे अधिक उम्रके एक छर-हरेसे सज्जन थे। उनका चिकना, चमकीला बदन और उज्जल, सजग तथा तिरछी आखें देखकर कोई नहीं कह सकता था कि उनकी उम्र इतनी अधिक होगी। वे केसरिया रंगकी धोती और कुरता पहनते थे और उनका सिर घुटा हुआ था जिससे उनका वेश बौद्ध भिक्षु-सा लगता था। वे जल्दी-जल्दी और हल्के कदम रखते थे, जिनका भार-हीन-सा होना आश्चर्यजनक विशेषता थी। उनके सामने हमें ऐसा लगता था मानों हम अनाड़ी हों और हमारे हाथ ऐसे सुस्त तथा भावोंके असूचक प्रतीत होते थे मानो उनमें जान न रह गयी हो। जब वे ध्वनि उत्पन्न करके हमें निर्देश करते थे, जिनके अनुरूप हम नृत्य चेष्टाएँ करती थीं, तब उनका पुत्र, जो जवान था और अपने पिताकी ही तरह कपड़े पहने हुए था, ढोलक बजाता रहता था जो उसके गलेसे लटकती थी। उधर तो वह दोनों हाथोंसे ढोलकपर कुशलतापूर्वक

थाप देता था और इधर उसके पैर उसकी धुनमें धुन मिलाकर आनन्दका अनुभव करते हुए थिरकने लगते थे, जिससे आकाशमें उड़ते हुए पक्षीकी तरह वह हमेशा हवामें ही संचार करता-सा जान पड़ता था। देवदारु वृक्षोंके बीचमें काष्ठकी बनी हुई रंगशालाके भीतर लगनेवाली क्लासोंसे हमें प्रेम हो गया था, जहाँ मणिपुरी ढोलका निनाद और हमारे गुरुकी कड़ी आवाज हमें मणिपुरी नृत्यमें अनुशासित करती थी।

हमारे गुरु बहुत विद्वान न थे और हिन्दी भी वे कम ही जानते थे किन्तु उनके नर्तकके चपल शरीरमें कविकी कल्पना विद्यमान थी और वे यह बात हमें उस मुसक्यानके जरिये बतला देते थे जिसके साथ वे अपने प्रिय मणिपुरी नृत्यका वर्णन करते थे।

"ये जो हाथ-पाव के संचालन मैं तुम्हें सिखा रहा हूँ" वे हमलोगोंको समझाते हुए कहते, बीच-बीचमें उपयुक्त शब्द कहनेके लिए रुक जाते, "इन्हें फूलकी तरह तुम्हें मानना चाहिए, क्योंकि मणिपुरी नृत्यका पद-संचालन उसीकी तरह छुईमुई सा तथा सुकुमार होता है। यदि आपने एक भी चेष्टा अनियन्त्रित रूपसे की तो इससे फूलकी कोमल पत्तियोंको हानि पहुँच सकती है, इसलिए आपके हाथोंका संचालन बहुत स्थिर भावसे होना चाहिये और आपकी प्रक्रियाएँ सुव्यवस्थित होनी चाहिए। इसके साथ ही उन्हें ठीक समयपर होना चाहिए, अनावश्यक रूपसे पिछड़ना न चाहिए। किन्तु यह भी स्मरण रखिए कि अकेले और पृथक् रहनेपर फूल अधिक समयतक नहीं टिक सकते। यह काम आपका है कि आप उन्हें एक साथ कर दें और उन्हें सुन्दर रूप-शकलकी मालाओंके रूपमें ग्रथित कर दें। इस तरह एक नये नृत्यका जन्म होगा।

केन्द्रमें रहकर हमने नृत्यकला नहीं सीखी किन्तु हमने उसे भारतकी मनोहारिताकी नयी जानकारीके साथ छोड़ा—ऐसी जानकारी जिसका हम दुःखके उन महीनोंमें सहारा ले सकते थे जो हमें बादमें बिताने पड़े।

अध्याय १०

प्रस्थानके पूर्व

नौ अगस्तकी बात है। हम लोग भोजन कर ही रहे थे कि रेडियोपर नौ बजे रातके समाचार सुनाये जाने लगे। रेडिओने स्पष्ट शब्दोंमें घोषणा की कि कांग्रेस कार्यसमितिके सदस्य आज बम्बईमें गिरफ्तार कर लिये गये।

अम्मीने कहा "चलो, शुरूआत तो हो गयी।"

किस चीजकी शुरूआत हो गयी, यह पहलेसे कोई नहीं बता सकता था, क्योंकि इस बारका सत्याग्रह आन्दोलन पहलेके अन्य सब आन्दोलनोंसे भिन्न प्रकारका होने जा रहा था। वस्तुतः वह सत्याग्रह न होकर सरकारकी अन्यायपूर्ण एवं अविवेकपूर्ण कार्यावलिके विरोधका आन्दोलन था। कांग्रेस कार्यसमिति द्वारा अपनी भावी नीतिकी घोषणा किये जानेके कुछ ही घण्टोंके बाद रातमें ही उसके सदस्य (तथा बादमें अन्य प्रमुख कांग्रेसजन भी) चुपचाप गिरफ्तार कर लिये गये थे। अंग्रेजोंसे भारत छोड़नेकी माँग करनेवाला उनका प्रस्ताव दूसरे दिनकी बैठकमें पारित किया जानेवाला था। गिरफ्तार किये गये लोग "क्यू" बन्दी (भारत छोड़ो विषयक बन्दी) माने गये और बिना मुकदमा चलाये ही कारागारमें, कुछ तो तीन वर्षोंतकके लिए निरुद्ध कर दिये गये। इस बारके आन्दोलनमें पहलेके आन्दोलनों-की बहुत कम विशेषताएँ ही देख पड़ती थीं।

नेताओंकी गिरफ्तारी तथा बिना मुकदमा चलाये उन्हें जेलमें बन्द रखनेका विरोध करनेके लिए विद्यार्थियों तथा नागरिकोंने, अन्य नगरोंकी ही तरह इलाहाबादमें भी, शान्तिमय जुलूसों तथा सार्वजनिक सभाओंका संघटन किया और पुलिसने सामूहिक रूपसे गिरफ्तारियाँ कीं। पहली बार यह अवसर आया कि लेखा, रीता और मैं दूरसे तमाशा देखने तथा मनमें सद्भावनापूर्ण ईर्ष्या करनेके बजाय स्वयं इस

कार्यकलापमें हिस्सा ले सकती थीं। हम लोग जुलूसोंमें शामिल हुईं और सभाओंमें भी उपस्थित हुईं।

मम्मी घरमें बैठकर बराबर हम लोगोंकी सुरक्षाके सम्बन्धमें चिन्तित रहतीं, क्योंकि कभी-कभी पुलिस भीड़को तितर-बितर करनेके लिए लाठी प्रहारादिका भी प्रयोग करती थी और एकाध बार गोली भी चला देती थी। नववयस्क लड़के-लड़कियोंकी माताएँ आकर उन्हें खरी-खोटी सुनाया करती थीं क्योंकि वे समझती थीं कि उनके प्रभावमें आकर ही लड़के-लड़कियाँ आन्दोलनमें हिस्सा लेनेको प्रेरित होती थीं।

"आपका असर उसपर न पड़ा होता, तो मेरा लड़का कलकी सभामें न गया होता और न गिरफ्तार हुआ होता" एक क्रुद्ध तथा अत्यन्त क्षुब्ध माताने चिल्लाते हुए कहा।

"हम सभी इस संघर्षमें शामिल हैं और साथ हैं" मम्मीने शान्तिपूर्वक जवाब दिया।

दूसरी स्त्रियोंके बच्चे भी इन सब कारवाइयोंमें हिस्सा ले रहे थे, इसलिए उनके सम्बन्धमें भी वे अपनी जिम्मेदारी समझ रही थीं। उनमेंसे किसीको जब चोट लग जाती या कोई हवालातमें बन्द कर दिया जाता तो उन्हें दोहरी चिन्ता होती थी। और अपनी आँखोंके सामने यह दुःखद स्थिति देखते हुए भी वे हम लोगोंको इसमें सम्मिलित होनेसे मना नहीं कर सकती थीं। यही करनेके लिए तो उन्होंने हमारा इस ढंगसे पालन-पोषण किया था और स्वयं उनके ही उदाहरणसे हम लोगोंने वर्षोंतक जो शिक्षा ग्रहण की थी, उसे वे मिटा नहीं सकती थीं। उनका अदम्य साहस उस समय देखने लायक था जब उन्हें यह समाचार सुनाया गया कि दो जुलूसोंपर गोली चली है जिससे कई आदमी घायल हुए हैं और इन घायलोंमें उनकी एक लड़की भी है। वे तुरन्त एक जुलूसकी स्थिति देखनेके लिए घरसे चल पड़ीं।

"किन्तु माताजी, आप गलत रास्तेसे जा रही हैं। आपकी लड़कियाँ तो दूसरे जुलूसके साथ हैं"—उन्हें समझाते हुए उस व्यक्तिने कहा जो उपर्युक्त समाचार लाया था।

"ये भी तो मेरे बच्चे हैं"—उन्होंने जवाब दिया और चुपचाप अपने रास्तेसे आगे बढ़ गयीं।

घायल लड़कोंको अस्पताल पहुँचाकर वे यह खबर देनेके लिए उनके माता-पिताके पास गयीं, उन्हें तसल्ली दी और काफी रात बीत जानेपर जब वे घर लौटीं, तब कहीं उन्हें यह बात मालूम हुई कि हम सकुशल हैं और गोलीकाण्डमें हमें कोई चोट नहीं लगी।

आनन्दभवन उन दिनों कार्यकलापका नीरव केन्द्र था। मम्मी जानती थीं कि स्वयं उनकी गिरफ्तारी भी आज कलमें ही होनेवाली है इसलिए अपने चले जानेके बादकी स्थितिके लिए वे घरकी व्यवस्था-कर रही थीं। लेखाके भी गिरफ्तार कर लिये जानेकी सम्भावना थी, क्योंकि वे अब १८ वर्षकी हो चुकी थीं और इन्दिरा तथा फीरोज भी निस्सन्देह गिरफ्तार होंगे ही। तब घरमें बच रहती केवल रीता और मैं, हम लोगोंकी देखरेखके लिए एक गवर्नेस (रक्षयित्री) भी नियुक्त करनी थी, क्योंकि तॉते एन्ना अन्यत्र चली गयी थी।

परिवार सम्बन्धी इन व्यवस्थाओंके सिवा उन पुस्तिकाओंके वितरणका भी प्रबन्ध करना था जो कांग्रेस दलका दफ्तर उस समय तक बराबर छापता रहा जबतक उसकी साइक्लोस्टाइल मशीन जब्त नहीं कर ली गयी। अन्य बहुतसे कागजोंको भी ऐसे सुरक्षित स्थानोंमें रख देना था जहाँसे पुलिस उन्हें प्राप्त न कर सके। दो मित्र हमारे साथ ऊपरके कमरेमें छिपकर रहते थे जिनका पता अधिकारियोंको न था। उसमेंसे एकने कुछ महत्त्वके कागज अलग कर देनेके लिए उन्हें पाखानेकी मोहरीसे बहा देनेकी कोशिश की जिसका हानिकारक परिणाम हुआ।

मम्मीने आजिज आकर सिर पीट लिया और कहा—"बलिहारी है, तुम्हें भी इसी समय ऐसी गलती करनी थी। मानो परेशानी बढ़ानेके लिए और भी बहुत सी चीजें पहलेसे मौजूद न रही हों!"

बहुमूल्य वस्तुओंको, सुरक्षाकी दृष्टिसे, मित्रोंके पास पहुँचाना था, क्योंकि तलाशी लेते समय पुलिस जो चीज चाहती उसे ही उठा लेती थी। इलाहाबादमें फौजी कानून लागू था और करफ्यू भी लगा था, इसलिए ६ बजे शामके बाद हम लोगोंके लिए घरसे बाहर निकलना सम्भव न था।

फिर भी, इन सब प्रतिरोधक उपायोंके बाबजूद एक बार फिर हवामें

"इनकिलाब जिन्दाबाद"के नारे सुनाई पड़ने लगे जैसे कि पिछले बीस वर्षोंसे बीच-बीचमें सुन पड़ते थे। एक बार फिर छोटे-छोटे बालक, जो कांग्रेसका तिरंगा झण्डा हाथमें लेकर चलते थे, पकड़कर पुलिसके थानेमें ले जाये जाने लगे और उनपर कोड़ोंकी मार पड़ने लगी। फिर भी लड़के मानते न थे। अपने छोटे-छोटे हाथोंमें वे कागजके बने झंडे ग्रहण कर लेते और ऊँचीसे ऊँची आवाजमें नारे लगाया करते, क्योंकि उन्हें निर्भीक होकर डटे रहनेकी शिक्षा ही दी गयी थी। आनन्दभवनके बाहरकी इसी सड़कपर, जिसपर लड़के नारे लगा रहे थे, कभी उनके पिताओंको, यदि कोई गोरा साहब वहाँसे जाता होता तो, पेटके बल रेंगना पड़ता था। मम्मीकी आँखें अभिमानसे चमक उठती थीं, जब वे अन्य सत्याग्रह आन्दोलनोंमें हुई घटनाओंका वर्णन किया करती थीं।

"क्या तुम जानती हो कि यहाँके अधिकारी उस समय क्या कहा करते थे?" वे कहते थे, "ये शैतान नेहरू पिता-पुत्र। यदि हम उनकी हिम्मत तोड़ दें तो बाकी बचे लोगोंसे समझ लेना आसान हो जायगा।"

यद्यपि मामू भारतके किसी स्थानमें कारागृहके भीतर बन्द किये जा चुके थे और परिवारके अन्य सदस्य भी शीघ्र ही जेल भेज दिये गये, फिर भी आनन्दभवन पहलेकी ही तरह आन्दोलनका सुदृढ़ प्रतीक बना रहा, जहाँ ढिठाईके साथ तिरंगा फहराता था और जो पराजयको निकट नहीं फटकने देता था।

जब मम्मी, इन्दिरा, फीरोज और लेखा, तेजीसे एकके बाद एक गिरफ्तार कर लिये गये, तब रीता और मैं उन लोगोंसे बिलकुल असम्बद्ध एवं परिच्छिन्न सी हो गयीं। पहलेके कारावासोंमें राजनीतिक बन्दियों-को मित्रों-सम्बन्धियोंसे भेंट कर सकनेकी अनुमति दी जाती थी। उन्हें एक सीमित संख्यामें पुस्तकें भी मिलती थीं और कारागृहके अधिकारी चाहते तो नियंत्रित पत्र-व्यवहारकी भी अनुमति दे सकते थे। इस बार इन सब सुविधाओंकी मनाही कर दी गयी। हमें न तो अपने माता-पितासे भेंट-मुलाकात करनेकी अनुमति मिलती थी और न उन्हें कोई पत्र भेजनेकी। बन्दियों तथा बाहरी दुनियाके बीच सम्बन्ध तथा सम्पर्क बिलकुल बन्द कर दिया गया और उन्हें इसका कुछ भी

आभास नहीं मिलता था कि युद्धजर्जर संसारमें जेलकी ऊँची दीवारों-के बाहर क्या-क्या हो रहा था।

१९४३के शुरूमें गांधीजीने एक उपवास शुरू किया जो उनके लिए प्राणघातक हो सकता था, क्योंकि वे बिलकुल कमजोर हो गये थे। जब कि चिन्ता और दुःखमें डूबकर सारा राष्ट्र उनके स्वास्थ्य-लाभकी प्रार्थना करता था, रीता और मैं मम्मीतक गांधीजीके अनशन सम्बन्धी समाचार पहुँचानेका उपाय ढूँढ़नेके लिए बेतहाशा प्रयत्न कर रही थीं। जेलका अधीक्षक (सुपरिण्टेण्डेण्ट) भला आदमी था, जिससे ब्रिटिश अधिकारी इस बातकी कैफियत तलब कर सकते थे कि वह क्यों राज-नीतिक बन्दियोंके साथ नरमीका बर्ताव करता था। हमने उससे रोज-मर्राके कामकी कुछ मामूली चीजें, साबुन, दंतमंजन आदि, मम्मीके पास भेज सकनेकी अनुमति प्राप्त कर ली। मंजनकी शीशीके चारो तरफ हमने समाचारपत्रोंके वे अंश काटकर लपेट दिये जिनमें गांधी जीके अनशनकी खबरें छपी थीं। इस प्रकार उन्हें अनशन सम्बन्धी वास्तविक समाचार ज्ञात हो गये, यद्यपि जेलकी गप्पोंसे, जो रोकी नहीं जा सकतीं, उन्हें महात्माजीके अनशनकी खबर पहले ही ज्ञात हो गयी थी।

उतने बड़े खाली मकानमें, मैं रीता तथा शिक्षयित्री (गवर्नेस)के साथ अकेली ही थी। मैंने आसन्न परीक्षाके लिए अपनी पढ़ाईपर ध्यान केंद्रित करनेकी चेष्टा की। इतिहास पढ़ना बेमतलब था, क्योंकि हम-लोगोंके जीवनमें प्रतिदिन ही रक्तको उत्तेजित करनेवाले ढंगसे इतिहास-की सृष्टि हो रही थी। समय इतनी मन्दगतिसे बीत रहा था कि मुझे बड़ी परेशानी हो रही थी। मैं उतावली हो रही थी कि कब मेरा इम्तहान हो जाय और मैं उससे छुट्टी पा जाऊँ।

दो महीने बाद, लेखा और मैं अमेरिकाके लिए चल पड़ीं।

अध्याय ११

अमेरिकाकी पहली झलक

जीवनमें यह एक अनोखी बात देख पड़ती है कि मनुष्य चाहे किसी भी स्थानपर चला जाय, उसे ऐसे आदमी मिल ही जाते हैं जो हमेशा उसकी सहायता करनेको तैयार हो जाते हैं, जिसका कारण उनके व्यक्तिगत सौजन्यके सिवा और कुछ नहीं कहा जा सकता। आस्ट्रेलिया निवासी श्री किनलॉन भी मुझे ऐसे ही परोपकारी सज्जन प्रतीत हुए। जहाजमें ये हमारे सहयात्री थे और हमारी ही तरह पहली बार अमेरिका जा रहे थे। जहाजसे उतरकर हम लोग अपने सामानके साथ तटपर खड़ी हुई थीं और समझ नहीं पा रहीं थीं कि अब क्या करना चाहिये या कहाँ जाना चाहिये। हमें इस स्थितिमें देखकर वे तुरन्त हमारी सहायताके लिए पहुँच गये। हमने अपनी बेबसीकी हालत उन्हें बतला दी और वे उदारतापूर्वक हमारी मदद करनेको तैयार हो गये।

"होटलमें मैं अपने साथ-साथ तुम लोगोंके लिए भी स्थान सुरक्षित करनेका प्रयत्न करूँगा"—उन्होंने कहा—"और उसके बाद हम लोग देखेंगे कि तुम तीनोंको न्यूयार्क पहुँचानेके लिए क्या व्यवस्था की जा सकती है।

हम लोग वहीं ठहरी रहीं और वे सज्जन होटलोंके लिए टेलीफोन करने चले गये। जहाजके कुछ यात्री झुण्ड बना-बनाकर इधर-उधर खड़े थे। एकाएक किसी एक झुण्डमेंसे चिम्बोरैजो निकल पड़ी और हमलोगोंसे बिदा लेनेके लिए हमारे पास आयी।

"हम इसे ईश्वरका ही देश कहते हैं", उसने दुखित भावसे कहा, "किन्तु इसमें बहुतसे लोग ऐसे हैं जिन्होंने ईश्वरको भुला दिया है। मुझे आशा है कि तुम लोग हमारी अच्छी बातें ही ग्रहण करोगी।"

हमने उसे भरोसा दिलाया कि हम केवल अच्छी चीजें ही लेनेका प्रयत्न करेंगी।

श्री किनलॉन जब लौटे तो वे क्रुद्ध तथा क्षुब्ध दिखाई दे रहे थे। "मुझे सोलह होटलोंमें टेलीफोन करना पड़ा, तब कहीं जाकर कठिनाईसे दो कमरे मिल सके", उन्होंने कहा—"कई होटलोंमें केवल एक ही कमरा प्राप्त था किन्तु प्रत्येक बार जब मैंने एक कमरा और देनेकी बात कही, तो बराबर यही उत्तर मिला—महाशय जी, लड़ाई चल रही है, क्या यह बात आपको नहीं मालूम ? एक कमरा आपको मिल जाय तो इसे ही अपना सौभाग्य समझिये ! मेरे मनमें आया कि मैं नाहक परेशान करनेवाले इन लोगोंको जवाब दे दूँ कि युद्ध जारी है, यह जाननेके लिए हमें इतनी दूर आनेकी आवश्यकता न थी। युद्धके कारण ही पिछले छः सप्ताहोंसे हमें प्रायः प्रति दिन जहाज छोड़ देना पड़ता रहा है !"

जाब्तेकी काररवाई पूरी होते-होते शाम हो गयी। नावमें बैठकर हम लोग लास एंगिल्स पहुँच गये और वहाँसे टैक्सीमें बैठकर होटल पहुँचे। जब हमारी टैक्सी होटलके सामने रुकी तब हमने अपने आपको शहरके एक चहल-पहलवाले हिस्सेमें पाया। निकट ही अधूरे कपड़े पहने हुए लाल सिरवाले आदमीके विविध रंगोंके विज्ञापन पत्रकोंमें उस नये आकर्षक चित्रकी सूचना थी जो पड़ोसके सिनेमा-घरमें आनेवाला था—"जिसमें बर्मा रोडसे भी अधिक मोड़ विद्यमान हैं।" श्री किनलॉनने आश्चर्यके साथ एक नजर उस आदमीके ऊपर और चित्रके शीर्षकपर डाली और फिर हम लोगोंको होटलके उस छोटेसे कमरेमें किसी तरह ठूँस-ठाँस दिया।

"सोलह बार तो टेलीफोन करना पड़ा," उन्होंने दुःख प्रकट करते हुए कहा, "फिर भी यही वह कमरा है जो हमें प्राप्त हो सका ! मैंने खयाल भी नहीं किया था कि मैं तुम दोनों लड़कियोंको सीधे ऐसे तमाशेकी जगह ले जा रहा हूँ !"

वे बहुत ही उदास देख पड़ते थे। उनकी परेशानी देखकर हमें कुछ हँसी भी आयी जिसे हमने दबा दिया और उनसे निवेदन किया कि आप मनमें ग्लानि न करें। फिर भी वे बराबर दुःखी देख पड़ते

रहे और उस घटनाके लिए अपने आपको व्यक्तिगत रूपसे जिम्मेदार समझते रहे।

हम लोग अपने कमरेमें चली गयीं, जहाँ श्री किलॉनने न्यूयार्कमें श्रीमती फ्रांसेस गुन्थरसे टेलीफोनपर बातचीत करा देनेमें हमारी सहायता की। अब तय यह हुआ कि हम लोग पूरब जानेके पहले एक सप्ताह लास एंगिल्समें बितावें। जब श्री किनलॉन हमारे पाससे उठकर चले गये, हम लोगोंने अपने जूते उतारकर रख दिये और आरामसे लेटनेका उपक्रम कर ही रही थीं कि दरवाजेपर दस्तक हुई। जो आदमी भीतर प्रविष्ट हुआ, उसने अपना नाम श्री स्टोन बतलाया और कहा कि मैं होटलका गुप्तचर हूँ।

"क्या तुम दोनों लड़कियाँ बिलकुल अकेली यहाँ ठहरी हुई हो?" उसने आश्चर्यचकित होते हुए पूछा।

जब हम लोगोंने कह दिया कि हाँ, बात ऐसी ही है तो उनकी चिन्ता और भी बढ़ गयी। उन्होंने तुरन्त हमें, होटलमें रहनेकी शेष अवधिपर्यन्त, अपनी देखरेखमें ले लिया। बादके सप्ताहोंमें उन्होंने खुद अपनी कारमें बैठाकर हम लोगोंको सारे शहरमें घुमाया और बड़े गर्वके साथ हमें वहाँके दर्शनीय स्थान दिखलाये। लास एंगिल्स, जिसमें चौड़ी-चौड़ी सड़कें, बढ़िया दूकानें तथा उपाहारगृह और चित्रपट तैयार करनेवालोंकी चित्ताकर्षक बस्ती है, उनके लिए सबसे अधिक मनोरम नगर था जिसकी कल्पना करना सम्भव हो। उसे छोड़कर वे कभी बाहर नहीं गये थे और न उनकी इच्छा ही उसे छोड़कर जानेकी होती थी। "मैं किसलिए बाहर जाना चाहूँ, जब कि जो कुछ मैं चाहता हूँ, वह मुझे यहाँ ही प्राप्त है?" उन्होंने सन्तोषका भाव प्रकट करते हुए कहा। वे उसके कोने-कोनेसे परिचित थे मानो वह एक छोटा-सा गाँव हो और हमें उनसे अधिक जानकारी रखनेवाला या अधिक उत्साही पथप्रदर्शक मिल नहीं सकता था।

हमारे लिए लास एंगिल्स पूरी लम्बाईतक हाथ-पाव फैलाकर लेटे हुए दैत्यके समान था। उसकी तड़क-भड़क और चमक-दमक वैसी ही थी जैसी नयी पेनी की होती है किन्तु वह हमें कुछ अच्छी नहीं लगी, बल्कि उसके कारण हमें भारतीय जीवनकी उस शान्त और आरामकी

स्थिति याद आने लगी जिसकी हमें जानकारी थी। हमने कितने ही प्रसिद्ध स्थानोंका दर्शन किया—सुन्दर ऑलवेरा सड़कसे लेकर, जो शहरकी सबसे पुरानी सड़क है, रोमनोफ़के विख्यात उपाहारगृहतक जहाँ हालीवुडके सितारे आया करते हैं। उस सबमें आश्चर्यचकित कर देनेवाला नयापन था और अक्सर प्रभावित करनेकी क्षमता भी किन्तु हम उस तरफ आकर्षित नहीं हो सकीं।

हमारा होटल शहरके ऐसे हिस्सेमें था जहाँ विशेप रूपसे शोरगुल होता रहता था इसलिए वहाँ मुश्किलसे ही नींद आ पाती थी। बहुत रात बीतेतक चमकीली रोशनी होती रहती थी, विज्ञापन पंक्तियोंके अक्षर विविध रंगोंकी रोशनीके साथ जलते-बुझते रहते थे, कोलाहल-पूर्ण नृत्यगानका संगीत सुनाई देता था और इधरसे उधर झपटकर जानेवाले दमकलोंका घंटा बजता रहता था। हमने निश्चय किया कि यह भी उन स्थानोंमेंसे एक होगा जहाँ लोग ईश्वरको भूल गये है, क्योंकि इतने शोरगुलके होते हुए ईश्वरके बारेमें, या किसी अन्य वस्तुके बारेमें सोचना असम्भव है। चिम्बोरैज यह जानकर काँप उठती कि हम लोग ऐसे स्थानमें गयी थीं।

"लो, अब फिर कहीं आग लगी" लेखा भुनभुना उठी, जब उस रातमें तीसरी बार हमने दमकलको बेतहाशा भागते समय "टनन टनन" की आवाज करते सुना। "ऐसा लगता है कि मानो सारा शहर ही भस्म हुआ जा रहा है।"

"मैं नहीं समझती कि ये लोग कभी सो पाते होंगे," मैंने लम्बी साँस लेते हुए कहा जब मेरी नजर चौथी मंजिलपरकी अपनी खिड़की-के नीचे तेज रोशनीसे जगमग करते हुए एक दृश्यपर पड़ी—हम लोगोंको बतलाया गया था कि लास एंगिल्सके विद्युद्दीपकोंकी रोशनी युद्धकालीन नियमोंके कारण कुछ मन्द कर दी गयी थी। सामान्य समयमें क्या स्थिति रही होगी, इसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकती थीं।

जब श्री स्टोन अधिक कार्यव्यस्त रहनेके कारण हम लोगोंको बाहर ले जानेमें असमर्थ होते थे तो हम लोग अपने आप ही घूमने निकल पड़ती थीं। साड़ी पहने देखकर लोग हमारी ओर और अधिक ध्यान

देने लगते थे जिससे हमें परेशानी होती थी। रास्ता चलनेवाले हमारे कपड़ोंपर टीका-टिप्पणी करनेके लिए खड़े हो जाते थे और हमसे पूछने लगते थे कि हम कहाँसे आयी हैं। जब हम उन्हें बतला देती थीं तो वे हैरानसे होकर सिर हिला देते थे। "इंडियन"के नामसे वे केवल उन लोगोंको ही जानते थे जो हालीवुडके पाश्चात्योंके रँगे चेहरेवाले, पंख लगाये हुए जंगलीसे प्रतीत होते थे और उस तरहकी वेशभूषा, परिचित चिह्नादि हमारे शरीरपर थे नहीं।

हमारा उत्तर सुनकर जो थोड़ी सी समझदारी प्रकट करने वाली प्रतिक्रिया हुई, वह एक बातूनी लड़कीपर हुई जो अपने युवक मित्रके साथ थी। हमने जब बतलाया कि हम "इण्डियन्स" (भारतीय) हैं तो युवक मित्र भौंचक्का सा रह गया किन्तु लड़कीने अपने उक्त साथीकी ओर तिरस्कारपूर्वक देखते हुए कहा था "अरे ? भोंदूराम, तुम्हें इतना भी नहीं मालूम कि ये लोग उस देशकी हैं जो मिस्रके पास है ?" लेखा और मैं आश्चर्यचकित होकर एक दूसरेका मुँह देखती रह गयीं। पाँच हजार वर्षोंसे भी अधिक पुरानी सभ्यता और संस्कृति केवल इतना कहकर ही समाप्त कर दी गयी—"मिस्रके पासका देश"। इस प्रकार अपनी भूलका दण्ड पाकर हम सम्हल गयीं और फिर हम आगे बढ़ गयीं।

"बेहतर हो कि हम लोग अपने आपको इस विचारके आदी बना लें," लेखाने कहा, जो हमेशा व्यावहारिक दृष्टिसे काम करती हैं— "यहाँ हमारे सिवा और कोई भी नहीं है जिसने कभी भारतका नाम सुना हो।"

"किन्तु फिर किसीने मिस्रका ही नाम क्यों सुना ?" मैंने विरोधका भाव प्रकट करते हुए कहा।

लेखाने वेदनाभरी दृष्टिसे देखते हुए जवाब दिया, "कुछ वर्ष पहले हॉलीवुडने क्लिओपैट्राके सम्बन्धमें एक चित्रपट तैयार किया था और उसमें एक दो बार मिस्रका जिक्र लाना पड़ा। उसके बिना काम नहीं चल सकता। यहाँके लोगोंने चीनका नाम भी सुना है, क्योंकि यहाँ चीनवालोंकी कपड़े धोनेकी दूकानें हैं।"

दूकानें बहुत सुन्दर-सुन्दर वस्तुओंसे भरी हुई थीं जैसी हमने

पहले कभी नहीं देखी थीं। बिक्रीके कामपर नियुक्त लड़कियाँ फैशन-परस्त तथा बहुत बनी-ठनी थीं और कितनी ही सुनहले बालों-वाली थीं। यहाँ वह स्वस्थ एवं स्वच्छ, परिष्कृत मुखच्छवि नामको भी न थी जो हमें बादमें अमेरिकाके अन्य भागोंमें देख पड़ी। श्री स्टोन-ने हमें बतलाया था कि दूकानों तथा उपाहारगृहोंमें काम करनेवाली अधिकतर लड़कियाँ इस आशासे वहाँ रहती थों कि कभी हॉलीवुड-का कोई विशेपज्ञ उनकी योग्यता ताड़ लेगा तो उन्हें तारिका बननेका अवसर मिल जायगा, जिस मनोरम सम्भावनाके लिए वे हमेशा प्रस्तुत रहती थीं।

जब मैं शृंगारकी वस्तुएँ बेचनेवाली एक दूकानपर खड़ी थी, तो मेरी ओर जरा-सा झुककर सौदा बेचनेवाली लड़कीने चुपकेसे पूछा "कहो, बहिन, क्या ये सुन्दर बरौनियाँ तुम्हारी ही हैं?"

मैं तो भौंचक्की सी रह गयी, जवाब क्या देती? आखिर वह क्या समझती थी कि वे किसी दूसरी की थीं?

मेरी भाव-भंगीपर वह हँस पड़ी। "तुम भाग्यशालिनी हो। हममें-से कुछको अपनी बरौनियाँ घुँघराली बनानी पड़ती हैं या फिर बनावटी लगानी पड़ती हैं।" उसका व्यवहार मित्रतापूर्ण तथा आपसी-सा था, जैसा कि और लोगोंका भी था जिनसे हम लोग मिली थीं, और वह हमारे साथ बातचीत करनेको उत्सुक थी। जब हमने उसे बतलाया कि हम विद्याध्ययनके लिए अमेरिका आयी हैं तो वह बोली "मैं शर्त लगाकर कहती हूँ, तुम यहाँसे अपने घर वापस जाना पसन्द न करोगी। तुम्हें यहाँ रहना ही बहुत अच्छा मालूम होगा।" हमने बहुत कोशिश की किन्तु उसे इस बातका विश्वास नहीं दिला सकीं कि यद्यपि यहाँ रहनेमें हमें बड़ा आनन्द आता है, फिर भी इसके बावजूद हम घर जाना ही चाहेंगी। घर आखिर घर ही है। वह समझ नहीं सकती थी कि क्यों कोई आदमी संयुक्तराज्य अमेरिका छोड़नेकी इच्छा करेगा।

"क्या भारतके लोगोंके पास मोटर गाड़ियाँ, रेडियो तथा वे सब चीजें हैं जो हम लोगोंके पास हैं?" उसने पूछा।

"नहीं, बहुत ही कम लोगोंके पास ये चीजें हैं," हमने स्वीकार किया।

"देखो कहा था न मैंने !" उसने विजयोल्लासके साथ कहा। उसमें ऐसी सरलता थी जो डबिया देनेवाली थी और मनोमुग्धकारी भी। वह अपनी जगहपर पूर्ण रूपसे सुखी थी और उसे अपने छोटेसे दायरेके बाहर किसी चीजसे भी मतलब न था।

बहुत-सी बातें जो हम देखती थीं, हमें चक्करमें डाल देनेवाली होती थीं। यह देखकर आश्चर्य होता था कि किस तरह मल्लाह और उनकी मनपसन्द लड़कियाँ एक दूसरेकी कमरमें हाथ डालकर सड़कोंपर टहला करती थीं। इन लोगोंके सम्बन्धमें कुछ ऐसी अनियमित-सी बातें थीं जो हमें बिलकुल अनोखी-सी प्रतीत होती थीं। चमचम करते हुए दीपकोंकी उस देदीप्यमान नगरीमें, जहाँ तेज दौड़नेवाली मोटर-गाड़ियाँ और बने-ठने लोग देख पड़ते थे, हमें बड़ा अजीब-सा और अनकुस-सा मालूम होता था। वह ऐसी बात थी मानो कोई अनेक वर्णोवाली फिल्म बड़ी तेजीसे हमारी आखोंके सामने प्रदर्शित कर दी गयी हो, जिसके दृश्यों तथा ध्वनियोंका एक धुँधला-सा, मिला-जुला-सा संस्कार ही हमारे ऊपर पड़ सका हो। श्री स्टोनने अपने देशबन्धुओंके तौर-तरीकोंका सही मतलव हम लोगोंको समझानेकी चेष्टा की।

"बहुत-सी चीजें आजकल इसलिए होती हैं कि युद्ध चल रहा है। युद्धकालमें मनुष्य कुछ दूसरे ही तरहके हो जाते हैं। जो भी हो, यह पूर्ण अमेरिका नहीं है—उसका केवल एक छोटा-सा हिस्सा है। तुम्हें तबतक ठहरना चाहिये जबतक तुम उसका और भाग नहीं देख लेतीं और तब तुम इस चीजका निर्णय करना कि अमेरिका तुम्हें पसन्द आया कि नहीं।"

सप्ताहके अन्तमें जब हम रेलगाड़ीमें बैठकर वहाँसे प्रस्थान करने लगीं तो वे हमें पहुँचाने स्टेशनतक आये थे। चलते समय उन्होंने स्मरण दिलाया कि सकुशल पहुँच जानेपर हम इसकी सूचना उन्हें अवश्य दें।

अध्याय १२

नेहरूजीकी भानजियाँ

जब मैं दस वर्षकी छोटी लड़की थी, मामूने एक भाषण किया जो मुझे इतना अच्छा लगा कि उसे मैंने अपनी उस नोटबुकमें उतार लिया जो मैंने अच्छे प्रतीत होनेवाले अवतरणोंके लिए बनायी थी। मैंने उसे रट डाला था। मैं उसे कभी भूली नहीं और जब हम लोग जुलाईके आरम्भमे न्यूयार्क पहुँचीं तो उसके एक हिस्सेकी ओर मेरा ध्यान गया :

> "इस लम्बी चौड़ी दुनियामें जहाँ भी कोई भारतीय जाता है, वहाँ उसके साथ भारतका भी एक टुकड़ा जाता है और उसे यह बात भुला नहीं देनी चाहिये, न इसकी उपेक्षा करनी चाहिये। कुछ अंशोंतक यह उसके अधिकारमें है कि वह देशकी ख्याति बढ़ावे या उसे बदनाम कर दे, उसे सम्मान दिला दे या अपमानका पात्र बना दे·····"

मेरी नोटबुकका तीन-चौथाई हिस्सा मामूकी पुस्तकों या उनके भाषणोंसे लिये गये अवतरणोंसे भरा हुआ था, अतः उसमें यदि यह अंश भी जोड़ दिया गया तो कोई गैर मामूली बात नहीं हुई। जब मैं और बड़ी हुई तो हाथके लिखे इस संग्रहके स्थानपर एक और बड़ा चयन मैंने किया जिसमें प्रसिद्ध रचनाओंसे विभिन्न प्रकारके चुने हुए अंश रखे गये किन्तु फिर भी मामूके अवतरणोंसे अब भी कापीका काफी हिस्सा घिरा हुआ था। इसके सिवा जब हम लोग छोटी-छोटी लड़कियाँ थीं, तब वे शोरगुल करते हुए हमारे साथ खेला करते थे और हम लोग बिना प्रतिरोधके उन्हें हमेशा अपना अगुआ मान लेती थीं और उनकी तनिक भी आलोचना हम बरदाश्त नहीं कर सकती थीं। पापू मुझे चिढ़ानेके लिए उनके खिलाफ कुछ न कुछ कह दिया करते थे, तब मुझे अक्सर ही जोरोंके साथ मामूका समर्थन करना पड़ता था।

प्रत्येक बार जब मामू हमारे यहाँ आते थे तो हमारे लिए नये खेल या नये कार्यकलापोंका आयोजन करते थे। कभी-कभी हम लोग एक जुलूस बनाते, जिसके आगे-आगे, उम्रमें सबसे छोटी होनेके कारण, रीता चलती और उसके पीछे, अपनी उम्रके अनुसार, लेखा, मामू तथा मैं चलती थी। कांग्रेसके झंडे हाथमें लिये हुए तथा ऊँचे स्वरमें राष्ट्रीय गीत गाते हुए हम लोग मकानके चारो तरफ फेरी लगाते थे। मम्मी हम लोगोंको भोजनके लिए, दोपहरमें थोड़ी देर सो जानेके लिए या घरका कोई काम करनेके लिए बुलातीं पर सब बेकार होता। यदि शोरगुलके बावजूद हमें उनकी आवाज सुनाई भी दे जाती तो भी हम उधर ध्यान न देतीं। जबतक मामू संकेत न करते, हम लोग वहाँसे हट-बढ़ नहीं सकती थीं।

अक्सर हम चारो षड्यंत्रकारी बैठकखानेकी शिष्टता भंग कर देते थे और उस समय जब मेहमान मौजूद रहते थे।

"अब हमलोग सिरके बल खड़े होंगे," मामू जोरसे कह उठते और एक-एक करके हमें सिरके बल उलट देते।

हम लोगोंको अपने आपपर बेहद खुशी होती और इसपर भी कि हम एक सनसनी पैदा कर देती हैं, जब कि मम्मी मामूकी तरफ देखकर उनसे इसे बन्द करनेका नीरव आग्रह करतीं। लेकिन उन्हें जबरन् चुप रह जाना पड़ता था। क्योंकि यदि वे एक शब्द भी मुँहसे निकालतीं तो उन्हें डर लगता कि वे कहीं उन्हें भी सिरके बल खड़े होनेको न कह दें। जब वे वहाँ रहते, बड़ोंकी अधिकार-व्यवस्था और अनुशासन चल नहीं सकता था और हम लोग अपनी हल्ला-गुल्लावाली अलग दुनियामें रहकर मनमानी घरजानी करने लगती थीं।

एक रातमें जब पानी बरस रहा था, भोजन कर चुकनेके बाद मामू हम लोगोंको अपने साथ पुस्तकालयमें ले गये और हम लोगोंने उनके हैरो स्कूलके गीतोंकी बड़ी-सी पोथी जिसपर खूब धूल जमी हुई थी, ढूँढ़ निकाली। हम लोगोंने एक साथ मिलकर ये गीत गाये 'जैरी, यूडफर एण्ड डंस' तथा 'व्हेन ग्रैंड पापा'ज ग्रैंड पापा वाज़ इन दि लोवर लोवर फर्स्ट।' पुस्तकालयमें उनके विद्यालय कालके कई स्मारक थे, क्योंकि वहाँ पर उनके दो बड़े चित्र लगे थे जो उस समय लिये गये थे

जब वे हैरो स्कूलमें पढ़ते थे। इनमेंसे एकमें वे हैरो राइफिल कोरकी चुस्त पोशाक पहने हुए १४ वर्षके गम्भीर चेहरेवाले बालकके रूपमें दिखलाये गये थे।

एक बार आनन्दभवनकी सीढ़ियोंसे उतरते हुए मेरे पाँवका टखना मुड़ गया। एक हाथमें कपड़ेकी पट्टी और दूसरेमें मलहमकी डिबिया लिये हुए मम्मी बेबसीकी हालतमें यहाँसे वहाँ दौड़ रही थीं कि इतनेमें मामू वहाँ पहुँच गये।

"आप क्या कर रही हैं ?" उन्होंने रुखाईसे पूछा।

"अरे भाई, इस लड़कीके टखनेमें मोच आ गयी है, इसलिए इसका कुछ उपचार शीघ्र करना चाहिये," मम्मीने जवाब दिया।

मामूने उनकी तरफ आश्चर्यसे देखा और मुझे अपने पीछे आनेका आदेश दिया। मैं लँगड़ाती हुई उनके पीछे-पीछे चली और वे सीढ़ियों-से ऊपर चढ़कर अपने गुसलखानेमें पहुँचे। वहाँ दीवारके खानोंमें बोतलों तथा डब्बोंका काफी बड़ा संग्रह रखा हुआ था। उनमेंसे बहुत-सी चीजें ऐसी थीं जो स्वयं उत्पादकों द्वारा उनके पास भेजी गयी थीं और वे वहाँ तबतक इकट्ठी होती गयीं जबतक नयी चीजोंको जगह देनेके लिए उन्हें हटा नहीं देना पड़ा। उन्होंने उनपर सावधानीसे एक नजर डाली और एक भव्य-सी देख पड़नेवाली शीशी निकाल ली जिसपर लाल तथा काले रंगका लेबिल लगा था और एक तरफसे दूसरी तरफतक अंग्रेजीके ये तीन अक्षर लिखे हुए थे—पी० के० एल०।

"इसके बारेमें तुम्हारी क्या राय है ?" उन्होंने शीशी मुझे दिखलाते हुए सफलताकी खुशीमें पूछा।

"इन अक्षरोंका क्या मतलब होता है ?" मैंने उसके सुन्दर रंगोंसे प्रभावित होकर पूछा।

मामूने लेबिलपरसे पढ़कर सुनाया "पेन किलिंग लिनिमेण्ट (वेदना-नाशक लेप), प्रत्येक बूंद दर्दको दूर करती है।"

थोड़ी-सी दवा उन्होंने मेरे टखनोंमें लगा दी और विशेषज्ञों जैसा बन्धन बाँध दिया। मैं दर्दके बारेमें बिलकुल भूल गयी और बड़ी खुशीसे फुदकती हुई सुन्दर ढंगसे पट्टी बँधा हुआ अपना पाँव रीताको दिखलानेके लिए नीचे पहुँची।

हम लोगोंसे मामू प्रत्येक कार्यमें जिस ऊँचे स्तरकी आशा किया करते थे, उसतक पहुँचनेकी हम बराबर कोशिश किया करती थीं। मम्मी तथा पापू आश्चर्यजनक ढंगसे अच्छे माता-पिता थे परन्तु मामू अपने ढंगके बिलकुल निराले ही व्यक्ति थे और हम लोग उन्हें वैसी ही श्रद्धासे देखती थीं, जैसीसे कभी किसीको देख सकती थीं। जिस उच्च स्तरकी आशा वे करते थे वह मुझमें फिर आ गया और जब हम लोग न्यूयार्क पहुँचीं तब मुझे वह प्रिय भाषण स्मरण हो आया।

यद्यपि अपने नये वातावरणकी चहल-पहलमें हमारा मन व्यस्त था और न्यूयार्ककी विशाल नगरी देखकर हम लोग स्तब्ध-सी, भय-भीत-सी हो रही थीं, फिर भी हमें घरकी याद बराबर सता रही थी। प्रत्येक खुशीके अवसरपर कारागृहमें पड़े हुए पापू और मम्मीकी स्मृति रूपी सतत छाया एक सिरेसे दूसरे सिरेतक विद्यमान रहती थी। (हम लोगोंके अमेरिका पहुँचनेके कुछ ही दिनों बाद मम्मी जेलसे मुक्त कर दी गयी थीं)। हम लोगोंने अपने अवसरोंसे अधिकसे अधिक लाभ उठानेका तथा भारतके "सच्चे एवं जाज्वल्यमान टुकड़े" बननेका, जैसा कि मामूजी हमें कहा करते थे, पक्का निश्चय कर लिया था।

न्यूयार्कके उन प्रारम्भके कतिपय सप्ताहोंमें ऐसे-ऐसे लोगोंने हमारे प्रति दयाभाव प्रदर्शित किया जिनसे हमारी कभी भेंट नहीं हुई थी। कुछ ऐसे भी थे जिनका नाम तो हमने सुना था किन्तु जिनके सम्बन्ध-में हमने कभी स्वप्नमें भी ख्याल नहीं किया था कि कभी उनसे मिलने-का सौभाग्य हमें प्राप्त होगा। उन्होंने हमारे साथ बड़ा अच्छा व्यवहार किया क्योंकि वे स्वयं दयालु सज्जन थे और इस कारण भी कि उनकी दृष्टियोंमें हम १२–१४ वर्षकी ऐसी छोटी लड़कियाँ मात्र न थीं जो कालेजमें प्रविष्ट होना चाहती थीं वरन् हम नेहरूजीकी भानजियाँ थीं।

यह नेहरूजीके ही नामका जादू था जिसके कारण न जाने कितने लोगोंने टेलीफोनपर हमसे बातचीत करनेका प्रयत्न किया, कितनोंने फूल भेजे, समाचारपत्रोंमें हमारी चर्चा हुई और प्रशंसकोंकी डाक भी हमें मिलने लगी। ऐसी चिट्ठियाँ हमें स्कूल-कालेजके छात्र-छात्राओंसे, भारतके स्वातन्त्र्य-संग्राममें दिलचस्पी लेनेवाली संस्थाओंसे, हब्शियों-

की संस्थाओंसे, पोटोरिकाके एक राष्ट्रवादीसे तथा इंग्लैण्ड, इटली और भारतमें स्थित उन युवक सैनिकोंसे प्राप्त होती थीं जिनके परिवार-वालोंने उन्हें समाचारपत्रोंसे काट-काटकर वे अंश भेज दिये थे, जिनमें हम लोगोंके सम्बन्धमें कोई बात छपी थी। ये चिट्ठियाँ हृदयको स्पर्श करनेवाली होती थीं जिनमेंसे कुछमें हमें निमन्त्रण दिया जाता था कि हम कालेजकी लम्बी छुट्टियाँ उनके घरोंपर बितावें जिससे हम अमेरिकन जीवनकी जानकारी प्राप्त कर सकें। "टाइम" नामक पत्रिकाने हम लोगोंके सम्बन्धमें एक पैरामें लिखा था "नेहरूकी श्यामलोचना भानजियाँ।" एक और पत्रिकाने लिखा था कि हम लोगोंके "संगीतमय नाम हैं, चन्द्रलेखा तथा नयनतारा।"

"यह जान लेना कितनी अच्छी बात है कि हम लोगोंके नाम संगीत मय हैं," लेखाने पत्र खोलनेके काममें व्यस्त रहते हुए अन्यमनस्क भावसे कहा—"यह बात हमें अभीतक नहीं सूझी थी।"

" जी मैं भी समझती हूँ कि मिनिआपोलिस नाम अमेरिकनोंको संगीतमय न लगता होगा किन्तु मुझे लगता है। उसका उच्चारण बहते हुए पानीकी 'कलकल' ध्वनि जैसा—"

लेखा खुशीसे चिल्ला उठीं और उन्होंने कवियों जैसा विवेचन करनेसे मुझे रोक दिया। हम लोग जब बाजारसे कुछ सामान आदि खरीदकर घर लौटीं तो जो चिट्ठियाँ और पत्र-पत्रिकाएँ हमारे नामसे आयी थीं, उनमें वर्गाकार दो सफेद सन्दूक-से देख पड़े। इन्हींमेंसे एकको खोलनेके बाद लेखा चिल्ला पड़ी थीं। उसमें एक सुन्दर बुंदकी-दार ऑरकिडका फूल सुनहले फीतेमें बँधा था। दूसरे संन्दूकमें भी ठीक यही चीज रखी हुई थी। इसके साथ जो कार्ड रखा हुआ था, उसमें लिखा था कि "यदि मैं तुम्हारे किसी काम आ सकता हूँ तो तुम अवश्य मुझे लिखना। नेहरूकी भानजियोंके लिए मैं जो भी करूँ, थोड़ा ही होगा।" और वे पेटियाँ थीं कर्नल लूई जानसन द्वारा भेजी गयी जो सन् १९४२ में भारत भेजे गये राष्ट्रपति रूजवेल्टके निजी दूत थे।

अब एकाएक हमारे मनमें यह चेतना उत्पन्न हो गयी कि नेह-रूजीकी भानजियाँ होनेके नाते हम लोगोंपर कितनी भारी जिम्मेदारी आ

पड़ती है। न्यूयार्कमें फ्रांसिस गुन्थरने कृपापूर्वक हमें जिस कमरेमें ठहरनेकी अनुमति दे दी थी, उसीमें हम अपनी ओर इतना अधिक ध्यान दिये जानेसे अभिभूत होकर बैठ गयीं और जीवनमें जो परस्पर विरोधी बातें देख पड़ती हैं, उनके सम्बन्धमें सोचने लगीं। विदेशमें जिस आदमीके नामपर इतना उत्साह देख पड़ता था, वही अपने देशमें कैदी बना लिया गया था। देशके किस हिस्सेमें वे कैद कर रखे गये हैं, इतना तक हम लोगोंको मालूम न था और न यही कि विना मुकदमा चलाये कितने वर्षोंतक वे वहाँ रखे जायँगे। हम नहीं जानती थीं कि उनसे फिर कब हमारी मुलाकात हो सकेगी! किन्तु यहाँ, सात समुद्रोंके इस पार ११००० मीलकी दूरीपर उनका नाम जादू जैसा कमाल दिखा रहा है। यहाँ उनका इतना आदर है और इस हदतक उनकी प्रशंसा की जाती है कि उनके नामपर लोग दो स्कूली लड़कियोंके प्रति भी वह शिष्टता एवं आदर-सत्कारका भाव प्रकट कर रहे थे जो एक सहृदय देश किसी अजनबीके लिए प्रदर्शित कर सकता है।

हमारे मित्रोंके एक दलने फैसला किया कि महाविद्यालयके लिए प्रस्थान करनेके पहले हम लोग पत्रकारोंके एक सम्मेलनमें अपने विचार व्यक्त करें। यह सोचकर कि अमेरिकन सांवादिकोंके तौर-तरीकोंसे हम भयभीत-सी न हो जायँ, उन्होंने हमें पहलेसे इस बातका आभास देनेका प्रयत्न किया कि हमसे किस-किस तरहके प्रश्न पूछे जानेकी सम्भावना है। उनका इस सम्बन्धमें चिन्तित या परेशान होना अनावश्यक था, क्योंकि लेखा बड़े मजेमें उनका सामना कर सकती थीं। जब वे एकके बाद एक पूछे जानेवाले प्रश्नोंकी झड़ीका पूर्ण शान्ति एवं सन्तुलनके साथ जवाब देती चलती थीं तब मैं भौंचक्की-सी होकर मन-ही-मन उनकी प्रशंसा कर रही थी। "कोई भी अपने मनमें यही ख्याल करेगा कि वे जीवनमें बराबर हर शुक्रवारको इसी तरह पत्र-प्रतिनिधियोंका सम्मेलन करती रही हैं"—मैंने आश्चर्यान्वित होते हुए अपने मनमें सोचा।

राजनीतिसे लेकर फैशनतकके विविध विषयोंके प्रश्न पूछे गये। "युद्धोद्योगमें सहायता करनेमें गांधीजीका विश्वास क्यों नहीं है?" "हिन्दू मुसलिम समस्याकी क्या स्थिति है?" "क्या भारतीय लड़कियाँ

बनाव-शृंगारकी वस्तुओंका प्रयोग करती हैं ?" हमारे अमेरिकामें रहते समयतक इसी तरहके प्रश्न बार बार पूछे जानेकी सम्भावना थी। एक संवाददाताने लेखाको वाद-विवादमें उलझा देनेके उद्देश्यसे पूछा, "क्या यह बात सत्य नहीं है कि उच्च वर्णके लोग अस्पृश्योंके साथ रहनेसे इनकार कर देते हैं, उनके द्वारा बनाया गया भोजन नहीं करते, यहाँतक कि उनके नजदीक तक जाना नहीं चाहते ?"

लेखा विश्वासपूर्वक जरा सा सामनेको झुक गयीं और कमरेमें भरे हुए पत्र-प्रतिनिधियोंसे फुसफुसाकर कहने लगीं "किसीके कहियेगा नहीं, हमारे घरमें एक अछूत ही परिवारका भोजन बनाता है।" इसपर सब लोग ठहाका मारकर हँस पड़े और इसी मनोरंजक घटनाके साथ सम्मेलन समाप्त हो गया।

जबतक हम न्यूयार्कमें रहीं, हमें नयी दुनियाने, जो हमारे लिए अनावृत कर दी गयी थी, अभिभूत कर दिया। इलाहाबादके ऊँघते हुए से छोटे शहरकी तुलनामें इससे बढ़कर अन्तर शायद ही और कहीं देखनेको मिलता। न्यूयार्क एक ऐसा जनसंकुल सार्वभौम केन्द्र था जो नगरकी अपेक्षा एक छोटे देशसे अधिक मिलता जुलता था। दिन इतना लम्बा नहीं होता था कि हम लोग जितना देखना चाहतीं, उतना देख सकतीं। हम संगीत-समारोहों, नाट्यशालाओं और पार्टियोंमें जाती थीं, चिड़ियाखाना, सरकस तथा अजायबघर भी जा पहुँचतीं थीं। हमने अपनी तश्तरियाँ, रकाबियाँ माँजना, अपना जलपान स्वयं तैयार करना, टिन खोलनेके और धूल साफ करनेके साधनका प्रयोग करना सीख लिया। हमें बताया गया कि गृहस्थीका कामधंधा करने वाली नौकरानीका रखना, युद्ध छिड़नेके बादसे एक ऐसी विलासकी चीज समझा जाने लगा है जिसका स्वप्नमें भी विचार नहीं किया जा सकता। वह तुम्हें मिल नहीं सकती थी, भले ही तुम अपराह्नकी छुट्टीमें उसे अपना रोयेंदार कोट पहननेको उधार दे दो और कभी-कभी उसे नाट्यशालाका टिकट भी दे दिया करो। नगरमें घूमते-घूमते हमने अमेरिकाके विभिन्न सिक्कोंको पहचानना सीख लिया। मैंने देखा कि मोटर टैक्सी चलानेवाले, मात्र ऐसे व्यक्ति होनेके बजाय जो तुम्हें गाड़ी में बिठाकर यहाँसे वहाँ पहुँचाते रहते हैं, बड़े ही दिलचस्प तथा

समझदार आदमी होते हैं। उनमें जिज्ञासा होती है, राजनीतिक घटनाओंकी वे व्यंगात्मक आलोचना करते हैं और जिस विषयकी भी वे चर्चा छेड़ें, उसपर एकाध हास्योत्पादक अभ्युक्ति अवश्य करेंगे।

हम "फिफ्थ एवेन्यू" में स्थित सुन्दर वस्तु-भण्डारमें साये इत्यादि खरीदने जाती थीं जिनका हमें कालेजके फैशनके अनुसार प्रयोग करना पड़ता था और मैसाचुसेटके तीव्र जाड़ेमें पहननेके लिए बरफपर चलते समयकी पोशाक भी हमने खरीदी। लम्बी छुट्टियोंमें भी हम अपनी साड़ियाँ बचाकर रख देतीं ताकि जब कोई भोज इत्यादि हो या अन्य औपचारिक अवसर हो तो उन्हें पहन लिया जाय। ऐसा करनेका एक कारण तो यह है कि साड़ियोंको धोबीकी दूकानपर धुलाना एक समस्या बन जाता था और दूसरा यह कि साया पहनकर चलनेमें टोकाटाकी नहीं होती थी। हम बसों तथा जमीनके नीचे चलनेवाली ट्रेनोंकी भीड़में घुस जा सकती थीं और चुपचाप अपना सामान इत्यादि खरीद सकती थीं—न कोई हमारी तरफ टकटकी लगाकर देखता और न अजीब-अजीब प्रश्न पूछता।

कभी-कभी अपने इक्के-दुक्के देशवासीसे हमारी भेंट हो जाती तो उसे हमारी यह पोशाक पसन्द न आती। एक बार दोपहरका भोजन करते समय मेरी बैठनेकी जगह ऐसे ही एक सज्जनके सामने पड़ी। वे मुझे बहुत देर तक घूर-घूरकर देखते रहे और जब उनसे चुप न रहा गया तो बोल उठे "कुमारी पण्डित, मैं नहीं समझता कि तुम्हारे लिए ऐसी पोशाक पहनना उचित है। तुम पश्चिमी ढंगके कपड़े क्यों पहनती हो?"

मैंने उनके साफ-सुथरे अंग्रेजी कोट-पैंटकी ओर देखा और पूछा "तो आप ही बताइये कि आप क्यों यह पोशाक पहनते हैं?"

वे अवाक् रह गये! स्पष्ट है कि उनके दिमागमें यह बात अभीतक आयी ही न थी कि वे नखसे शिखतक 'पश्चिमी पोशाक' पहने हुए थे।

यद्यपि दूकानें बहुत सुन्दर थीं जैसी हमने अभीतक नहीं देखी थीं, पर हमें वहाँ सौदा खरीदनेमें कोई मजा नहीं आया। हमें अपनी पारीके लिए खिड़कियोंपर बहुत देरतक खड़े रहना पड़ा और जब कामके बोझसे लदी हुई विक्रयिक लड़कियाँ हमारी फरमाइश पूरी करनेके लिए उपस्थित हुईं तो हमने देखा कि वे भी हमारी ही तरह थक गयी हैं

और ग्राहककी सनक या अनोखी इच्छाओंकी तरफ ध्यान देनेको तैयार नहीं है। अपने देशमें हम जितने इतमीनानसे सौदा कर सकती थीं, उससे न्यूयार्कके इस विक्रय-भण्डारकी दुनिया बिलकुल निराली थी जहाँ कामके मारे मानो किसीको दम मारनेकी भी फुरसत न थी।

भारतके बाजारोंमें जाकर सौदा खरीदना एक ऐसी प्रथा है जो युग-युगसे चली आनेवाली शिष्टता एवं शान्तिकी द्योतक है। वहाँ हम अक्सर किसी दूकानपर कोई चीज खरीदने नहीं, वरन् उन नयी चीजोंको देखनेके लिए चली जाती थीं जो वहाँ आयी रहती थीं। दूकानदार पहलेसे ही मान लेता था कि हम इसी उद्देश्यसे उसकी दूकानपर गयी हैं, फिर भी वह मुसकराते हुए हमारा स्वागत करता और हमारे लिये पान, चाय आदि भी मँगानेको तैयार हो जाता।

"मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ? पान तो खायेंगी न? या चाय अथवा लिमनेड मँगा दूँ?" वह सिफारिश-सी करते हुए पूछता और हमारा जैसा रुख देखता, उसीके अनुसार चीज ले आनेको आदमी दौड़ा देता।

जमीनपर बिछे हुए सफेद चद्दरके किनारेपर रखी हुई डगमगाती हुई सी लकड़ीकी कुरसियोंपर या गद्दीके समीप ही बैठकर हम लोग लिमनेड धीरे-धीरे पीतीं, तबतक दूकानदार और उसके सहायक शीशेके किवाड़ोंवाली अलमारियोंमेंसे रेशमी कपड़े, साटिन, किमखाब, आदि निकालते और उन्हें खोल-खोलकर हमारे सामने रख देते थे। दुनियाका कोई भी कपड़ा बनारसके सुनहले चमचमाते हुए रुपहले कपड़ेसे बढ़कर नहीं हो सकता और न उसके जरदोजीके कामसे भरे हुए शानदार भारी किमखाबको ही मात कर सकता, मुर्शिदाबादकी चमकदार, छपी साड़ियाँ, जो प्रत्येक बार धुलानेके बाद अधिकाधिक मुलायम बिनावटवाली बनती जाती हैं, या दक्षिण भारतके कान्तिमान्, बढ़िया रेशमी कपड़े जो क्षण-क्षणपर बदलनेवाले रंगोंकी छटासे देदीप्यमान हो उठते हैं—एक रोशनीमें ऊदा तो दूसरीमें लाल अथवा एकमें गुलाबी तो दूसरीमें हरा।

रंगों तथा तर्जोंकी विभिन्नतामें तल्लीन होकर हम लोग बाजारकी गर्मी, धूल तथा शोर-गुलकी परवाह नहीं करती थीं। न बाजारकी

बेहद भीड़भाड़की तरफ हमारा ध्यान ही जाता था, न उसकी मक्खियों की तरफ और न जोर-जोरसे चिल्लाकर माल बेचनेवालोंकी तरफ। न्यूयार्क और भारतके बाजारोंके बीचके इस भारी अन्तरके कारण दूकानके भीतर सजाकर रखे गये सामानकी मनोमोहकता और भी अधिक बढ़ जाती और सौदा करनेकी क्रियाको एक तरहका अवास्तविक-सा स्वरूप प्राप्त हो जाता। भीड़से भरी हुई अत्यन्त संकीर्ण सड़कोंपर मोटर चलाना जिनके दोनों ओर टेढ़े-मेढ़े से,एक दूसरेसे प्रायः सटे हुए मकान हों, जिनमें केवल इस बातकी समानता रहती है कि उनमें गंदगी बड़ी जल्दी फैलती है और जीर्णताके चिह्न भी समान रूपसे दृष्टिगोचर होते हैं, सड़कपर धीरे-धीरे पाँव रखते हुए आगे बढ़ना जिसमें केलेके छिलके या मिठाईकी चिपचिपाहटसे पैर बिछल जानेके खतरेसे बचा जा सके, किसी छोटी-सी दूकानके भीतर घुसते ही वहाँका अनपेक्षित वस्तुसंग्रह देखकर स्तब्ध रह जाना—यह सब ऐसा अनुभव था जिसका आकर्षण हमारे लिए कभी कम नहीं हुआ, यद्यपि हम ऐसे देशमें रहती थीं जो अपनी परस्पर विरोधी बातोंके लिए विशेष प्रसिद्ध रहा है। इन गंदे स्थलोंमें भी जो बहुमूल्य वस्तुएँ देख पड़ीं, वे उस खिलते हुए फूलके समान थीं जो कीचड़में उत्पन्न होता है। जो बढ़िया कारीगरी हाथीदाँत तथा चाँदीकी सूक्ष्म कामवाली वस्तुओंपर देख पड़ती है, उसकी परीक्षा हमने बड़ी उत्सुकतासे की। सुगंधित चन्दनके पदार्थ जिनपर बढ़िया बेलबूटे आदि बनाये गये हों, मुलायम ऊनके दुशाले जिनपर गुलकारी की गयी हो, कम और अधिक चौड़ाईकी तरह-तरहकी बेलें जो सुनहले, रुपहले या रेशमी डोरोंसे बिनकर बनायी गयी हों तथा जो महीन जार्जेटकी साड़ीपर टाँकनेके लिए हों। भारतमें भद्दापन भी कामकी चीज बन जाता है जिसे लोग नष्ट नहीं करना चाहते बल्कि इस तरह उसे भव्य बनानेका प्रयत्न करते हैं जिससे वह किसी-न-किसी रूपमें सुन्दर वस्तु बन जाय।

एक बार सप्ताहान्तमें हम लोग न्यूयार्कके निकट न्याक नामक स्थानको गयीं और ऐसे मनोमोहक पति-पत्नीके साथ ठहरीं जो बच्चोंकी किताबें लिखते और उनके चित्रोंका प्रबन्ध करते थे। ठंडे और हरे-भरे देहाती क्षेत्रमें दो घण्टे हमने बड़ी शान्तिके साथ बिताये। वहाँ हमें शहर-

की गरमी तथा शोरगुलसे बचकर किंचित् शान्ति पानेका अवसर मिला। हमने अनुभव किया कि अमेरिकामें ऐसे स्थल भी हैं जहाँ लोग आरामसे धीरे-धीरे काम करते हुए रहते हैं।

हमारी आतिथेया (मेजवान)का युवक भतीजा, रिचर्ड नौ-सेनासे छुट्टी लेकर घर आया था। हमारी उससे बहुत देरतक बातचीत हुई और हमने उसके साथ विचार-विनिमय किया। हमें मालूम हुआ कि अमेरिकन युवक भारतके बारेमें बहुत कम बातें जानते हैं, विशेषकर उन घटनाओंके सम्बन्धमें जो उस समय यहाँ हो रही थीं।

"यह कोई ऐसी बात नहीं जो आसानीसे समझमें न आ सके," रिचर्डने कहा—"देखो न, हमारे देशमें भी न्यूयार्कका निवासी टेक्ससके बारेमें या टेक्ससवाला न्यूयार्कके बारेमें बहुत कम बातें जानता है। जब हम अपने ही देशके बारेमें नहीं जानते, तब हम विदेशके सम्बन्धमें कैसे जान सकते हैं ?"

जब हमने रिचर्डको देशकी राजनीतिक स्थिति बतलायी और उससे कहा कि हजारों आदमी केवल इस कारण जेल भेज दिये गये कि वे अपने देशकी आजादी चाहते हैं, तब वह भौंचक्का-सा होकर हमारी तरफ देखने लगा। यह एक नयी बात उसे पहले पहल मालूम हुई।

"ऐसी बात यहाँ कदापि नहीं हो सकती थी," उसने रोषका भाव प्रकट करते हुए कहा—"यहाँ कोई भी आदमी चाहे तो बिलकुल व्हाइट हाउस (राष्ट्रपति-भवन) तक चला जा सकता है और कह सकता है 'मिस्टर रूजवेल्ट, मैं समझता हूँ कि आप बड़े वाहियात आदमी हैं' और कोई भी उसका बाल बाँका नहीं कर सकता। हाँ, वह चाहे तो उसे 'व्हाइट हाउस'से बाहर निकाल दे सकता है," उसने हँसते हुए वाक्य समाप्त किया और उसके ऐसी निर्बन्ध वाक्य-स्वतंत्रताके विचार-पर हम लोग भी उसके साथ हँस पड़ीं।

अध्याय १३

कुछ व्यक्तियोंके विषयमें

जब हम लोग घरपर थीं, पापूने एक पुस्तकमेंसे कुछ अंश पढ़कर सुनाये थे। इसका नाम था "पॉल रोबसन, नीग्रो" और इसे उनकी पत्नी श्रीमती इस्लेण्डा गुडे रोबसनने लिखा था।

"इस पुस्तकका नाम उन्होंने 'पॉल रोबसन, नीग्रो,' क्यों रखा ?" मैंने पूछा—"हर एक आदमी तो यह जानता ही है कि वे नीग्रो (हब्शी) हैं।"

"क्योंकि उन्हें हब्शी होनेका अभिमान है," पापूने जवाब दिया। "अमेरिका, दक्षिण अफ्रीका तथा दुनियाके अन्य हिस्सोंमें ऐसे स्थान हैं जहाँ किसी आदमीका रंग यदि काला हुआ तो लोग उसे तिरस्कारकी निगाहसे देखने लगते हैं। उसके साथ ऐसा व्यवहार किया जाता है जिसमें उसे अपने ऊपर लज्जा मालूम हो। इसलिए श्रीमती रोबसन इस बातपर जोर देना चाहती हैं कि उनके पति हब्शी हैं और उन्हें इस बातका अभिमान है !"

"यदि कोई साँवला हो तो उससे घृणा करना कैसी मूर्खताकी बात है !" आठ वर्षकी रीताने बुदबुदाते हुए कहा था और ऐसा करते समय मन-ही-मन उसने अपने गोरे रंगकी प्रशंसा की जो उसे सामनेकी दीवारमें लगे हुए शीशेमें देख पड़ा। "मैं चाहती हूँ कि मेरा रंग कुछ साँवला होता, तब चेहरेपर मैल इतना साफ न झलक पड़ता और मैडमाइसेल मुझे बार बार उसे धोनेको न कहतीं।"

"इसपर विचार करनेका यह भी एक ढंग है," पापूने मुस्कराते हुए कहा—"साँवले रंगमें यह जो सुविधा है, इसपर मेरा ध्यान ही नहीं गया था।"

इस पुस्तकके जरिये तथा पाल रोबसनकी आवाजके जो रेकार्ड हमारे पास थे, उनसे हम उन्हें जानती थीं। एक दिन सितम्बरके

महीनेमें जब हमें कालेजमें प्रविष्ट हुए कुछ ही दिन हुए थे, श्रीमती रोबसनका एक पत्र हमें वेलेस्लीमें मिला जिसमें उन्होंने हम लोगोंको अपने घर, एनफील्ड, कनेक्टिकट,में कुछ दिन बितानेकी दावत दी थी।—"बशर्ते कि तुम्हें और कोई बेहतर काम न हो।" यह एक स्नेहपूर्ण, सीधे हम लोगोंको लिखा गया सौहार्दयुक्त पत्र था, जिसमें न कोई भूमिका थी और न कृत्रिम शिष्टाचारकी शब्दावली। यह एस्सीके ही—हम लोग उनसे इसी नामसे परिचित हुईं—अनुरूप था, उदारतापूर्ण निःसंकोच एवं सीधे सादे शब्दोंवाला। कुछ ही वर्ष पहले एस्सी और पॉल लन्दनमें मम्मी तथा मामूसे मिले थे, इसलिए हम लोगोंको अपनी पुत्री मानना वे अपना हक-सा समझते थे।

रोबसन दम्पतिके घरमें हम लोगोंने अपना समय बड़े आनन्दसे बिताया। पॉल महाशय तो बाहर गये हुए थे किन्तु उनके पुत्र पॉल या पॉली, जैसा कि उनका नाम चल पड़ा था, घरपर ही थे और उन्होंने तथा उनकी माताने, अपने विख्यात पिताके जीवनकी अनेक घटनाएँ सुनाकर हमारा मनोरंजन किया।

हम लोगोंने बढ़िया अमेरिकन भोजन खूब खाया और कई गिलास भर-भर दूध पिया, क्योंकि एस्सीकी राय थी कि विद्यालयों तथा महा-विद्यालयोंमें लड़के-लड़कियोंको पर्याप्त भोजन नहीं दिया जाता। हम अपनी साड़ियोंमें साबुन लगातीं और उन्हें मकान भरमें तथा उद्यानमें जहाँ-तहाँ फैला देती थीं। एस्सीने कभी रत्तीभर भी आपत्ति नहीं की और बीसों गज रेशमी कपड़े धोने तथा लोहा करनेके परिश्रमसाध्य काममें हमारा हाथ बटाया। "वह घर किस कामका यदि मेरी लड़-कियाँ ही स्वच्छतापूर्वक उसका उपयोग न कर सकें?" उन्होंने प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा। उन्होंने स्थायी रूपसे हमें निमंत्रण दे डाला कि जिस समय भी हमारा जी करे, हम उनके घर आ सकती हैं, जितनी इच्छा हो उतनी सखियाँ साथ ले जा सकती हैं और जब वहाँ पहुँच जायँ तो जितनी साड़ियाँ हम चाहें उतनी साबुन लगा-लगाकर साफ कर डालें।

श्रीमान् पॉलसे बादकी गरमियोंमें ही हमारी मुलाकात हो सकी, जब कि पॉली हमें ब्राडवे ले गये जहाँ उनके पिता 'ओथेलो' का अभि-

नय कर रहे थे। उनकी भव्य वाणी तथा रंगमंचपर उनकी उपस्थितिसे प्रभावित होकर हम लोग दो घंटेतक मंत्र-मुग्ध सी होकर रह गयीं—वाणी जिसमें अधिक गहराई, अधिक सुन्दरता तथा अधिक शक्ति मालूम होती थी बनिस्बत ऐसी किसी आवाजके जो आजतक हम लोगोंने सुनी थी, और उपस्थिति ऐसी जिसके सामने अन्य सभी अभिनेता बौनेसे प्रतीत होते थे तथा जो उनकी तुलनामें दैत्यके समान मालूम होते थे।

नाटक समाप्त होनेके बाद पॉली हमें रंगमंचके पीछेवाले हिस्सेमें अपने पितासे मुलाकात कराने ले गया। वे अभीतक "ओथेलो"की पोशाक पहने हुए थे। हम लोगोंका स्वागत करनेके लिए वे अपने कपड़े पहननेके टेबिलपरसे उठ खड़े हुए। मैने ऊपर देखा और बराबर उस ऊँचे आदमीको तरफ ही निगाह किये रही जिसे आजतक मैंने कभी न देखा था। उन्होंने मुझसे हाथ मिलानेके लिए अपनी लम्बी भुजा फैलायी जिसमें मेरा हाथ अन्तर्धान हो गया और जब उन्होंने मुस्कराकर मेरी ओर देखा, तब मैं भौचक्की सी रह गयी।

"तो ये सब मेरी बेटियाँ हैं" ये शब्द रोबसनने गहरी, तथा संगीतमयी अवाजमें कहे।

जब वे स्नेह-प्रदर्शनके लिए मेरा चुम्बन करनेको झुके तो मैं घबरा सी गयी। १७ वर्षकी मेरी उम्र इस समय थी किन्तु ऐसा जबरदस्त अनुभव मुझे इसके पहले कभी नहीं हुआ था।

प्रसिद्ध व्यक्तियोंसे मिलना हम लोगोंके लिए कोई नयी बात न थी, क्योंकि आनन्दभवनमें बड़े-बड़े विख्यात अतिथि, विदेशी तथा भारतीय अक्सर आकर ठहरा करते थे। बहुत ही कम बार ऐसा होता था जब कि भवनके सब कमरे भरे न हों (नया भवन उतना बड़ा न था जितना पुराना था), जब भोजनागारमें काफी भीड़ न हो और जब नौकर-परिचारक पाकशालासे भोजनागार तथा भोजनगृहसे पाकशालातक आने-जानेमें व्यस्त न हों।

इलाहाबाद राष्ट्रीय आन्दोलनका एक प्रमुख केन्द्र था, अतः यह स्वाभाविक था कि आनन्दभवन राजनीतिक क्रियाकलापका महत्त्वपूर्ण स्थान हो। राजनीतिक सभाएँ पुस्तकालयमें हुआ करती थीं और

ऐसे अवसरों पर टेबिल-कुरसी आदि सब सामान हटा लिया जाता था तथा फर्शकी दरीपर सफेद चादर बिछा दी जाती थी और उसके चारों तरफ दीवारसे सटाकर बड़े-बड़े तकिये लगा दिये जाते थे। यहाँ कांग्रेसके नेता लोटते-पोटते, परस्पर बातचीत करते और विविध निर्णय किया करते थे।

इन उत्तेजनामय क्रिया-कलापोंमें हम लोग सम्मिलित नहीं होती थीं और जब मेहमान मौजूद रहते थे तब हम भूले-भटके ही बैठकखानेमें जाती थीं किन्तु वहाँकी काररवाई देख लेनेके हमारे अपने तरीके थे। हम सीढ़ीके लंबे डण्डेमें लगी लोहेकी छड़ोंके बीचमें बैठकर अपनी जगहसे लोगोंको जाते तथा आते देखती थीं। पुस्तकालयमें जो वाद-विवाद चलता था, उसे सुननेका अक्सर एक ही उपाय रहता था—सीढ़ीसे होकर ऊपर छतपर पहुँच जाना और वहाँ नीले शीशेके रोशनदानोंमेंसे किसी एकमें झाँककर जमा हुए लोगोंको देखना। हम उस समय नहीं जानती थीं कि जब तमाशेके लिए लुक-छिपकर ये सब चीजें देखती थीं, तब ऐसी महत्त्वपूर्ण योजनाएँ बनायी जा रही थीं जो भारतके मानस-मंडलमें क्रमशः क्रान्ति उत्पन्न कर रही थीं।

आनन्दभवनका जीवन बड़ोंके लिए कभी-कभी बड़ा कष्टकारक हो जाता था, विशेषकर परिवारकी महिलाओंके लिए। जब किसी सभाकी बैठक चलती रहती, तो मेरी माताजी सदस्योंसे भोजन करने या चाय पीनेके लिए रुक जानेका अनुरोध करतीं। इसका जवाब हमेशा यही होता था, "जी नहीं, आपको अनेक धन्यवाद, किन्तु हमें बैठक समाप्त होते ही तुरन्त रवाना हो जाना है।" पर होता यह था कि वे अक्सर रुक ही जाते थे। कभी-कभी जब भोजनके लिए पाँच आदमियोंके आनेकी अपेक्षा की जाती, तब पच्चीस आदमी धीरेसे भोजन-गृहमें दाखिल हो जाते। उस समय पता चलता कि तीन तो ऐसे निरामिष भोजी हैं जो अण्डे खानेसे परहेज नहीं करते और दो ऐसे हैं जो अण्डे भी नहीं खाते। एक या दो ऐसे भी निकल आते जो बुधवारको (या उस दिन हफ्तेका जो भी दिन हो, उस दिन) मांस या अण्डे नहीं छूते और उनमें कम-से-कम एक आदमी तो ऐसा भी निकल ही जाता जो विशुद्ध रूपसे केवल फलोंका ही आहार करता हो। ये सब

लोग बैठ जाते, खुशी-खुशी और बेफिक्रीमे, मुँहसे तो बराबर यही कहते रहते कि ना भाई, हम कुछ भी न खायेंगे, बड़े मीठे स्वभावके, खुशदिल, किन्तु भूखे उन आदमियोंकी तरह जिन्होंने सबेरेका अपना काम पूर्ण सन्तोषजनक रूपसे पूरा कर लिया हो और अब अपने आपको अच्छे स्वादिष्ट भोजनके रूपमें थोड़ा-सा आराम पानेका अधिकारी समझ रहे हों। भोजनकक्ष उनकी हास्यजनक उक्तियों और उनके परिहास से गूँज उठता। बातचीतमें एक भी गम्भीर बात वहाँ न कही जाती, क्योंकि सारी गम्भीरता ऊपर पुस्तकालयमें पड़ी रहने दी जाती थी। ऊँचे-पूरे डीलडौलके तथा काटछाँट कर नुकीली बनायी हुई डाढ़ीवाले सुख्यात और अननुकरणीय मौलाना आजादकी मँजी हुई उर्दू, लहराते हुए बालों और लहलहाती हुई डाढ़ीवाले टंडनजीकी विद्वत्तापूर्ण हिन्दी से मिल जाती। इधर हास-परिहास और प्रसन्नताका यह सिलसिला चलता रहता, उधर पाकशालामे द्रुतगतिसे अन्तिम क्षणकी तैयारियाँ की जातीं जहाँ रुम्मी अपने काममें जुटकर मुँहमें पानी ले जानेवाली सुस्वादु वस्तुएँ न जाने कैसे और कहाँसे प्रस्तुत करनेमें समर्थ हो जातीं। ऐसा कभी नहीं हुआ कि उनकी विलक्षण सूझ-बूझ और बुद्धि-प्रखरता देखकर हमें आश्चर्य न हुआ हो।

"जब सब सामग्री मौजूद हो तो कोई भी व्यक्ति अच्छा भोजन तैयार कर दे सकता है लेकिन तारीफकी बात तो तब हो जब तुम अपनी कल्पना-शक्तिका सहारा लो और सामग्रीके न होते हुए भी शून्यमेंसे बढ़िया भोजन प्रस्तुत कर दो," उन्होंने हम लोगोंसे कहा था।

हम लोगोंने उन्हें चम्मच, कटोरा या और कोई नपुआ इस्तेमाल करते नहीं देखा। भारतीय नारीकी अनुपात सम्बन्धी (अंतर्जात) भावनासे तथा नुसखों और आदेशोंके प्रति अरुचिसे वे जहाँ जैसी जरूरत देखती थीं, उड़ेल देती थीं, छिड़क देती थीं, मिला देती थीं और उछाल देती थीं, होशियारीसे तथा इतमीनानके साथ। इसके बाद वे अपने हाथ धो डालतीं और फिर चुपचाप भोजनकक्षमें अन्य लोगोंसे जा मिलतीं, इस उद्देश्यसे कि भारतीय परम्पराके अनुसार उन्हें मनाकर, फुसलाकर और अधिक भोजन खिला सकें। अतिथि-सत्कारके भारतीय नियमोंके अनुसार अतिथिको जहाँ यह शोभा नहीं देता कि

दूसरी पारीमें जब कोई चीज उसके सामने लायी जाय तो एक बार कह देनेसे ही उसे स्वीकार कर ले, वहाँ आतिथेयका भी यह कर्त्तव्य होता है कि वह अपने मेहमानको बराबर ललचाता रहे और अंतमें इस बातके लिए राजी कर ले कि वह एकाध चीज और ले ही ले। यह एक मनोरम परिपाटी है जिसमें समय लगता है, बराबर ध्यान देना पड़ता है और बड़ी शिष्टता दिखाना आवश्यक होता है।

कभी-कभी मम्मीपर कामका इतना अधिक बोझ आ पड़ता कि वे कराह उठतीं और कहतीं "अरे कोई मुझे निश्चित रूपसे इतना तो बतला दे कि भोजन करनेके लिए पाँच आदमी आयेंगे या पचास।"

ऐसी ही परेशानीके एक दिन मैं एक किताब ढूँढती हुई मम्मीके कमरेकी ओर चली गयी। मैंने देखा कि दरवाजेमें ताला पड़ा हुआ है। यह बिलकुल ही असाधारण बात थी जो इस बातकी भी सूचक थी कि शीघ्र ही कोई संकट आनेवाला है। इतनेमें मेरी नजर छोटेसे सफेद कार्डपर गयी जो दरवाजेमें कील ठोककर लगा दिया गया था। उसमें गाढ़ी काली स्याहीसे लिखा हुआ था—"इसके द्वारा जनताको सूचना दी जाती है कि श्रीमती पंडित चाय पीनेके बाद शान्तिपूर्वक स्वर्ग सिधार गयीं। प्रार्थना है कि उनके शवपर कोई मालाएँ न चढावे।"

जो लोग आनन्दभवन आया करते थे, उनमें देवी सरोजिनी नायडू ऐसी थीं जो अक्सर ही पहुँच जाती थीं और जो सब लोगोंको बहुत ही प्रिय थीं। ये कवियित्री तथा राजनीतिकी जानकार और उन दो स्त्रियोंमेंसे एक थीं जो कांग्रेसकी अध्यक्षा रह चुकी थीं। नानूजीसे उनकी मित्रता थी और उनकी लड़कियोंमें तथा मम्मीमें बचपनसे ही सखी-भाव चला आ रहा था। जब वे भवनमें जातीं तो वहाँ खूब हँसी छूटती रहती और ऐसा आनन्दमय, उल्लासपूर्ण वातावरण उत्पन्न हो जाता जिसकी रचना केवल वे ही कर सकती थीं।

वे अपनी इच्छाके अनुसार चलनेवाली, मुँहफट और कटुभाषिणी होती हुई भी सौम्य भी बन जाती थीं। उनकी वाणीसे संगीतका मिठास टपकता था, ठीक उसी तरह जिस तरह कि उनकी लेखनीसे वह प्रवाहित होता था। कहानियाँ वे बड़े अच्छे ढंगसे सुनाया करती थीं और घटनाओंका वर्णन करनेके साथ-साथ वे अपरिज्ञात रूपसे चेहरेपर ऐसे

सुस्पष्ट भाव तथा संकेत प्रदर्शित करती थीं जिनसे उनके श्रोताओंके दिलोंमें आनन-फानन प्रसन्नताकी लहर दौड़ जाती थी। आदमियोंके जिस जमावमें भी वे पहुँच जातीं, वही उत्सवके रूपमें परिणत हो जाता क्योंकि वे अपने चारों ओरके लोगोंको अपनी दुर्दम्य जिन्दादिली तथा हाल-विलास-प्रियतासे ओत-प्रोत कर देती थीं।

प्रत्येक बार जब वे हमारे यहाँ आतीं तो नीचेसे ऊपरतक हम लोगों को देखकर मम्मीसे कह उठतीं "बड़ी विचित्र बात है! तुम्हारी जैसी सुन्दर स्त्रीने कैसे इन अजीब सूरत-शक्लकी लड़कियोंको जन्म दिया?"

एक बार उन्होंने मुझसे पूछा "तुम दुनियामें सबसे तेज और होशियार स्त्री बनना ज्यादा पसन्द करोगी या सबसे सुन्दर?"

"सबसे सुन्दर," मैंने प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा, क्योंकि एक तो मैं बड़ी भद्दी शक्लवाली लड़की थी, दूसरे इस दुनियामें कौन ऐसी छोटी लड़की होगी जो अपने स्वप्नोंकी परियोंकी रानी न बनना चाहती हो?

"हुँ" श्रीमती नायडूने अपनी असहमति प्रकट करते हुए कहा। "आखिर नारी ही तो ठहरी! मस्तिष्क सम्बन्धी योग्यताकी उसे अणुमात्र भी चिन्ता नहीं। मुझे आशा है कि कुछ और बड़ी होनेपर उसे ज्यादा समझ आ जायेगी।"

एक किताब उन्होंने मुझे दी थी जिसे मैं बड़ी हिफाजतसे रखती हूँ। इसमें उन्होंने अपनी अनूठी काव्यमय भाषामें यह पंक्तियाँ लिख दी थीं—"जिस प्रकार एक नक्षत्र आकाशमें चमककर अपना प्रकाश फैलाता है, उसी तरह ईश्वर करे कि तुम भी पृथ्वीपर अपनी ज्योति प्रसारित करो।"

यद्यपि हमारे जीवनमें भी श्रीमती नायडू एक उज्ज्वल एवं स्नेहशील मूर्ति-सी थीं, फिर भी वे हमारे उतने सन्निकट न थीं जितने सन्निकट उनकी पुत्री पद्मजा थीं जिन्हें हम "पद्मासी" कहकर सम्बोधन करती थीं। पद्मासीमें एक अनिर्वचनीय मोहकता थी। वे राजनीतिके कठोर वातावरणमें नहीं रह सकती थीं और न उन्होंने इन परिस्थितियोंके योग्य अपनेको दिखलानेकी चेष्टा ही की। उनकी साड़ियोंके चमचमाते हुए हरे, सुनहले तथा बैंगनी रंगोंमें तथा अपने आसपासवालोंको हम सादे रंगके जैसे कपड़े पहनते देखती थीं, उनमें भारी अन्तर प्रतीत होता

था। खादीकी दबी फुसफुसाहटके बीच उनके उज्ज्वल रेशमी कपड़े मानो निर्लज्ज भावसे फड़फड़ा उठते थे! वे अपने बालोंमें फूल अवश्य सजाया करती थीं। कभी-कभी ऐसा लगने लगता था मानो वे कोई स्वर्गीय पक्षिणी हों जो गौरैये चिड़ियोंकी घाटीमें पड़कर बेचैनीसे छटपटा रही हो।

पद्मजा जीवन भर अपंग-सी बनी रहीं किन्तु इसके बावजूद वे बड़ी खुशदिल थीं, तत्क्षण ही चतुराईसे भरा हुआ जवाब देनेकी कला उनमें थी और परिहासकी उत्कट भावना उन्हें अपनी मातासे ही प्राप्त थी। अपनी माताके ही समान वे भी कवियित्री थीं और कवियों जैसी प्रबल सौन्दर्यभावना भी उनमें थी, किन्तु इसके साथ-साथ उन्हें तीव्र आलोचक-दृष्टि भी प्राप्त थी। पोशाकमें, व्यवहारमें या बातचीतमें कोई भी त्रुटि हो जाती, वे फौरन ही ताड़ लेतीं। वे हमारी प्रिय सलाहकार तथा सबसे कठोर आलोचिका थीं।

हम लोग उनके रेशमी वेश-विन्यास तथा उनकी निराली सूझ-बूझपर मुग्ध थीं। पहली विशेषताके कारण हमें वे फैशनकी आदर्श महिला सी लगती थीं और दूसरीके कारण उनका व्यक्तित्व हमें लोककथाओंका भण्डार-सा जान पड़ता था। हमारी ही उम्रकी होनेके कारण हम उनके साथ इतनी स्वतंत्रतासे बातचीत कर सकती थीं जितनीसे अन्य किसीके साथ नहीं कर सकती थीं।

"यह कैसी बात है कि आप हम लोगोंका भाव इतनी अच्छी तरह समझ जाती हैं ?" रीताने उनसे पूछा। रीताके लिए यह एक निगूढ़ रहस्य, न सुलझनेवाली गुत्थी थी कि कोई उसके साथ, जो परिवारकी छोटी-सी बच्ची समझी जाती थी, प्राप्त-वयस्काकी तरह बातचीत करे।

"मैं समझती हूँ कि मुझे तुम्हारे परिवारकी बातें समझनेकी आदत ही पड़ गयी है," पद्मासीने अपनी सामान्यतया दृष्टिगोचर होनेवाली बनावटी गम्भीरतासे जवाब दिया—"मैं उसकी तीन पीढ़ियोंकी विश्वासपात्र रह चुकी हूँ।"

"तीन पीढ़ियोंकी ?" हमने एक साथ ही पूछा।

"हाँ। क्या मैंने तुमसे यह बात पहले नहीं कही ? मेरा परिचय उस समय आरम्भ हुआ जब मैं १७ वर्षकी थी। तुम्हारे नानूजीसे

मेरी भेंट हुई। निःसन्देह उनके जैसा आदमी न आजतक हुआ है और न होनेकी संभावना है। मैं उन्हें बेहद चाहने लगी थी। उसके बाद मैं तुम्हारी मम्मीसे मिली और फिर तुम तीनों लड़कियाँ मेरे सामने आयीं! इस प्रकार तीन पुश्तें हो गयीं न?"

गांधीजी सबसे सम्मानित अतिथि थे जो हमारे यहाँ आते थे। उनका प्रत्येक बारका आगमन एक अनोखा एवं अवर्णनीय अनुभव-सा होता था। चाहे जितनी बार कोई उन्हें देखता या भीड़पर होनेवाले उनके प्रभावका निरीक्षण करता, उसे इस बातका विश्वास ही न होता था कि ऐसी घटना सम्भव हो सकती है। ऐसी किसी एक ही घटनाका मनमें स्मरण करना एक बात है किन्तु आँखोंके सामने बार-बार उसीकी पुनरावृत्ति, विश्वास न किये जा सकने योग्य उसके पूर्ण चमत्कारके साथ, होते देखना बिलकुल ही दूसरी चीज है।

जब गांधीजी किसी रेलगाड़ीसे यात्रा करते थे, तब प्लैटफार्मतक पहुँचनेके पहले ही उसे रोक देना पड़ता था। ऐसा इसलिए किया जाता था जिसमें उनकी प्रतीक्षा करनेवाली भीड़ उनके डिब्बेको चारो तरफसे घेर न ले। इस उपायका सहारा लेनेपर भी कभी सफलता नहीं मिली। दर्शनोंकी लालसासे भरे हुए मनुष्योंकी भीड़ किसी-न-किसी तरह उनके पास पहुँच ही जाती थी। रेलकी पटरियोंके आरपार कूदते-फाँदते हुए लोग दौड़ पड़ते, यहाँतक कि कुछ लोग उनके डब्बे-तकपर चढ़ जाते या लटक जाते थे, जिससे उनका नीचे उतरना भी मुश्किल हो जाता। स्टेशनसे आनन्दभवनतकके तमाम रास्तेभर दोनों तरफ जय-जयकार करनेवाले अनुयायियों तथा जिज्ञासु दर्शनार्थियोंका समूह कतार बाँधकर खड़ा रहता था।

गांधीजी बहुत सादा भोजन करते थे जिसमें लहसुन अवश्य रहता था। एक बार थोड़ा लहसुन एक तश्तरीमें रखकर मुझे उनके कमरे तक ले जाना पड़ा तो मैंने हाथ फैलाकर तश्तरी अपनी नाकसे काफी दूर रखी जिसमें उसकी गंध मुझे न आने पावे।

श्रीमती नायडूने मेरी ओर देखा और ओठोंके भीतर हँसते हुए कहा "ज्यादा बनो मत, छोटी बीबी। तुम्हें भी उसका थोड़ा-सा हिस्सा

खाना चाहिये, यदि तुम चाहती हो कि तुम्हारा रंग भी बूढ़ेके जैसा चमकदार बना रहे जब तुम उनकी उम्रपर पहुँचो।"

गांधीजी अपने अगणित भक्तोंके लिए भले ही सन्त और महात्मा हों, किन्तु श्रीमती नायडूके लिए तो, जो बहुत शुरूसे ही उनकी शिष्या रही थीं, वे "एक बुढ़वा" तथा रंगीन 'मिकी माउस' (शरारती चूहा) मात्र थे।* वे महात्माजीको बहुत चाहती थीं और इस सम्बन्धमें कोई प्रदर्शन करने या होहल्ला मचानेकी आवश्यकता नहीं समझती थीं। भावुकतासे तथा अत्यधिक निष्ठासे व्याप्त वातावरणमें यह ऐसी समझदारीका रुख था जिससे तबीयत प्रसन्न हो जाती थी।

प्रार्थना-सभा गांधीजीके प्रतिदिनके कार्यक्रमकी नियमित विशेषता थीं, चाहे वे अपने आश्रममें वर्धामें हों या देशके अन्य किसी भागमें। इन प्रार्थना-सभाओंकी सबसे बड़ी बात उनका विश्वीय रूप था, क्योंकि प्रत्येक ऐसी सभामें भगवद्गीताके अंश पढ़े जाने तथा हिन्दू भजन गाये जानेके सिवा कुरान, संतसाहित्य और बाइबिलके भी अवतरण पढ़े जाते थे और विभिन्न सम्प्रदायोंके मंत्रादि भी गाये जाते थे। ईसाई धर्मका यह स्तोत्र उन्हें बहुत पसन्द था—"लीड् काइण्डली लाइट" (हे करुणामय ज्योति, मेरा पथप्रदर्शन कर)। अपनी प्रार्थनाओंके समय पढ़नेके लिए उन्होंने इसका गुजराती अनुवाद करा लिया था। इस व्यापक दृष्टिकोणके कारण सब धर्मोंके अनुयायी उनकी सभाओंमें जाते थे, जिससे वे विश्वजनीन भ्रातृभावकी केन्द्र बन जाती थीं।

बापूका कहना था कि जो लोग इस बातमें विश्वास करते हैं कि ईश्वर एक है किन्तु मनुष्य विविध प्रकारसे उसका पूजन करते हैं, उन्हें इस सिद्धान्तको कार्यान्वित करनेकी जिम्मेदारी अपने ऊपर लेनी चाहिये। उनकी प्रतिदिनकी प्रार्थना-सभा इस बातका प्रमाण थी कि वे स्वयं उसे कार्यान्वित करनेमें लगे हुए थे। आश्रममें जहाँ वे अपने निकटस्थ अनुयायियोंका एक समाज-सा बनाकर रहते थे, प्रार्थनाके समय हिन्दू धर्मशास्त्रोंकी प्रधानता रहती थी। बापूने एक बार बत-

* चित्रपटपर दिखलाये जानेवाले हास्य रसके चित्रोंमें प्रदर्शित एक तरहके, रंगीन चूहे।

लाया था कि ऐसा इसलिए होता था कि आश्रमके अधिकतर सदस्य हिन्दू थे। यदि बहुसंख्यक सदस्य मुसलिम या क्रिस्तान होते तो कुरान या बाइबिलके ही अवतरणोंका प्रधान्य रहता। यद्यपि वे स्वयं बड़े श्रद्धावान् हिन्दू थे, फिर भी उनमें धर्मान्धता नामको भी न थी।

बापू जब सन् १९४१ में इलाहाबाद आये, तब उनकी सांध्य-प्रार्थना आनन्दभवनके सामनेवाले दूर्वाक्षेत्र (लान) में उस फव्वारेके पास होती थी, जहाँ सफेद संगमरमरकी मछलीके वृत्तसे पानीका फव्वारा छूटा करता था। फव्वारेके चारों तरफ गहरे हरे रंगकी पत्तियोंके समूह थे जिनके बीचमें चमकदार लाल फूलोंके पौधे थे। उसीके समीपकी घासपर एक दरी बिछा दी जाती थी। यहीं गोधूलि बेला होनेपर जब संध्याका थोड़ा-थोड़ा अँधेरा बागमें फैलने लगता तब बापू जाकर लकड़ीके एक तख्तपर बैठ जाते जो उनके लिए पहले-से रख दिया जाता था। लोग फाटकोंमेंसे आ-आकर इकट्ठे हो जाते, धूलसे भरी हुई सड़क तथा पासके बाजारका शोरगुल पीछे छोड़कर, और घासके ऊपर बे-तकल्लुफीसे छोटे-छोटे समूहोंमें बैठ जाते।

जब गीताका पाठ प्रारंभ हो जाता और जो लोग अपने साथ गीता-की पोथी लाये होते, वे उसे उस पृष्ठपर खोल लेते जहाँका प्रसंग उस दिनके लिए चुना गया होता, मैं भी तल्लीन होकर सुनने लगती, क्योंकि शब्द संस्कृतके होते हुए भी श्लोक सब जाने-समझे हुए ही थे। वे गीताकी शिक्षाके सार रूप थे और उसका वह भाग जो स्वयं बापूके जीवन पर लागू होता था—

'कर्म करना ही तुम्हारे अधिकारमें है, फल क्या होगा इससे तुम्हारा कोई वास्ता नहीं। इसलिए फल पानेकी वासनासे प्रेरित होकर कोई काम न करो और कर्म न करनेवालोंके साथ न रहो।

हे अर्जुन, सिद्धि और असिद्धिमें समान भाव रखकर, संगका परित्यागकर, योगस्थ होकर कर्तव्योंका पालन करो, क्योंकि समत्व ही योग कहलाता है।'*

---

* कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफल हेतुर्भू मा ते संगस्त्वकर्मणि॥

मैं पलथी मारकर हाथमें तानपूरा थामे हुए, दरीपर बैठी थी और बागमें छनछनकर आनेवाली 'एबाइड विथ मी' की स्वर-लहरोंको ध्यानसे सुन रही थी तथा गानेकी अपनी पारी आनेकी प्रतीक्षा कर रही थी। दूर्वाक्षेत्रमें श्वेत-अश्वेतका अस्पष्ट-सा सम्मिश्रण हो रहा था—स्त्री-पुरुषोंके चेहरोंका गेहुवाँ या साँवला रंग उनके कपड़ोंके सफेद रंगसे मानो मिलनेका प्रयत्न कर रहा था।

अब मेरी पारी आयी। मैं इतनी घबड़ा गयी कि मेरी उँगलियाँ काँपने लगीं, जब मैंने तानपूरेके तारोंपर आघात किया; किन्तु बापूकी दयापूर्ण आँखोंने दिलासा-सा देते हुए मेरी ओर देखा और मैंने गाना प्रारंभ कर दिया। मेरा भजन ओल्ड टेस्टामेंटके साम (धार्मिक-गीत)से मिलता-जुलता था। उसकी पहली पंक्ति मुझे अभीतक याद है। वह थी—"प्रभु, तुम बिन कौन मेरी नैया करे पार।"

प्रार्थना-सभा समाप्त होनेके करीब "रघुपति राघव राजाराम"का गायन आरंभ हुआ, जिसमें सारी सभाने समवेत रूपसे सहयोग किया।

"रघुपति राघव राजाराम
पतितपावन सीताराम।
ईश्वर अल्ला तेरे नाम,
सबको सन्मति दे भगवान्॥"

इस हिन्दू भजनमें अन्तिम दो पंक्तियाँ बापू द्वारा ही जोड़ दी गयी थीं। जैसा कि मैं पहले कह चुकी हूँ, महात्माजीके नामके साथ इस भजनका सम्बन्ध जुड़ गया था। जहाँ भी वे जाते थे यह गीत वहाँ गाया जाता था और जब वे अनुपस्थित रहते थे तो इसके कारण लोगोंको उनकी उपस्थितिका स्मरण हो आता था।

× × ×

हम लोगोंके लिए विदेशोंसे आये हुए दो परिदर्शकोंकी याद करनेके लिए कारण हैं। उनमेंसे एक थीं श्रीमती मारगरेट सैंगर जो परिवार-नियोजन सम्बन्धी कार्यक्रमके सिलसिलेमें भारत आयी थीं। आपसकी

योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥

बातचीतके जो छिटफुट अंश हम लोग बीच-बीचमें सुन लिया करती थीं उनके आधारपर रीताने कुछ जानकारी संग्रंथित कर ली होगी। एक दिन संध्या समय जब हम लोग श्रीमती सेंगरसे (रात्रिभरके लिए) बिदा लेने गयीं तो रीताने पतली तेज आवाजमें पूछा "क्या आपका भी यह खयाल नहीं है कि हम लोगोंका परिवार बहुत ही संतुलित परिवार है?" श्रीमती सैंगरको यह बात बहुत अच्छी लगी। कई वर्षोंके बाद जब अमेरिकामें हम लोगोंकी उनसे भेंट हुई तो उन्होंने हमें इस घटनाका स्मरण दिलाया।

सर स्टेफर्ड क्रिप्स जो एक बार पहले भी हम लोगोंके साथ आनन्द-भवनमें रह चुके थे, सन् १९४२में फिर भारत आये। राजनीतिक दृष्टिसे उनकी बातचीतके सम्भावित परिणामके सम्बन्धमें तरह-तरहकी अटकल-बाजियाँ भवनमें सुनाई पड़ रही थीं। पारिवारिक दृष्टिसे उसमें इन्दिराके विवाहकी तैयारियोंकी चहल-पहल मची हुई थी। घटनाओंका इससे अधिक विचित्र सहयोग शायद ही कभी हुआ हो। इन्दिराने, जिनके मस्तिष्क में उस समय विवाहकी भावना व्याप्त थी, भोजनके समय आलूके चिप्स (तले हुए टुकड़े) सर स्टैफर्डको दिये किन्तु देते समय 'पोटैटो चिप्स' न कहकर 'पोटैटो क्रिप्स' कह गयीं।

मामू आनन्दभवनके मालिक होते हुए भी कई दृष्टियोंसे मेहमान जैसे मालूम होते थे, क्योंकि उन्हें अपने कामके कारण लम्बे-लम्बे समयके लिए बार बार, देशभरमें यात्रा करनी पड़ती थी।

पापू चिढ़ानेके लिए मुझसे कहते 'अपने मामूकी तरफ देखो। वे प्रेताभिभूत आदमीकी तरह सारे देशका चक्कर मारा करते हैं, यह कहते हुए कि आप लोग अधिक अन्न उपजानेका प्रयत्न करें किन्तु मैं ही वह आदमी हूँ जो घर पर ही रहता है और सचमुच ही अधिक गल्ला उत्पन्न कर दिखलाता है। केवल बकनेवाले और काम करके दिखलानेवालेमें यही तो अन्तर है।'

जब मामू इलाहाबादमें रहते थे, तब मकानके सामनेके अर्द्धवृत्ताकार बरामदेमें लगी हुई बेतकी कुरसियोंकी कतार कभी खाली नहीं रहने पाती थी। नेहरूजीसे मिलनेके लिए आनेवाले कुछ-न-कुछ लोग दिनभर उनपर बैठे ही रहते थे। यद्यपि किसी-न-किसी काममें वे बराबर

व्यस्त ही रहते थे, फिर भी वे बीच-बीचमें थोड़ा समय हम लोगोंके साथ खेलनेके लिए, और उन प्रश्नोंका उत्तर देनेके लिए निकाल ही लेते थे जो हम बातचीतके सिलसिलेमें उनसे पूछा करती थीं। उनमें शक्ति और स्फूर्तिका मानो अनन्त भण्डार था। जिस दिन उन्हें बहुत थका देनेवाला काम करना पड़ता था, उस दिन भी थकावटके चिन्ह अधिक देरतक विद्यमान नहीं रहते थे। मामूली चालसे पैदल चलना उनके लिए यात्राका बहुत ही सुस्त और स्थिर-सा प्रकार था। मामूका जल्दी-जल्दी चलना दौड़ने जैसा ही होता था। हम लोगोंमें अक्सर ही इस बातकी प्रतिद्वन्द्विता चलती थी कि उनके कमरेसे भोजनकक्ष-तक दौड़ लगानेमें कौन सबसे पहले सीढ़ियोंसे उतरकर नीचे पहुँच सकता था। उनके उपस्थित रहते हुए कोई भी सुस्तीसे नहीं रहने पाता था और यदि कोई आदमी कुरसी पर बैठकर भद्दे ढंगसे टिकते या झुकते पाया जाता तो वह इस बातकी अपेक्षा कर सकता था कि नेहरू-जी आकर कंधेपर आघात कर उसे झकझोर देंगे और उसे झिड़ककर कुछ-न-कुछ काम करते रहनेकी सलाह देंगे। उनकी भर्त्सना का लक्ष्य चाहे हममेंसे कोई हो या किसी स्थानीय हाई स्कूलकी प्रधानाध्यापिका हो, दोनोंके प्रति उनके व्यवहारोंमें कोई अन्तर नहीं पड़ता था।

सबेरे सोकर उठनेके बाद हम लोग कभी-कभी मामूके कमरेमें पहुँच जाती थीं यह देखनेके लिए कि वे योगाभ्यास किस तरह करते हैं, अक्सर उनके साथ-साथ हम भी उन्हें सीखनेका प्रयत्न करतीं। सिरके बल उलटे खड़े होना उन्हें नियमित रूपसे पसन्द था और वे समझते थे कि यह एक स्वास्थ्यवर्द्धक अभ्यास है और सबेरे-सबेरे दुनियाको उज्ज्वल रूपमें देखनेका बड़ा अच्छा तरीका है। जलपानमें वे अंडे, टोस्ट तथा काफी डटकर ग्रहण करते थे। "डटकर" उस परि-वारमें जहाँ फल एवं चायका ही जलपान सामान्य रूपसे किया जाता था।

"यह क्या 'एक प्याली चाय' जैसी निरर्थक बात आप करती हैं," वे मेरी मातासे झिड़कते हुए कहते—"आप एक प्याली चाय लेकर कैसे दिनभरका काम कर सकती हैं?"

"मैं सबेरे-सबेरे पहली चीजके रूपमें अंडेका सामना नहीं कर सकती," मम्मी दृढ़तापूर्वक जवाब देतीं।

मामूके लिए, जलपानका समय किसी भी तरह सबेरे-सबेरे किया जानेवाला प्रथम कार्य न था। उस समयतक वे व्यायाम कर चुके रहते थे, कुछ समाचारपत्र पढ़ चुकते और कितने ही ऐसे लोगोंको देख चुके या उनसे बातें कर चुके होते जिनका समय उनसे मिलनेके लिए बड़े सबेरेका ही रखा गया होता।

कभी-कभी मामू पुस्तकालयमें पहुँच जाते जहाँ बैठकर हम पुस्तकों द्वारा मन बहलाती होतीं। ऐसा विशेषकर बरसातके दिनोंमें होता था जब गहरी वर्षाके कारण हमारे लिए घरसे बाहर निकलना भी मुश्किल हो जाता था। वे अपनी खास आदतके मुताबिक हमसे पूछ बैठते कि हम क्या पढ़ रही हैं और क्यों? वे बतलाने लगते कि उन्हें कौन-कौन-सी पुस्तकें प्रिय हैं और उन्हें सुनकर हम उनकी रुचिसे अपनी रुचियों-का मिलान करतीं।

"यह कौन-सी किताब तुम पढ़ रही हो," एक बार उन्होंने मुझसे पूछा।

मैंने उन्हें एण्ड्रे मॉरोईकृत 'बायरन' पुस्तक दिखला दी।

"बायरनके साथ मेरा भी थोडा-सा सम्बन्ध रहा है," मामूने कहा। मैंने और बायरनने उसी स्कूल तथा कालेजमें शिक्षा पायी थी—हेरो स्कूल, ट्रिनिटी कालेज, कैम्ब्रिज। हैरोमें पहाड़ीकी चोटीपर स्थित एक चर्चयार्डसे बड़ा सुन्दर दृश्य दिखाई देता है। बायरन वहाँ अक्सर जाया करता था। ट्रिनिटी कालेजमें उसकी एक संगमरमरकी सुन्दर प्रतिमा है।

"वह बहुत ही आश्चर्यजनक आदमी रहा होगा" मैंने अचरज प्रकट करते हुए कहा—"मैं उससे परिचित होना पसन्द करती, क्या ख्याल है आपका?"

"नहीं," मामूने दृढ़तासे जवाब दिया। "मेरा ऐसा खयाल नहीं है उसे चाहना मेरे लिए कठिन मालूम होता है। वह आश्चर्यजनक रूपसे स्वार्थी और स्वकेन्द्रित था! यदि मॉरोई तुम्हें पसन्द हो, तो तुम्हें उसकी पुस्तक 'एरियेल' पढ़नी चाहिये। यह ज्यादा अच्छी किताब है और

मेरे विचारसे बायरनकी अपेक्षा शेली अधिक प्रेमार्ह एवं अधिक प्रशंस्य है।"

इतना कहते-कहते वे किताबोंकी कतारोंमेंसे 'एरियल' खोज निकालनेके लिए अग्रसर हुए।

हम लोगोंका परिवार बड़ी संख्यामें पुस्तकें पढ़नेवाला था और बहुत-सी किताबें जिनके पढ़नेका हमें स्मरण आता है, उक्त पुस्तकालयमें ही पढ़ी गयी थीं, जहाँ ऊँचे-ऊँचे खानोंतक बहुत दिनोंसे पुस्तकें संगृहीत थीं। परियोंकी कहानियोंसे लेकर विधि, (कानून), अर्थशास्त्र तथा राजनीति शास्त्रकी महत्वपूर्ण पुस्तकें तक, सभी तरहके ग्रन्थ वहाँ विद्यमान थे। बहुत-सी किताबें ऐसी थीं जो मम्मी, मामू तथा मौसीकी थीं, जब उनकी उम्र कम थी। हमारे शरीरमें उस समय आनन्दकी एक लहर-सी दौड़ गयी जब डिकेंसकी एक पुस्तक खोलनेपर उसमें बच्चोंकी घसीटी लिखावटमें हमने ये शब्द पढ़े—"यह पुस्तक सरूपकुमारी नेहरू† की है, जुलाई १९१२" "प्रिय बहिन बेट्स* को उसके स्नेही भ्राता जवाहर द्वारा प्रदत्त, १९१८।" यह ऐसा कमरा था जिसमें और लोग भी रह चुके, बैठकर पढ़ चुके थे। इसमें ऐसी कितनी ही पुरानी किताबें थीं, जिनकी स्मृति, पुराने मित्रोंकी तरह, वर्षोंसे कायम रखी गयी थी। यह जानकर कि कुछ ही वर्ष पूर्व मामूने स्वयं वे पुस्तकें पढ़ी थीं और उनसे आनन्द प्राप्त किया था जिन्हें पढ़नेकी सलाह वे हम लोगोंको दे रहे थे, उन्हें पढ़नेकी हमारी खुशी द्विगुणित हो जाती थी। मामूने "एरियल" पुस्तक ढूँढ़ निकाली और मुझे लाकर दी।

"मामू, देशमें चारो तरफ यात्रा करते-करते क्या आपकी तबीयत नहीं ऊबती और न थकावट ही मालूम होती?" रीताने आग्रहपूर्वक पूछा।

मामू फर्शपर आकर हमारे पास बैठ गये। कमरेमें कितनी ही

† सरूपकुमारी नेहरू मम्मीका कुँवारेपनका नाम था। कितनी जगहोंमें यह प्रथा है कि विवाह हो जानेके बाद ससुरालमें वधूको नया नाम दे दिया जाता है। 'विजया लक्ष्मी पंडित' नाम भी मम्मीको उनकी ससुराल में ही दिया गया था।

* मेरी मौसी श्रीमती कृष्णा हठीसिंहका बचपनका प्यारका नाम।

आरामदेह कुरसियाँ पड़ी हुई थीं, किन्तु हम लोग हमेशा दरीपर पेटके बल लेटकर पढ़ना, बात करना अधिक पसन्द करती थीं।

"थक तो जाता हूँ पर ऊबता नहीं" उन्होंने गलती सुधारते हुए कहा—यथार्थताका आग्रह करना उनका स्वभाव ही है—"हाँ, कभी-कभी मैं अवश्य ही थक जाता हूँ।"

"मैं नहीं जानती कि फिर कभी क्या हम लोग नियमित जीवन बिता सकेंगे ?" लेखाने साँस लेते हुए कहा, "और आप, मम्मी, पापू तथा हम सब लोग अन्य लोगोंकी तरह एक साथ मिलकर रह सकेंगे।"

"नियमित ?" मामूने दोहराया, उसे तौलने या उसका अर्थ समझनेकी चेष्टा करते हुए, मानो वह उनके शब्दकोशके लिए उतना ही अनूठा हो जितना उनके जीवनके लिए। "बात यह है, मेरी बच्ची, कि हम लोग एक उलटी दुनियामें रह रहे हैं और ऐसी आशा करना बेकार है कि जीवन आसान होगा। ऐसी दुनियाके अनुकूल अपने आपको बनाना सरल काम नहीं है, विशेषकर उनके लिए जो संवेदनशील हैं। हममेंसे बहुतोंके लिए यह कोई नियमित बात नहीं है कि हम अपने परिवारसे तथा अपने प्रियजनोंसे अलग होकर जेलखानोंमें जीवन बितावें। समझदार मानव प्राणियोंके लिए यह बात अवश्य ही नियमित न मानी जानी चाहिये कि वे अपना सारा समय और सारी शक्ति एक दूसरेकी हत्या करनेमें लगा दें जैसा कि इस समय सारी दुनियामें हो रहा है। इसी तरह यह बात भी नियमित नहीं है कि कुछ लोग तो भूखों मरें और दूसरे लोग आवश्यकतासे अधिक खा जानेके कारण अजीर्णग्रस्त रहा करें। यह सब बहुत ही अनियमित है और अनुचित भी किन्तु यही तो हो रहा है।"

'यही तो ऐसी बात है जिससे हिम्मत टूटने लगती है', लेखाने कहा।

"किन्तु असाधारण समयमें रहनेसे एक लाभ भी है", मामूने कहना जारी रखा, "निस्सन्देह यदि तुममें साहसकी कमी हो और उत्साहका अभाव—जैसा कि मैं समझता हूँ तुममें नहीं है—तो वह लाभ तुम्हें न देख पड़ेगा। ऐसी स्थितियोंमें मनुष्यके सामने कई तरहके नये-नये

रास्ते खुल जाते हैं। ये रास्ते जोखिम और खतरेसे भरे हुए हो सकते हैं किन्तु उन्हें अपनाकर तुम नये संसारका निर्माण कर सकते हो। असाधारण समयमें रहना बड़े साहस और जोखिमका काम है और जीवनमें यदि जोखिम न उठानी पड़े तो वह बड़ा सुस्त और नीरस प्रतीत होने लगेगा; ठीक है न? इसलिए ऐसी स्थितियोंको तुम्हें अधिक सक्रिय बननेका एक तरहका आमन्त्रण समझना चाहिये। तब वे तुम्हें विचलित न कर सकेंगी।"

"मैं चाहती हूँ मामू कि हम लोग आपकी सहायताके लिए सचमुच कोई महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकें", रीताने हार्दिक इच्छा प्रकट करते हुए कहा—"हमसे इतना ही बन पड़ता है कि हम स्कूल चली जाती हैं, कुछ सबक सीख लेती तथा ऐसी ही कुछ और ऊटपटांग बातें कर लेती हैं।"

मामू दिल खोलकर हँस पड़े। "यही वे चीजें हैं जो तुम्हें भावी जीवनके लिए सन्नद्ध कर देंगी", उन्होंने कहा—"उनसे तुम्हारा शरीर मजबूत बनेगा, तुम्हारा मन तलवारकी धारके सदृश चोखा हो जायगा और ऐसे शीलका निर्माण होगा जो सुदृढ़ होगा, अडिग होगा तथा उच्चादर्शोंके निमित्त अर्पित होगा। यही वे चीजें हैं जो तुममें मैं देखना चाहता हूँ। इतना अधिक काम करनेके लिए है कि तुम्हे कुछ ज्ञान हो इसके पहले ही इसका भार उठानेकी तुम्हारी पारी आ जायगी।"

मामू जो कुछ कहते थे वह हमेशा कोई ऐसी चीज होती थी जिसे ध्यानसे सुनना चाहिये, स्मृतिमें सावधानीसे सुरक्षित रखना चाहिये और बादमें भी हमेशा याद रखना चाहिये। मैंने उनसे कहा—"बीबी माँ निरन्तर कहा करती थीं कि ईश्वर भारतको स्वतन्त्रता देगा। क्या आप ईश्वरमें विश्वास करते हैं, मामू?'

सन् १९३८ में ही बीबी माँका देवलोक हो चुका था किन्तु हम लोगोंके लिए वे अभीतक जीवित थीं और वे जिन जिन बातोंमें विश्वास करती थीं, उनका प्रभाव मेरे ऊपर अब भी बना हुआ था।

"इस प्रश्नका उत्तर देना बहुत कठिन है"—मामूने विचारपूर्वक कहा—"यह सब इस बातपर अवलम्बित है कि ईश्वरसे तुम्हारा क्या आशय है। शब्द भी बड़ी धोखेकी चीज होते हैं और लोग विभिन्न अर्थोंमें उनका प्रयोग करते हैं। तब वे व्यर्थकी बहस करने लगते हैं, तैशमें आ

जाते हैं और परेशान होते हैं। यह सारी गलतफहमी बचायी जा सकती है, यदि शुरूमें ही वे उक्त शब्दकी एक दूसरे द्वारा की जानेवाली व्याख्या समझ लें। ईश्वरके सम्बन्धमें मेरे विचार क्या हैं इसपर मैं चाहूँ तो एक पुस्तक लिख डाल सकता हूँ किन्तु यदि तुम्हें मेरी राय जाननेमें दिलचस्पी है तो 'विश्व इतिहासकी झलक' में दिया हुआ 'धर्म' विषयक अध्याय क्यों नहीं पढ़ लेतीं ? उसमें विस्तारसे तो कुछ नहीं कहा गया है, फिर भी उससे तुम्हें कुछ आभास या बोध हो जायगा।"

"मनुष्यका कुछ-न-कुछ विश्वास तो होना ही चाहिये, ठीक कह रही हूँ न ?" लेखाने अस्पष्ट सा सुझाव दिया—"मेरा मतलब यह है कि किसीको भी जीवनमें यह महसूस करते हुए नहीं रहना चाहिये कि मेरे सिवा अन्य किसी चीजका महत्त्व ही नहीं है।"

"बात बिलकुल ठीक है"—"मामूने स्वीकार किया और यह जान लेना महत्त्वपूर्ण है कि किस चीजमें विश्वास करना, किसमें नहीं। फिर भी यह हमेशा बेहतर होता है कि हम समस्त बातोंपर खुद ही विचार कर देखें और अपनी ही निष्पत्तियोंपर पहुँच जावें, बजाय इसके कि हम स्वयं तो कुछ न सोचें और दूसरे लोग जो कुछ कहें उसे आँख मींचकर मान लें। हमें दूसरोंसे अवश्य मदद लेनी चाहिये किन्तु जबतक हम अपना रास्ता खुद न ढूँढ निकालेंगे तबतक हम अधिक दूरतक नहीं जा सकते। मुख्य चीज यह है कि हमें अपने मानसकी सभी खिड़कियाँ ज्ञानागमके लिए खुली रखनी चाहिये। तुम जानती हो कि मन ही वह सबसे बड़ी वस्तु है जो मनुष्यको प्राप्त है। जो लोग अपने मनका उपयोग नहीं करते, वे शायद "मानव" शब्द से संबोधित किये जाने योग्य भी नहीं हैं। निस्सन्देह हमारा मन सभी समस्याओंको सुलझा नहीं सकता, किन्तु उनके सुलझानेमें हमारी सहायता अवश्य कर सकता है।"

"खुद ही इसका निश्चय कर लेना कि क्या सही है, क्या गलत, और किस बातका विश्वास करना, किसका नहीं, यह बहुत ही कठिन है। मनुष्य उनपर बराबर सोचता रह सकता है किन्तु संभव है कि कोई भी काम करनेका निश्चय वह न कर सके," मैने टीका करते

हुए कहा।

"हाँ, यह बहुत मुश्किल है और कोई भी निश्चय करना भारी जिम्मेदारीका काम है किन्तु इन सब प्रश्नोंके सम्बन्धमें विचार करते समय मनुष्यको कोरी अटकलबाजीके फेरमें न पड़ना चाहिये। उससे कुछ भी लाभ न होगा। अपने साथके प्राणियों, बंधुओंको समझ सकना तथा उनकी बेहतरीके लिए प्रयत्न करना ही इस दुनियामें काफी बड़ा काम है। हमें यह बात कभी न भूलनी चाहिये। हाँ, तो अब मैं पूछता हूँ कि हमारे इन छोटे 'दर्शन शास्त्रियों'के लिए चाय पीनेका समय क्या अभीतक नहीं हुआ ?"

इसी समय, मानो किसी संकेतकी प्रतिक्रियास्वरूप, सुन्दर प्रसन्नतापूर्वक यह कहते हुए कमरेमें प्रविष्ट हो गया कि चाय नीचेकी मंजिलमें तैयार है।

× × ×

अमेरिकामें जिन प्रसिद्ध-प्रसिद्ध व्यक्तियोंसे हम लोग मिलीं, उनमेंसे कुछके साथ हमारा परिचय पुस्तकोंके जरिये हुआ। पॉल रोबसन भी उनमेंसे एक थे और दूसरी थी प्रशंसनीय एवं साहसपूर्ण हेलेन केलर। लेखा तथा मैं पर्ल बककी पुस्तक 'ड्रैगन सीड'के चित्रमय प्रथम प्रदर्शनके समय न्यूयार्कमें उनसे मिली। कोई इसपर विश्वास नहीं कर सकता था कि वह, जो बचपनसे ही अंधी बहरी थीं, ऐसा भरा-पूरा तथा दिलचस्प जीवन बितानेमें सफल होंगी और एक चित्र 'देखने'के लिए आयी होंगी। पुस्तक वह पहले ही पढ़ चुकी थीं और चित्रको उसके प्रकंपनों द्वारा 'सुनना' चाहती थीं। हमने उनसे हाथ मिलाया और उन्होंने वह सब 'सुना' जो हमने कहा था, उन प्रकंपनों द्वारा जो हमारी वाणीसे उत्पन्न हो गये थे। जब हम बोल रही थीं, तब उन्होंने हमारे ओठोंके पास अपनी दो अँगुलियाँ रखी थीं। उनके सदृश प्रसन्न आशावादीसे भेंट करनेपर अपने आपके प्रति झेंपसी मालूम होती थी।

हम लोगोंके 'किताबी' दोस्तोंमेंसे एक और थी पर्ल बक। अमेरिकामें वे हमारे लिए श्रीमती वाल्श हो गयीं और मैंने तथा रीताने एक ग्रीष्मावकाश वाल्शके देहाती मकान पैनसिलवेनियामें बिताया।

वह एक बड़ा मकान था, जिसके चारो तरफ विस्तृत दूर्वाक्षेत्र था और पास ही लगा हुआ खेत था। मकान एक साथ ही सुन्दर, आराम-देह तथा अतिथियोंके स्वागत योग्य था। वह बच्चोंके शोरगुल और हँसीसे गूँजता रहता था और अच्छी बहुमूल्य पुस्तकों, मनोरंजक बात-चीत तथा सौहार्द एवं सद्भावनाकी सम्पत्तिसे सम्पन्न था। श्रीमान् तथा श्रीमती वाल्शके सिवा परिवारमें जैनिस था, जो करीब-करीब हमारी उम्रका था तथा चार छोटे बच्चे थे—रिचर्ड, एडगर, जानी और जीन।

हम लोगोंने पेनसिलवेनिया डच देहाती क्षेत्रसे परिचित होनेकी चेष्टा करते हुए और आसपासके ऐतिहासिक स्थानोंके दर्शन करते हुए आलस्यपूर्वक गरमीके दिन बिताये। वाल्श दम्पतिके पुस्तकालयकी भी छानबीन हमने कई दिनोंतक की। कभी-कभी छीमी छीलनेमें सहयोग देकर हम लोग रसोइयेकी मदद कर देती थीं और रातमें गरमीके कारण रहनेवाले कमरेके सामने पत्थरके टुकड़ोंसे पटे हुए फर्शपर तारोंके नीचे सोया करती थीं।

हमें ऐसा प्रतीत होता था कि अमेरिकी जीवनमें जो कुछ भी बुद्धिमत्तापूर्ण एवं सभ्य था, सब इस मकानमें मिल सकता था, इन-लोगोंके दृष्टिकोणमें तथा जीवन-सम्बन्धी इनके विचारोंमें। श्रीमती वाल्शने एक कथा हमें बतलायी जिससे प्रकट हुआ कि उन्होंने किस तरह अपने बच्चोंको वस्तुओं तथा व्यक्तियोंकी कद्र करनेकी भावना सिखलायी, आजकी दुनियामें जहाँ धर्म तथा रंगके आधारपर कितने ही गलत मूल्य प्रचलित हैं। कई वर्ष पहलेकी बात है, जब वे चीनमें थीं, एक दर्शक उनसे मिलने के लिए उनके मकानपर पहुँचा। जैनिसने, जो उस समय ९-१० वर्षका था, आगन्तुकको बैठ जाने दिया और स्वयं माताको सूचित करनेके लिए गया।

"माँ, आपसे मिलनेके लिए एक महाशय आये हैं।"

"वे चीनी हैं या अमेरिकन?" श्रीमती वाल्शने पूछा, क्योंकि वे एक चीनी मित्रकी प्रतीक्षा कर रही थीं और जानना चाहती थीं कि वे सज्जन आ गये या नहीं।

"मैं नहीं जानता। मैंने उनसे पूछा नहीं। क्या मैं पता लगा लूँ?"

"कोई बात नहीं," श्रीमती वाल्शने मुस्करा कर कहा और अपने चीनी दोस्तसे मिलनेके लिए चली आयीं।

हम लोग श्रीमती वाल्शकी न थकनेवाली कार्य-शक्ति तथा जीवनके प्रति अनुराग देखकर दंग रह गयीं। वे अक्सर कहा करती थीं कि मैं जो कुछ करना चाहती हूँ, उसे पूरा करनेके लिए एक जिंदगीका समय बहुत अपर्याप्त है। जीवनका कामकाज उनके लिए न तो कोरी वास्तविक घटना थी और न मात्र बँधा हुआ रोजमर्राका काम। वह एक ऐसा साहसका काम था जो कितना ही प्राप्त हो, अपर्याप्त ही प्रतीत होता था। वे समझती थीं कि जीवन स्वयं ही सबसे बड़ी देन है जिसकी कल्पना की जा सकती हो, क्योंकि वह ऐसे उपाय सामने लाकर रख देता है जिनकी सहायतासे इस अगणित रूप-रंगवाले संसारकी छानबीन की जा सके।

श्रीमती वाल्श बहुतसे और कई तरहके कामोंमें दिलचस्पी लेती थीं। बौद्धिक तथा राजनीतिक प्रश्नोंसे लेकर उनके घरके तथा खेतके प्रतिदिनके मामलेतक इनमें आ जाते थे। इन सबसे अधिक, मैं समझती हूँ कि उनकी दिलचस्पी लोगोंमें, जनतामें थी। हम लोगोंसे भेंट होनेके कई वर्ष बाद उन्होंने मिश्रित राष्ट्रीयताके अवांछित (अवैध) बच्चोंके लिए 'वेलकम होम' नामक संस्थाकी स्थापना की थी, मानव प्राणियों तथा उनकी समस्याओंमें उनकी गहरी दिलचस्पीका यह केवल एक प्रमाण है।

× × ×

अमेरिका अपने सुन्दर परिवार-गृहोंके लिए प्रसिद्ध है। न्यूयार्कमें प्रथम मास बिताते समय लेखा और मैं सुश्री डोरोथी नारमनको देखनेके लिए गयी थीं। जब हम तीन हिस्सोंवाले उनके कमरेको जानेवाली, दरीसे ढँकी हुई सीढ़ियोंपर चढ़ रही थीं, तब दीवारपर टँगे हुए रेखा-चित्रों तथा तसवीरोंको देखकर हम उनकी प्रशंसा किये बिना न रह सकीं। बैठकमें पहुँचनेपर हमारी आवाज अपने आप दबी हुई फुस-फुसके रूपमें परिणत हो गयी और मोटे गलीचेपर हम पैरके पंजेके बल चलनेको बाध्य हुईं। हमने अच्छे सुन्दर-सुन्दर चित्र वहाँ देखे, और हर टेबिलपर जो उपलब्ध हो सकी राजनीति, कविता, शिल्प

तथा रंगमंच सम्बन्धी आधुनिकतम पुस्तकोंकी ऊँची-ऊँची कतारें, चमचमाती हुई नयी पत्रिकाएँ कमरेभरमें आडम्बरके साथ फैलायी हुई, एक दीवारमें लगी हुई शीशेकी ईंटें तथा सुन्दर, सुडौल टेबिल, कुर्सी आदि सामान देखा। यह थी आधुनिकतम सजावट जैसी हमने केवल पत्रिकाओंके उन चित्रोंमें ही देखी थी जिनमें कमरोंके भीतरी भागका प्रदर्शन किया गया रहता था।

हम उस समय खुशीसे उछल पड़ीं जब डोरोथी कमरेमें आ गयीं और वहाँ छायी हुई नीरवता भंग कर उन्होंने हमारा स्वागत किया। जब हमने उन्हें बतलाया कि उनकी सुरुचिसे हम कितनी अधिक प्रभावित हो उठी थीं, तो वे हँस पड़ीं। लोगोंकी आवाजोंके प्रति संवेदनशील होनेके कारण हमने देख लिया कि उनकी बोली मन्द और मधुर थी और उनका समस्त व्यक्तित्व मानो उनकी सौम्य, शीतल वाणीका ही प्रतिबिम्ब था।

डोरोथीका सुन्दर मकान हमारे लिए अपने घरके समान हो गया और हमने देखा कि वे उन इने-गिने लोगोंमेंसे थीं जिनके साथ लोग अपेक्षाकृत थोड़ा-सा परिचय होनेपर भी बेतकल्लुफीसे बातचीत कर सकते हैं। मेरी तो वे निकटवर्त्तिनी सखी बन गयीं, क्योंकि परस्परकी बातचीतसे मालूम हुआ कि हम लोगोंकी बहुत-सी रुचियोंमें—चाकलेट मिल्क शेक*से लेकर वेदान्त तथा आधुनिक काव्यतक—समानता है। मैं किसी भी विषयपर उनके साथ बातचीत कर सकती थी और इस बातका भरोसा कर सकती थी कि वे शान्तिपूर्वक उसे समझने की चेष्टा करेंगी।

जब मुझे लम्बी छुट्टियाँ पहली बार डोरोथीके आवासमें बितानेका निमंत्रण मिला, तब लेखा भारत लौट चुकी थीं और रीता स्कूलमें अध्ययन कर रही थी। मैं न्यूयार्क तो पहुँच गयी पर मनमें कुछ घबरहट-सी थी क्योंकि यह पहली यात्रा थी जिसमें मैं अपने आप, बिलकुल अकेली आयी थी। मैंने दरवाजेपर लगी हुई घंटीका बटन दबाया जिससे भीतर वह मधुर आवाजमें बज उठी। एक क्षणके बाद एक रक्तवदना लड़कीने जो काली फ्राक तथा सफेद ओढ़नी पहने हुई

* दूधमें अंडेका पीतांश मिलाकर हिला देनेसे बना पेय।

थी, आकर दरवाजा खोल दिया। 'मेरी' आइरिश बालिका थी किन्तु उसने अमेरिकन संस्कृतिकी पुकारपर अपने आपको अर्पित कर दिया था।

"अच्छा, तुम आ गयीं तारा!" उसने प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा। उसने मेरे कोमल भारतीय नामका इस तरह उच्चारण किया जिससे वह "तारा"के बजाय "टेरार्" (विभीषिका) जैसा सुनाई दिया।

उसने इधर-उधरकी प्रारंभिक बातें नहीं पूछीं जिससे मेरी परेशानी दूर हो गयी। "वे लोग सब बाहर गये हुए हैं," उसने बादमें कहा, "किन्तु तुम धड़ल्लेसे भीतर चली आओ और उसी तरह आजादीसे रहो जिस तरह अपने घरमें रहती हो।"

मैं उसके पीछे-पीछे रसोई-घरतक चली गयी, जो बहुत ही साफ-सुथरा और समुज्ज्वल था। वहाँ टूटदार मेजपर सफेद चारखानेका मेजपोश बिछा हुआ था।

"बैठ जाओ" उसने मानो आदेश देते हुए मुझसे कहा—"तुम्हें भूख अवश्य लगी होगी। इसके सिवा, तुम्हें अपना वजन बढ़ानेकी भी आवश्यकता है। आखिर कालेजके लोग वहाँ करते क्या हैं, तुम सबको भूखा रखते हैं क्या?"

मैं हँस पड़ी। फिर मैंने समझाया यदि मैं आजसे लेकर बड़े दिन (२५ दिसम्बर) तक खूब खाती रहूँ तो भी अधिक मोटी नहीं हो सकती। मैं हमेशासे ही दुबली-पतली रही हूँ।"

"हम लोग शीघ्र ही यह देख लेंगी," उसने दृढ़तासे कहा और एक तश्तरीमें (गेहूँ जैसे अन्न) राईकी बनी पावरोटीका मोटा सा टुकड़ा तथा पीली-पीली शिखरन ले आयी और उसे मेरे सामने रख दिया। फिर उसने हिमीकर (रेफ्रीजरेटर) से फेनयुक्त बीयर शराबकी बोतल निकाली और झटकेसे उसका काग खोलकर उक्त फेनिल पेय दो लम्बे-लम्बे गिलासोंमें उड़ेल दिया।

मैं भौंचक्का होकर देखती रही जब उसने एक गिलास मेरे हाथमें थमा दिया और दूसरा उठाकर अपने ओठोंसे लगाते हुए प्रसन्नतापूर्वक बोली "तुम्हारे नामपर मैं इसे खाली कर रही हूँ। मुझे आशा है कि

यहाँ तुम्हें यह चीज पसन्द आयेगी।"

जबतक डोरोथी परिवार लौटकर वापस घर आया, तबतक मेरी और मैं एक दूसरीसे अच्छी तरह परिचित हो चुकी थीं और यह स्पष्ट प्रतीत होता था कि यह परिचय शीघ्र ही स्थायी मैत्रीका रूप ग्रहण कर लेगा, क्योंकि मदिराके बन्धनने हम दोनोंको एक दूसरीके प्रति काफी मुलायम एवं अनुरागशील बना दिया था।

डोरोथीने अपने कमरेकी लम्बी-सी, चिपटी ताली मेरे हाथमें दे दी और कहा कि जब तुम्हारी इच्छा हो, तुम कमरेमें आ-जा सकती हो।

"कमसे कम एक रात्रिका कार्यक्रम खाली रखना जिसमें हमारे परिवारके साथ तुम भोजन कर सको," वे मुझे बराबर स्मरण दिलाती रहतीं किन्तु एक क्या, मैं तो कई रातोंमें उन लोगोंके साथ खुशी-खुशी भोजन करनेको तैयार थी। उनके परिवारके साथ बैठनेमें जो आनन्द आता था, वह तो मिलता ही, उसके सिवा न्यूयार्कके कितने ही कला-विदों तथा साहित्यकारोंसे मिलना, जिन्हें श्रीमती डोरोथी बराबर ही दावत दिया करती थीं, बड़ा शिक्षाप्रद कार्य था।

× × ×

न्यूयार्कके निचले हिस्सेके एक मकानमें एली और रज्जाक रहते थे। सड़ककी सतहसे दो सीढ़ियाँ नीचे उतरकर जब हम सामनेके दर-वाजेसे उसमें प्रविष्ट हुईं, तब हमने इस बातका खयाल ही नहीं किया था कि वह न्यूयार्ककी हमारी स्मृतिका इतना बड़ा अंश बन जायगा।

एली अमेरिकन थी बल्कि इससे भी अधिक, जैसा कि वह अपनी तिरछी नीली आँखोंकी पलकें झपकाकर हमेशा कह दिया करती थी, वह बोस्टोनियन थी। रज्जाक दक्षिण भारतके रहनेवाले थे। उनका घर दो बातोंका, अमेरिकन संस्कृतिके भले, शान्त व्यवहारके साथ भारतकी दार्शनिक शान्तिका मिश्रण-सा प्रतीत होता था। यह एक विचित्र बात है कि वे ऐसे शहरमें भी आत्म-पूरितसे थे, जहाँ किसीको मनोरंजनके लिए अपने ही साधनोंपर निर्भर रहना आवश्यक नहीं। न जाने कैसे वहाँ रहस्यमय ढंगसे मनमें यही धारणा होती थी कि उनके घरके ठीक बाहर कोई सड़क न होकर एक बाग था। अन्यथा वहाँ परम शान्ति एवं शीतलताकी ऐसी भावना कैसे व्याप्त हो सकती थी यदि वह ताजा

और पुष्पगंधमय समीरके झोंकोंसे वहाँ न फैलायी गयी होती।

हम लोग रातको देरतक जागती रहीं और उनसे बहुतसे विषयों-की चर्चा होती रही। एली, जो कभी भारत नहीं आयी थी, हमारे बच-पनकी बातें सुनना पसन्द करती थी और हमारे मुँहसे सुना हुआ विवरण रज्जाक द्वारा किये गये अपने घरके वृत्तान्तमें मिलाकर एक मानस चित्र-सा तैयार कर लेनेका प्रयत्न करती थी।

हम स्वच्छन्दभावसे एलीसे बातचीत करती रहीं और जब हमने अमेरिकन जीवन तथा विस्तृत संसारकी अभद्र आलोचना शुरू की तो तो उसने भी हमारा साथ दिया। रज्जाक हम लोगोंके लिए एक तरहसे ऋषिके समान थे और हम बड़े आदरके साथ उनका उपदेश सुनती रहीं, यद्यपि हमने उनके तथाकथित परिवर्त्तनविरोधी विचारोंके कारण उन्हें बेरहमीसे तंग भी किया। पुरानी दुनिया जैसी वीरताकी भावना उनमें इस तरह भरी हुई थी जिस तरहकी शायद ही हमने किसीमें देखी हो। उनकी संगतिमें हम अपने आपको मानों राजकुमारियाँ समझती थीं, क्योंकि उन्होंने तथा उनकी पत्नी एलीने भी हम लोगोंको बिगाड़ रखा था।

उन्हींके घरमें जब खूब ठंढ पड़ रही थी और पाला गिरा हुआ था, जनवरीमें सबेरेके वक्त हमें पापूकी मृत्युका समाचार मिला। ऐसे समय हम अमेरिकामें इससे और बढ़िया स्थानमें रही नहीं सकती थीं, जैसी इस प्रेमभरे और मौन सहानुभूति के गृहमें हम थीं।

अध्याय १४

शिक्षाके सम्बन्धमें कुछ विचार

हमारे माता-पिताके कितने ही परिचितोंने हमारा अमेरिका भेजा जाना पसन्द किया था किन्तु औरोंको यह चीज अच्छी नहीं लगी। इन दो विभिन्न दृष्टिकोणोंका परिचय उन दो पुस्तकोंसे बढ़कर और किससे मिल सकता था जो मम्मीके पास हम लोगोंके घरसे प्रस्थान करनेके कुछ ही पहले भेंटस्वरूप भेजी गयी थीं। एक बड़ी सुन्दर जिल्दवाली सचित्र पुस्तक थी—दि फ्लावरिंग ऑफ् न्यू इंग्लैण्ड—जिसके प्रथम पृष्ठपर ये शब्द लिख दिये गये थे—इस पुस्तकके द्वारा आपको 'संयुक्त राष्ट्र अमेरिकाके उस हिस्सेका, जहाँ आपकी लड़कियाँ जा रहीं हैं, अधिक अच्छा परिचय मिलेगा।' दूसरी पुस्तकमें बहुतसे आँकड़े दिये हुए थे, विवाह-विच्छेद, अपराध और अमेरिकामें प्रचलित यौन रोगों आदि सम्बन्धी। इसके साथके नोटमें कहा गया था कि जवान लड़कियोंको बिना संरक्षकके परदेशमें भेजना खतरनाक होगा। यह दूसरी पुस्तक वैसी ही हास्यास्पद थी जैसे वे आकारपत्र (फार्म) थे जिन्हें प्रवेशपत्र (वीजा) पानेके पूर्व भरकर देना पड़ता था। उनमें इस ढंगके प्रश्न दिये रहते थे—

१. तुम दुर्बलमना हो या जड़बुद्धि ?

२. साफ-साफ बतलाओ कि क्या तुम्हारी योजना संयुक्तराज्योंकी सरकारको उलट देनेकी है।

हमने अधिकारियोंको समझाकर बाह्य रूपसे सन्तुष्ट कर दिया कि हमारे मन और बुद्धिमें कोई दोष नहीं और न सरकारको उलटनेका हमारा कोई गुप्त इरादा है। इसी तरह हम अपने आपको उस दारुण दुर्भाग्यसे भी बचा सकीं जिसके सम्बन्धमें मम्मीके शुभाकांक्षी मित्रने चेतावनी दी थी।

हम साड़ी पहने ही वेलेस्ली पहुँचीं। वहाँ लापरवाहीसे कपड़े

पहने हुई नवयुवतियोंकी भीड़में हमें बड़ा 'अनकुस' सा लगता था। जिस छात्रावासमें मुझे जगह दी गयी थी, वहाँकी लड़कियोंको यह जानकर आश्चर्य हुआ कि कि मैं धूम्रपान नहीं करती, न (ओंठ रंगनेके लिए) लिपिस्टिकका प्रयोग करती हूँ और न पूर्व-निर्धारित समय तथा स्थानपर कभी भी किसीसे मिलने बाहर गयी। वे अनौपचारिक और सीधे-सादे ढंगसे बातचीत करतीं तथा शीघ्र ही मित्र बन जानेको तैयार रहती थीं। वे झुण्डकी झुण्ड टहलती हुई मेरे कमरेमें घुस आतीं, बिस्तरेपर तथा डेस्कपर बैठ जातीं और बेफिक्र-सी होकर फर्शपर कुहनियोंके बल पसर जाती थीं। इस बीच वे अगणित सिगरेट पी डालतीं और प्रश्नोंकी झड़ी-सी लगा देतीं। वे अपने आपको काबूमें रखे हुए थीं और बड़ी बेफिक्र-सी थीं जिससे मुझे उनके सामने और भी लज्जा मालूम होती थी और उनकी तुलनामें मैं अधिक बेतकल्लुफ-सी भी नहीं हो पाती थी।

"किन्तु यदि भारतमें तुम लोग पूर्व योजनानुसार किसीसे मिलने-जुलने नहीं जातीं तो संध्याकालमें तुम लोग करती क्या हो ?"

किसी-न-किसी तरह मेरे पास बहुत काम रहता था। या तो मैं अपनी सखियोंके यहाँ चली जाती थी या घरमें ही रहकर कुछ पढ़ती रहती या कभी-कभी सिनेमा देखने चली जाती थी। मेरी तबीयत कभी ऊबने नहीं पाती थी। किन्तु इन चतुर, आत्मविश्वासी युवतियोंको, जो मुझसे अधिक दुनियादार (व्यवहारकुशल) मालूम होती थीं, हर बात अच्छी तरह समझा सकना मुश्किल काम था।

"इसे आप कैसे पहनती हैं ?" मेरी साड़ीकी ओर संकेत करती हुई वे जोरसे पूछ बैठीं।

जब मैंने पहिननेका ढंग बतला दिया तब उन्होंने मेरी साड़ियोंसे अपने आपको ढँक लिया और एक दूसरीकी ओर हँसते हुए तथा टाँगोंसे साड़ियोंके टकरानेपर अनकुस सा अनुभव करते हुए, बरामदेमें कवायद करने लगीं।

"अगर यह साड़ी गिर पड़े तो ? क्या इसे पहनकर तुम अपनेको पूर्ण सुरक्षित समझती हो ? आलपीन या कोई चीज खोंसे बिना भी यह अपने स्थानपर बनी रहेगी ?"

"हजारों वर्षोंसे यह पहनी जाती रही है पर आजतक कभी गिरी नहीं," मैंने जवाब दिया "और यदि वह गिरने ही लगे तो मैं समझती हूँ कि हम लोग उसे यथास्थान बनाये रखनेका कोई उपाय सोच ही लेंगी।"

"यह मुझे नहीं खिल सकती क्योंकि मेरी चमड़ी और मेरे बालोंका रंग कुछ पीलापन-सा लिये हुए है," एक लड़कीने निराशाके भावसे कहा—"इसे पहननेके लिए तो काले-काले बाल और काली आँखें चाहिये जैसी आपकी हैं।"

मैंने समझानेकी चेष्टा की किन्तु व्यर्थ हुआ कि साड़ी पहनकर कोई महिला किस तरह चलती-फिरती है, यही बात विचारणीय है। किसीके बाल या आँखें किस रंगकी हैं इससे साड़ी पहननेसे कोई मतलब नहीं।

"कभी-कभी अपनी आँखोंमें आप यह क्या चीज लगा लेती हैं?"

मैंने उन्हें समझाया कि यह काजल है और इसे तैयार करनेके अनेक तरीके हैं।

"एक तरीका तो है जलती हुई बादामके ऊपर चाँदीका चम्मच थामे रहना। चम्मचपर जो कालिख इकट्ठी हो जाती है, वह निकाल ली जाती है और शुद्ध मक्खनमें मिलाकर आँखोंकी कोरोंपर लगा ली जाती है। दूसरा तरीक़ा है सरसोंके तेलका दिया जला देना और उसकी लौके ऊपर चाँदी या अन्य धातुकी तश्तरी या कटोरी रख देना। इस प्रकार बत्तीके जलते रहनेसे तश्तरी या कटोरीमें कालिमा इकट्ठी हो जायेगी। थोड़ा-सा मक्खन लेकर उसे निकाल लो और फिर आँखों-में लगा दो। अक्सर इतना काजल तैयार हो जाता है कि वह कजरौटे-में रख लिया है और महीनों या सालभर तक इस्तेमाल किया जाता है।"

"किन्तु उससे आँखोंको नुकसान नहीं पहुँचता?" उन्होंने विश्वास न करते हुए पूछा। उन्हें वह जादूका एक पुराना तरीका-सा प्रतीत हुआ जो उनकी भारत सम्बन्धी अनोखी कल्पनासे मेल खाता था।

"जी हाँ, वह बिलकुल ही निरापद है," मैंने हँसते हुए विश्वास दिलाया—"वस्तुतः वह निरापद ही नहीं वरन् आँखोंके लिए लाभदायक भी माना जाता है। हमारा विश्वास है कि उसमें ठंडक पहुँ-

चानेका गुण होता है। वह छोटे बच्चोंतककी आँखोंमें लगाया जाता है।"

"अब आप भारतमें अपने जीवनके किसी विशिष्ट दिवसकी बात हमें बतावें," उन्होंने कहा।

अभीतक जितने प्रश्न पूछे गये थे, उन सबसे कठिन था इसका उत्तर देना। 'विशिष्ट दिवस' से उनका अभिप्राय उस दिनसे था जब कोई ऐसी घटना हुई हो जो असाधारण हो, अनोखी हो और उनके अनुभवसे बिलकुल भिन्न हो। मैं प्रयत्न करने पर भी उसपर इतना भारतीय रंग नहीं चढ़ा सकती थी जिससे किसी रहस्यमय और जादू-भरी घटनाके लिए उनकी उत्कट अभिलाषा शान्त हो सकती। उनके लिए मैं पर्याप्त रूपसे भारतीय नहीं थी और मेरा 'विशिष्ट' दिन भी बहुत कुछ उनके ही दिनके समान था।

"किन्तु इसी तरह तो हम लोग भी रहती हैं," उन्होंने कुछ निराशा-का सा भाव प्रकट करते हुए कहा।

"मैं समझती हूँ, सारी दुनियामें बहुतसे लोग इसी तरह रहते हैं," मैंने कहा, "फिर भी हम एक दूसरेके बारेमें यह बात नहीं समझ पाते। हमारा ध्यान केवल विभिन्नताओंकी ओर ही जाता है।"

धीरे-धीरे उन्हें यह बात मालूम हो गयी कि यद्यपि मैं देखने-सुनने-में कुछ भिन्न-सी लगती थी और मेरी वेशभूषा भी दूसरे तरहकी थी, फिर भी मैं कई बातोंमें उन्हींकी तरह थी। हम लोगोंमें मित्रता हो गयी।

वेलेस्लीमें एक सबसे अधिक सुन्दर विद्यालय-क्षेत्र है, यद्यपि वह देश ही विश्वविद्यालयोंके सुन्दर क्षेत्रोंके लिए प्रसिद्ध है। वह बहुत ही मनोरम जगह थी जो हम लोगोंने देखी थी, जिसमें ४०० एकड़ भूमिके मैदान, उसकी झील और उसकी गॉथिक निर्माणशैली तथा हाथी दाँतसे ढँके मकान आदि थे। अकेले वे मैदान ही इतने सुन्दर थे कि शुरूमें सप्ताहोंतक उन्हींमें मन उलझा रह सकता था।

"वह एक तरहका देहाती क्लब है!" मैंने प्रसन्नता प्रकट करते हुए लेखासे कहा, यद्यपि अभीतक मैंने एक भी देहाती क्लब नहीं देखा था—"मैं बार-बार यह भूल जाती हूँ कि यह एक महाविद्यालय है।"

"बेहतर हो कि तुम यह बात स्मरण रखना आरम्भ कर दो",

लेखाने शान्त भावसे कहा—"नहीं तो तुम्हें जबरन इसका स्मरण दिलाया जायगा, जब तुम्हारे प्राप्तांक घर भेजे जायँगे।"

इसलिए मैं जोरोंसे अपने पाठ्यक्रममें जुट गयी और मैंने अपने चार वर्षके कार्यकी उच्चाकांक्षापूर्ण योजना बना ली। इसमें मैंने उन चीजोंका ध्यान रखा जिन्हें पूरा करना मेरे लिए बी० ए० डिग्री प्राप्त करने योग्य समझे जानेके लिए आवश्यक था। स्वदेशकी तरह यहाँ अपने चुनावपर ही सब कुछ निर्भर न था। यहाँ एक या दो विषय विशेष योग्यताके लिए चुननेके सिवा कई विभिन्न विषयोंका अल्पज्ञान भी होना चाहिये। मेरे लिए जितने विषय लेना आवश्यक था उन्हें देखते हुए, अब मुझे यूरोपके तथा अमेरिका, चीन, जापान आदिके इतिहासकी भी थोड़ी जानकारी होनी चाहिये एवं ग्रीसके तथा आधुनिक दर्शनका, बाल-मनोविज्ञानका, स्पेनिश एवं रूसी भाषाका, यूरोपीय कलाके इतिहास, आदिका ज्ञान होना चाहिये। निराशाके अवसरोंपर मुझे यह सोचकर तसल्ली होती थी कि कमसे कम अब तो मुझे भोजनके बादकी बातचीतके लिए अधिक परेशान न होना पड़ेगा, इन प्रकाण्ड विषयोंमेंसे कोई मेरी सहायताके लिए तुरन्त दौड़ पड़ेगा।

मैं अपने काममें गहरी रुचि लेने लगी और उसे अच्छी तरह करती थी, यद्यपि बहुत तेजीसे नहीं। लेखाकी और मेरी यह राय थी कि यद्यपि हम पढ़नेके लिए ही यहाँ आयी हैं, फिर भी पढ़ने-सीखनेका काम अपने वर्गों या कक्षाओंतक ही सीमित रहे, यह आवश्यक न था। पासमें ही बोस्टनका लुभावना शहर था जहाँ घूमना-फिरना, विभिन्न स्थान देखना अभी बाकी था, वहाँ सप्ताहान्तका बहुत-सा समय हम व्यतीत किया करती थीं। हमें कई कारणोंसे वह भावोत्तेजक लगा। वह अमेरिकन क्रान्तिकी कई महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाओंका स्थान था। [हम लोग इसे बराबर अमेरिकाका स्वातंत्र्य युद्ध कहती थीं किन्तु अमेरिकन मित्रोंने हमें निश्चयपूर्वक सूचित किया कि वह इस तरहकी चीज न थी।] फिर बोस्टनमें सांस्कृतिक अनुसंधानके भी कई साधन सुलभ थे। वह अपने अद्भुत संग्रहालयों, कलाकृतियोंके उत्कृष्ट संग्रहों, देशके सबसे सुन्दर वृन्दवाद्योंमेंसे एकके लिए प्रसिद्ध था। उसे यह विशेष सम्मान भी प्राप्त था कि कितने ही नाटकोंका

प्रथमाभिनय वहाँकी नाट्यशालाओंमें हुआ करता था, उसके बाद ही वे न्यूयार्कमें अभिनीत होते थे। इसलिए वहाँ जाकर हम महाविद्यालयकी शिक्षाकी पूर्ति अच्छी तरह कर सकती थीं।

केवल एक बार ही मुझे ऐसा लगा, जैसे मैं शिक्षित महिलाके आदर्शसे अभी दूर हूँ। यह उस समय हुआ जब भारतसे एक विख्यात परिदर्शक वेलेस्ली आये और मैं उन्हें विद्यालय-क्षेत्रमें घुमाने ले गयी। पहले तो मुझे यह देखकर परेशानी हुई कि वे आश्चर्यसे मेरी ओर टकटकी लगाये हुए हैं। इतनेमें मैंने जो अपने ऊपर नजर डाली तो मेरी सूरत-शकल बहुत अच्छी न थी। वेलेस्लीकी अपनी संगिनियोंकी तरह कपड़े पहननेकी मेरी आदत पड़ गयी थी और मैं भूल गयी थी कि ऐसी वेशभूषा किसी अजनबीकी अकुशल आँखोंमें कितनी भयावह जँचेगी।

कालेजमें फैशनका रास्ता बतलानेवाली प्रमुख युवतियोंकी आज्ञाके अनुरूप ही मैं कपड़े पहिने हुई थी—पैण्टका निचला हिस्सा ऊपरकी तरफ, घुटनोंतक मुड़ा हुआ, भद्दी-सी लगनेवाली कमीज जो मेरे आकारसे कई गुनी अधिक बड़ी थी और जो पेटके बाहर लटक रही थी, और मेरे कंधोंपर पड़ा हुआ जीर्णशीर्ण-सा बरसाती कोट जो कितने ही संकटोंका सामना सफलतापूर्वक कर चुका था। सौभाग्यसे मेरे बालोंको छल्लेदार बनानेकी कभी आवश्यकता नहीं पड़ती थी, नहीं तो वे खींचतानकर सिरके चारों तरफ छल्लोंमें फँसा दिये गये होते और ऊपरसे लम्बा-सा रेशमी रूमाल बाँध दिया गया होता। जो हो, उस समय मैं अवश्य ही ऐसी गरीबसे गरीब सम्बन्धिनी-सी लगती रही होऊँगी जो रातभर उत्ताल तरंगोंसे असफल संघर्ष करती हुई किनारेपर उछाल दी गयी हो। मेरे अतिथि अब भी अविश्वासकी आँखोंसे मेरी ओर देख रहे थे और मैं हकलाकर उन्हें समझा रही थी कि विद्यालय-क्षेत्रमें प्रत्येक लड़कीको यही परिधान धारण करना पड़ता है। उनके मनमें 'क्यों ? आखिर क्यों' की जो मौन ध्वनि उठ रही होगी, उसका एक चित्र-सा मैं अपने मानस चक्षुके सामने खींच सकती थी।

जब हम लोग विद्यालयके आहातेमेंसे होकर जा रहे थे, तब मैंने

उँगलीसे दिखला-दिखलाकर सब इमारतोंका परिचय उन्हें कराया।

"ज्योतिषके विद्यार्थियोंके लिए यह वेधशाला है," मैंने कहा—"यह कला-पुस्तकालय है और उन पेड़ोंके उस पार भौतिक शास्त्र तथा रसायन शास्त्रकी प्रयोगशालाएँ हैं। वह देखिये, इसी तरफ, संगीत-भवन है।—"

गला साफ करनेकी स्पष्ट चेष्टासे मुझे बीचमें रुकना पड़ा। तबतक मेरे अतिथि विशेष अभिप्रायसे पूछ बैठे—"मैं यह जानना चाहता हूँ कि यहाँ गृहविज्ञानका भवन कहाँ है ?"

मुझे स्वीकार करना पड़ा, "ऐसी कोई इमारत यहाँ नहीं है।" मुझे यह बात धीरे-धीरे प्रकट करनी चाहिये थी। सुन कर वे बहुत देर-तक चुप रहे।

"बहुत ही असाधारण बात! गृह-विज्ञान सिखानेके लिए भवन ही नहीं। ठीक ऐसा ही तो मैं सोच रहा था!" उन्होंने अन्तमें विनय-सूचक प्रत्युत्तर देते हुए ये शब्द कहे।

मैंने तुरन्त ही समझानेका प्रयत्न किया, "इसके लिए विशेष विद्यालय तथा पूरक स्कूल हैं जहाँ गृहविज्ञानकी शिक्षा प्राप्त की जा सकती है···।"

किन्तु प्रतिकूल प्रभाव तो पड़ ही चुका था। मैं उन्हें और चीजें भी दिखाती रही किन्तु अब वे शिष्टतापूर्वक मौन ही बने रहे। मुझे प्रतीत हुआ मानो मेरे सम्बन्धमें फैसला कर दिया गया है और मुझे कई वर्षकी भोजन बनाने, कपड़े सीने तथा रफू करनेकी सजा दे दी गयी है। मैं नहीं जानती कि इन महाशयने भारत वापस जाकर हम लोगोंके सम्बन्धमें क्या रिपोर्ट दी किन्तु उसके द्वारा यह निश्चयात्मक प्रमाण प्रस्तुत कर दिया गया होगा कि इन लोगोंकी पढ़ाई किसी काम-की नहीं हो रही है।

मैं नहीं जानती कि बहुत-सी युवतियोंके लिए महाविद्यालयका जीवन क्या महत्त्व रखता है किन्तु मेरे लिए तो वह चार वर्षका समय अविश्वसनीय रूपसे भरापूरा एवं सुखद काल रहा है—जीवनकी भीड़भाड़मेंसे अलग निकाला हुआ समय जिसमें कुछ सोचने, टटोलने या विश्लेषण करनेका अवसर मिले। कक्षाओंमें हम लोगोंने जो कुछ

सीखा वह महत्त्वपूर्ण था किन्तु हम लोगोंने छात्रावस्थामें एक दूसरेके कमरोंमें असुविधाजनक समूहोंके रूपमें बैठकर, बहुत रात गयेतक गरम काफी पीते हुए, एक दूसरेसे जो कुछ सीखा-सुना, वह भी मेरे विचारसे उतना ही महत्त्वपूर्ण था। हम लोग जिस तरह बातचीत किया करती थीं, उस तरहकी बात करनेका अवकाश होना, जिस लगन और एकाग्रचित्ततासे हम प्रत्येक विषयका आलोचन एवं विश्लेपण करती थीं, वह सब अब हमें उपलब्ध नहीं हो सकती। अब पहलेसे भी अधिक यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि जो समय सोचने, तर्क करने और प्रश्न पूछनेमें व्यतीत हुआ, उसका सदुपयोग ही हुआ। वह स्वयं ही एक तरहकी शिक्षा थी।

कभी-कभी मेरा अन्तःकरण ही मुझे कचोटने लगता था। मैं अपनेसे ही पूछती थी कि क्या मैं महाविद्यालयके समयका सबसे अच्छा उपयोग कर रही हूँ ? मेरे ये सन्देह उस समय और भी पुष्ट हो गये जब एक बार शिल्प-विज्ञानके एक विद्यार्थीसे मेरी बातचीत हुई। उसने मुझसे पूछा—"आप क्या पढ़ रही हैं ?"

"मुख्य रूपसे इतिहास," मैंने जवाब दिया।

"अच्छा !" उसने आश्चर्यसे पूछा—"क्या तुम यह नहीं समझतीं कि पत्रकारता जैसा विषय भारतमें अधिक महत्त्वपूर्ण एवं अधिक उपयोगी होगा ?"

"यदि मैं वास्तवमें वही करना चाहूँ जो भारतके लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हो," मैंने कहा, "तब मुझे या तो चिकित्सा विज्ञान पढ़ना चाहिये था या फिर तुम्हारी तरह शिल्प विज्ञानके किसी क्षेत्रका अभ्यास करना चाहिये। इस ओर मेरी स्वाभाविक प्रवृत्ति नहीं है, इसलिए मैं समझती हूँ कि मेरे लिए इतिहास भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कोई अन्य विषय।"

"किन्तु पत्रकार बननेपर," उसने कहना जारी रखा, "कमसे कम इतना तो होता कि तुम्हें कार्यके एक व्यावहारिक क्षेत्रमें प्रवेश करनेका मौका मिलता। इतिहास तो बिलकुल अस्पष्ट-सा विषय है। क्या उसका कोई व्यावहारिक उपयोग भी हो सकता है ?"

"शायद नहीं," मैंने जवाब दिया, "किन्तु बहुत-सी चीजें, जिनके

सम्मिश्रणसे एक सभ्य, सहिष्णु व्यक्ति बनता है, स्वयं ऐसी नहीं होतीं कि वे किसी व्यावहारिक लक्ष्यकी सिद्धि कर सकें, फिर भी अन्य वस्तुओं-के साथ मिलकर वे मनुष्यके विचारों और दृष्टिको प्रभावित करती हैं और आखिर शिक्षाका उद्देश्य क्या एक सम्पूर्ण, सन्तुलित व्यक्ति तैयार कर देना ही नहीं है ?"

मैंने यह बात कह तो दी और मुझे वह बिलकुल ठीक-सी प्रतीत हुई किन्तु जब मैंने उसपर पुनः विचार किया तो मुझे खुद अपनी तर्क-बुद्धिसे सन्तोष नहीं हुआ। आदर्श तथा व्यावहारिकताका वही पुराना प्रश्न फिर सामने था। यद्यपि 'शिक्षाके लिए शिक्षा' की वांछनीयतामें सन्देह नहीं किया जा सकता, फिर भी कौन इस बातसे इनकार कर सकता है कि दुनियामें व्यावहारिक ज्ञानकी बड़ी आवश्यकता है, विशेष कर भारतमें ? अन्य बहुतसे भारतीय विद्यार्थियोंकी तरह घर लौटकर अपनी शिक्षाके विशेष उपयोगकी बात मेरे मस्तिष्कमें बराबर विद्यमान रहती थी। थोड़ा-सा इस विषयका, थोड़ा-सा उस विषयका ज्ञान प्राप्त करनेसे क्या लाभ, यदि आखीरमें उस सबसे मैं कोई ठोस सफलता न प्राप्त कर सकूँ ?

जब मैं अँधेरे बना दिये गये कमरेमें, जहाँ मेरी कला-विषयक कक्षाएँ लगती थीं, बैठती और माइकेलैंगेलोके वीरत्वपूर्ण चित्रोंके रंगीन स्लाइड गौरसे देखती रहती, या जब मेरे दर्शन शास्त्रके प्राध्यापक अफ-तूनके 'थ्यूरी ऑफ आइडियाज' (मायावादके सिद्धान्त) पर विशद व्याख्यान देते होते और मैं उसे सुनती रहती अथवा जब वे अगले दिन-के क्लासके लिए चीनके इतिहासका अध्याय तैयार करते रहते, तब उपर्युक्त बातचीत मेरे मानसपटलपर बारबार टकराती रहती। मैं सोचती कि चार वर्षतक तो ये चीजें बहुत जरूरी हैं जबतक मैं अपनी कक्षाओंमें जाकर पढ़ती या पुस्तकालयमें बैठती, लेकिन उसके बाद क्या अफलातूनके मायावाद अथवा चीनके वीरत्वपूर्ण इतिहाससे मैं अधिक उपयोगी नागरिक बन सकूँगी ? शायद नहीं, उक्त शिल्प विज्ञानी-की दृष्टिसे तो नहीं ही। लेकिन उस पुरानी बातको याद करते हुए अब मेरा विश्वास हो गया है कि उक्त विषयोंके अध्ययनसे उस 'दार्शनिक नागरिक' के निर्माणका रास्ता प्रकाशित हो उठता है जिसकी कल्पना

सुकरातने की थी और जिसके लिए आजका उत्पीड़ित संसार उसी तरह पुकार मचा रहा है जिस तरह उसने ढाई हजार वर्ष पूर्व पुकार की थी।

किताबोंमें जो कुछ पढ़ाया जाता है वेलेस्लीमें रहनेपर उससे और भी अधिक कई चीजें सीखी जा सकती थीं। वहाँ रहने या विदेशमें कहीं रहनेपर एक बहुत ही मनोरंजक वस्तु यह देखना है कि विभिन्न ऋतुएँ किस प्रकार वहाँ अलग-अलग होती हैं। मेरी जैसी भारतीय लड़कीके लिए जिसने ऐसी कोई चीज पहले नहीं देखी थी, यह बड़ा ही हृदयग्राही था। इससे मुझे संस्कृतके प्रसिद्ध कवि कालिदासकृत "ऋतु-संहार" नामक काव्यका स्मरण हो आया। यह महाकवि चतुर्थ शताब्दीमें हुआ था और गुप्त राजसभाके नौ रत्नोंमेंसे एक था। पापूने इसका अनुवाद "दि पैजेण्ट ऑफ दि सीजन्स" (ऋतुओंका भव्य दृश्य)के नामसे अंग्रेजीमें किया है। यह सचमुच ही बहुत आकर्षक एवं भव्य दृश्य था।

वर्फ से ढँकी हुई न्यू इंगलैण्डकी शीत ऋतुसे मुझे उस समयतक सख्त नफरत मालूम होती थी जबतक कि मैंने भुरभुरे हिमसे प्रेम करना नहीं सीख लिया जो समस्त विद्यालय-क्षेत्रमें जगह-जगह श्वेत पुंजके रूपमें इकट्ठा हो रहा था। जब मैं उसकी प्रशंसा करने लगती थी, तब भी मुझे हमेशा डर बना रहता था कि कहीं मेरी नाक तथा कानका खून जम न जाय, और निश्चिन्त मनसे उसका आनन्द न ले सकती थी जिस तरह लेखा लेती थीं। बरफपर चलनेकी संत्रई रंग की पोशाक और जाकेट तथा रोयेंदार जूते पहने, सिरपर उज्ज्वल ऊनी रूमाल डाले हुए वह किसी सम्पन्न रूसी किसान जैसी लगती थीं, जब वह प्रसन्नता- पूर्वक हिमराशिपरसे होती हुई अपनी कक्षाओंमें जाती थीं, और जब उनके गाल कुछ गुलाबीपन-सा लिए हुए तथा नाक भी लालिमायुक्त हो जाती थी।

वसन्त ऋतुके आगमनसे मेरे प्राण बच जाते थे। मैं उस समय अपनी खुशी शायद ही रोक सकती थी जब सूर्यकी कोमल किरणें हिम-राशिको पिघलाना शुरू कर देती थीं और जब घासके नये, मुलायम अंकुर दिखलाई पड़ने लगते थे। वसन्तका पूर्ण प्रवेश हो चुकनेपर हम

लोग अपनी पुस्तकें निकालकर किसी वृक्षके नीचे चली जातीं, उन्हें एक तरफ रख देतीं और पाँव पसारकर वहीं निद्राभिभूत हो जातीं। आलस्यपूर्ण जीवनके लिए और चिरप्रतीक्षित सूर्यातपको सोखनेके लिए ऐसा करना पर्याप्त था। तब मेरी समझमें यह बात आई कि क्यों पश्चिमवाले सूर्यके इतने कट्टर उपासक हैं।

ग्रीष्म ऋतुमें ही हमारी लम्बी छुट्टियाँ पड़ती थीं। इन्हीं महीनोंमें हमने न्यूयार्क, मैसाचुसेट्स, कैलिफोरनिया तथा मेक्सिकोका परि-दर्शन किया। किन्तु वस्तुतः शरद् ऋतु ही हमें सब ऋतुओंका सिर-ताज प्रतीत हुई। उसका किरमिंजीरंगका, सुनहला और सुकोमल कत्थई रंगका सौन्दर्य प्रति वर्ष देख पड़नेवाला चमत्कार था और प्रति वर्ष ही उसके विविध रंगोंसे युक्त प्रभावमें आश्चर्यजनक नवीनता रहती थी। अक्टूबरकी हवा मदिराकी तरह मस्ती लानेवाली होती थी और उसके साथ एक अजीब-सी उदासी, एक अतृप्त भावना यह स्मरण दिलानेवाली जुटी रहती थी कि समय बीतता जा रहा है। मेरे मनमें उत्कट अभिलाषा होती कि काश मुझे ऐसी प्रतिभा भगवानने दी होती जिससे मैं कागजपर या केनवसपर उस आह्लादकारी सौन्दर्य को बटोरकर रख देती। उसे विभिन्न रंगोंमें या विभिन्न शब्दोंमें चित्रित कर सकनेकी क्षमताका अर्थ होता कि इस तरह भावोंसे लबालब भरे हुए हृदयका बोझ कुछ सीमातक हलका किया जा सकता है। किन्तु लाखों, करोड़ों अन्य व्यक्तियोंकी तरह मेरे भाग्यमें भी केवल प्रतीति, उनका अनुभव मात्र किया जा सकना लिखा था।

अध्याय १५

भारतकी चर्चा

लेखाको और मुझे कभी-कभी छात्र-छात्राओंकी सभाओंमें भारत-सम्बन्धी भाषण करनेके लिये आमंत्रण दिया जाता था। वे सब प्रायः हमेशा ही गांधीजीके नामसे और उन्होंने जो कुछ किया था उससे आकर्पित हो उठते थे।

"उनके बारेमें हमें कुछ बतलाइये। आखिर, उनके सम्बन्धमें ऐसी कौन-सी आश्चर्यजनक बात है? उन्होंने तुम्हारे देशपर और तुम्हारे परिवारपर इतना अधिक प्रभाव किस तरह डाला?"

यह एक कठिन आदेश था। यह इसी तरहका था जैसे कोई मुझसे पूछता "हमें बतलाओ कि जबसे तुम पैदा हुई हो, प्रत्येक वस्तुके सम्बन्धमें तुम कैसा अनुभव करती रही हो।" जबसे हमारा जन्म हुआ है, तबसे हमारे चारों तरफ बराबर ही उनका प्रभाव व्याप्त रहा है, जिसने हमारे माता-पिताके जीवनपर और उनके जरिये हमारे जीवनपर भी असर डाला। वही अप्रत्यक्ष रूपसे हमारे अमेरिकामें आनेका भी कारण था। हम लोगोंने रुक-रुककर और बेडौल तरीकेसे उन्हें उस वातावरणका आभास देनेका प्रयत्न किया जो गांधीजीके कारण भारतमें व्याप्त था और हमने उन्हें यह भी बतानेकी चेष्टा की कि हमारे लिए उसका क्या अर्थ होता था।

समुद्रमें जब ज्वार आता है तब वह शानके साथ किनारेके ऊपर तक चढ़ जाता है। उस समय जो भी चीज उसके सामने पड़ती है उसे वह नमकीन फुहारसे ढँक लेता है। इसी तरह जो भी व्यक्ति गांधीजीके प्रभावमें आया, वह उनका अनुयायी बनकर उन्हींकी परम्पराका अनुसरण करने लगता था। भारतका बाह्यरूप उन्होंने नहीं बदला। ऊपरी सजावटकी जो मोटी-सी तह ब्रिटिश राजने उसपर डाल दी थी, वह कायम रही और समाजके उच्चवर्गीय लोग उससे आनन्दित होते

रहे। राजभवनमें सामाजिक स्वागत समारोहों और दावतोंका लम्बा-चौड़ा आयोजन बराबर होता रहा और इनमें निमंत्रित किये जानेके लिए लोग बहुत उत्सुक रहते थे। मद्यपानोत्सव, चायके साथके नृत्य तथा उपाहारगृहके मनोरंजन पहलेकी ही तरह चलते रहे, बल्कि इस तरह चलते रहे, जैसे पहले कभी नहीं चले थे। सिनेमाका खेल समाप्त होनेपर तथा सार्वजनिक समारोहोंमें 'गॉड सेव दि किंग' (ईश्वर महाराजकी रक्षा करे) बाजेपर बजाया जाता था। अधिकतर लोगोंके लिए प्रतिदिनके जीवनमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ था। मनुष्य अपने-अपने पेशों और कामोंमें प्रसिद्धि प्राप्त करते रहे और धीरे-धीरे उन्नति करते रहे। ऊपरी सजावटकी तहके नीचे देशकी सूरत-शक्ल वही बनी रही। गरीब अब भी गरीब थे। उनके जीवनमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ था। उनका भार किञ्चिन्मात्र भी हलका नहीं हुआ था।

भारतका ऊपरी रूप अपरिवर्तित रहा किन्तु उसके सोते हुए दिलमें एक अद्भुत आकांक्षाकी हलचल शुरू हुई, किसी याद आयी हुई उस चीजकी मंद ध्वनिके समान जो बहुत समय पहले ही खो चुकी हो। वे सामान्य आदमी जिनसे नित्य ही गांधीजीका सम्पर्क होता था, इसका अनुभव करते थे; क्योंकि अपने संकटके समय वे अधिकाधिक रूपसे उनका सहारा तकते थे। उनके लिए महात्माजी जबरन् आदेश मनवानेवाले नेता न थे, वरन् एक प्रिय बन्धु, उन्हींमेंसे एक थे जो सादगीसे रहते और जिन्होंने अपनी आवश्यकताएँ घटा कर उतनी कर दी थीं जितनी अनिवार्य थीं। अपने देशकी स्वतन्त्रताके सम्बन्धमें लम्बी-चौड़ी डींग हाँकनेवाले भाषण नहीं करते थे। लम्बे-लम्बे शब्दों तथा ऐसी उपमाओंका प्रयोग उन्होंने नहीं किया जिन्हें वे समझ नहीं सकते थे। उनका लक्ष्य उन लोगोंके लिए या भारतके लिए कोई प्रतिज्ञात गौरव प्राप्त करना न था। वह तो था 'प्रत्येक दुःखी व्यक्तिकी आँखोंसे आँसू पोछ देना।"

समाजके प्रत्येक वर्गके लोगोंने इस हलचलका अनुभव किया, क्योंकि वे उसी तरह गांधीजीके बारेमें बातचीत करते थे जिस तरह सूखी ऋतुमें अचानक पानीकी वर्षा हो जानेसे अथवा पेड़में अनपेक्षित रूपसे कलियाँ निकल आनेपर उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

कुछ लोग उन्हें तमाशा समझते थे और उनकी खिल्ली उड़ाते थे। कुछ बड़े सम्मानके साथ उनका उल्लेख करते किन्तु स्वयं अपने बारेमें संतोष-की साँस लेते हुए कहते, 'ईश्वरको धन्यवाद है कि उसने हमें इससे बाहर रखा और हमने बार-बार जेल जानेका निर्णय नहीं किया।' दूसरे लोग हलकी-सी बेचैनीके साथ उनकी चर्चा करते, उनका अन्तः-करण उन्हें अपना भाग्यसूत्र उनके हाथमें सौंप देनेका आग्रह करता किन्तु सामान्य बुद्धि उन्हें ऐसा करनेसे रोकती। हो सकता है कि कुछ लोग ऐसे भी रहे हों जिन्होंने गांधीजीकी तरफ बिलकुल ध्यान नहीं दिया हो किन्तु ये लोग अवश्य ही उस तरहके व्यक्ति होंगे जो तबतक यह नहीं समझ पाते कि युद्ध हो रहा है जबतक कि ठीक उनकी छतपर कोई बम नहीं फूट पड़ता। एक बात स्पष्ट थी—सारे भारतमें यह सज्ञानता बिजलीकी तरह चमक उठी थी और प्रायः प्रत्येक वर्गके भारतीयपर इसका गहरा असरा पड़ा था।

हमने अपने साथके छात्रों तथा छात्राओंको पुरुषोंपर पड़नेवाले प्रभावका विस्तार समझानेकी चेष्टा की, जिन्होंने गांधीजीका अनुसरण करनेके लिए अपना-अपना काम छोड़ दिया था। जीविकामें उन्नति करनेका कोई मूल्य उनके लिए नहीं रह गया था, क्योंकि उस ढॉचेके सम्बन्धमें वे कुछ सोच-विचार ही नहीं करते थे जिसके भीतर किसी जीविकाका अनुसरण किया जाता। रुपया-पैसा तथा सफलताका महत्त्व उनके मूल्यांकनमें गिर गया था। वे अब ऐसे लक्ष्य नहीं रह गये थे जिन्हें प्राप्त करना लाजिमी हो।

जब मेरे नाना सोच रहे थे कि गांधीजीका साथ देनेके लिए मैं अपनी बारिस्टरीका परित्याग कर दूँ या नहीं, तो उनकी सामान्य बुद्धि कहती थी कि अभी जमे रहो।

"आपके आन्दोलनके लिए रुपयेकी आवश्यकता है", उन्होंने गांधीको सलाह दी, "मैं अपनी वकालत जारी रखूँ तो कैसा हो? तब मैं धनसे आपकी सहायता कर सकूँगा।"

"मैं तो आपको चाहता हूँ," गांधीजीने जवाब दिया, "आपका रुपया नहीं।"

लोगोंके स्तर ऊँचे और दिल मजबूत तथा धनादिके प्रलोभनमें न

आनेवाले थे, अतः ऐसा प्रतीत होता था मानो सारे देशमें हवाका ताजा झोंका बह गया हो जिसने मनुष्यकी तुच्छता तथा आकांक्षाके सड़े-गले टुकड़ोंको उड़ाकर अलग कर दिया हो। एक नया दृष्टिकोण देख पड़ने लगा, जो भौतिक उन्नतिकी तरफ उदासीन था और जिसे अपनी तपस्या तथा कष्टसहनपर अभिमान था। हमारे ऐसे परिचित मित्र तथा साथी जो इस दृष्टिकोणसे सहमत न थे, उससे आश्चर्यान्वित हुए बिना न रह सके। उन्हें लगा कि ऐसा रुख अख्तियार कर हमारे माता-पिताने हम लोगोंके समूचे भविष्यपर पानी फेर दिया।

"यदि तुम्हारे लड़के होते तो बात दूसरी थी," एक चिन्तित सम्बन्धीने मेरे पितासे कहा, "लड़के अपने रास्तेपर जा सकते थे और अपनी रोजी कमा सकते थे। किन्तु तुम्हारी तो ये लड़कियाँ हैं जिनमेंसे प्रत्येकका तुम्हें विवाह करना होगा। जब वे विवाह करेंगी तो तुम उन्हें क्या दोगे? उनमेंसे प्रत्येकके पतिको क्या दोगे?"

"लड़कियोंको क्या दोगे?" उन्होंने दोहराते हुए कहा, "मुझे आशा है कि मैंने उन्हें ऐसी अविनश्वर निधि दे दी है जो उनके जीवन-पर्यन्त विद्यमान रहेगी! जहाँतक उनके पतियोकी बात है, यदि ऐसे कोई भले आदमी उनके लिए हैं तो वे इसका आभार ही मान सकते हैं कि उनका विवाह मेरी लड़कियोंके साथ हो रहा है। इनसे अधिक बहुमूल्य वस्तु मेरे पास देनेको नहीं है।"

जब हम लोगोंके अमेरिका जानेका प्रश्न उपस्थित हुआ तो पहले मम्मीकी आँखोंमें कुछ आँसू-से झलक उठे।

"मैं कैसे यह जान लूँ कि इन लोगोंका जहाज रास्तेमें ही टारपीडो द्वारा नष्ट न कर दिया जायगा? या वहाँ पहुँच जानेके बाद ही उन्हें क्षति न पहुँचेगी? मुझे क्योंकर इस बातका पक्का विश्वास हो कि यही करना उचित है?"

"जीवनमें कोई भी वस्तु पक्की और निश्चित नहीं है," पापूने कहा, "हम दोनोंने भी मिलकर वर्षोंतक अनिश्चित भविष्यका सामना किया है और जिसमें हम विश्वास करते थे उसका परित्याग नहीं किया है। क्या अपने बच्चोंके भविष्यके सम्बन्धमें भी हम वैसी ही आस्था नहीं रख सकते?"

"क्यों नहीं ? किन्तु वे अभी इतनी छोटी हैं, इन दुधमुँही बच्चियोंको अकेले इतनी दूर भेजना !" वे वीर महिला हो सकती हैं किन्तु आखिर वे हम लोगोंकी माँ ही थीं।

"क्या तुम इसे ज्यादा अच्छी समझती हो कि वे भारतमें ही बनी रहें और चारों तरफ जो कुछ हो रहा है, उसे देखकर प्रतिदिन उनमें अधिक कटुता व्याप्त हो जाय ? अभीतक हम जिन सिद्धान्तोंपर चलते रहे हैं और जो कुछ हमने उन्हें सिखानेकी चेष्टा की है उस सबपर हमारे इस कृत्यसे पानी फिर जायगा।"

"नहीं"—मम्मीने अनिच्छापूर्वक स्वीकार किया—"मैं यह पसन्द न करूँगी कि वे कटुतापूर्ण मानव प्राणी बनें जिनके हृदय द्वेष एवं घृणासे भरे हुए हों।"

"तब एक ही विकल्प रह जाता है कि उन्हें तुमने जो शिक्षा दी है, उसका भरोसा कर उन्हें जाने दिया जाय। इन सब वर्षोंमें यदि उन्होंने कुछ सीखा है तो वही आगे आनेवाली संभावित कठिनाइयोंसे उनकी रक्षा करेगा। और सबसे बड़ी बात तो यह है कि एक सुखद समयकी स्मृति उनके साथ सदा बनी रहेगी। यह ऐसा रक्षा-कवच है जिसका भेदन कोई भी भविष्य, चाहे कितना ही अनिश्चित वह हो, नहीं कर सकता।"

मम्मी स्वयं ही अपने सुखद बालजीवन की स्मृति सेंतकर रखे हुई थीं, इसलिए हम लोगोंको भी ऐसे अवसरसे वंचित नहीं रख सकती थीं जिसमें हम भी वैसी ही याददास्त बनाये रख सकें।

अध्याय १६

गरमीकी छुट्टियाँ

लेखाने और मैंने गरमोकी अपनी पहली लम्बी छुट्टी न्यूयार्क शहर-में बितायी। कृपालु मित्रोंकी सहायतासे मैडिसन एवेन्यूसे कुछ दूरपर हमें एक छोटा-सा गृह-खंड ठहरनेके लिए मिल गया। वह बहुत ही चहल-पहल और शोर-गुलवाली सड़कपर स्थित था, जहाँ हर पन्द्रह-पन्द्रह मिनटपर एक ट्राली कान फोड़नेवाली आवाज करती हुई निकल जाया करती थी। फिर भी मकानका अपना अलग हिस्सा (अपार्ट-मेन्ट) होनेसे हमें जो खुशी थी, उसमें इन छोटी-छोटी चीजोंके कारण कोई बाधा नहीं पड़ी। भोजन-सम्बन्धी बढ़िया चीजें बेचनेवाली पास-की एक दूकानसे हम सामान खरीदती थीं, अपने मकानकी नीचेकी मंजिलमें जलपान किया करती थीं और कभी-कभी कुछ लोगोंको दावत देती थीं यद्यपि आगन्तुकोंके लिए वहाँ खड़े रहने भरकी जगह थी।

लेखाको एक प्रकाशन संस्थामें काम मिल गया और मैंने एक सेक्र-टेरियल स्कूलमें टाइपिंग तथा शार्टहैण्ड सीखनेके लिए नाम लिखा लिया। दोपहरके भोजनके समय हम लोग एक दूसरीसे मिलतीं। हम प्रायः एक दूकानमें ऊँचे-ऊँचे स्टूलोंपर बैठकर भोजन करती थीं। इसके बाद हम मैडिसन एवेन्यू नामक सड़कपर टहलनेको चल पड़तीं और रास्तेमें पड़नेवाली अनेक आकर्षक सामानवाली खिड़कियोंके भीतर दृष्टि डालती जातीं। हमारी जैसी इच्छा होती थी, उस तरह स्वतन्त्रता-पूर्वक खर्च करनेके लिए हमारे पास काफी डालर नहीं थे, फिर भी खिड़कियोंमें जाकर सामान खरीदनेमें हमारी आह्लादित आँखोंको उतना ही आनन्द मिल जाता था।

अपना पहला वेतन पानेपर लेखाने नये फैशनकी काली पोशाक खरीदी और उसे ही पहिनकर घर आयीं।

"जब किसीके मनमें किसी चीजके लिए तीव्र अभिलाषा हो तब

पैसा बचानेमें कोई तुक नहीं मालूम होता"—उन्होंने दार्शनिक की तरह कहा—"उस तरहका चीजसे भारी मनोवैज्ञानिक क्षति हो सकती है।"
मैंने हार्दिक सहमति प्रकट की।
कभी-कभी हम लोग सप्ताहान्त न्यूयार्कके आसपासके देहातोंमें व्यतीत करती थीं। एक बार हमारे एक मित्र हमें एक सुन्दर युवती महिलाके घर ले गये। वहाँ कुछ ऐसी बहुमूल्य सजावट-सी थी जैसी अमेरिकाके बाहर कभी-कभी ही देख पड़ती है। घर तथा उद्यान, दोनों ही उत्कृष्ट आधुनिक रुचिके अनुसार बनाये गये थे और उद्यानमें तैरनेका एक तालाब भी सुशोभित था।
हमारी आतिथेयाका नाम सेसिल था। उनके पिता कामकाजके सिलसिलेमें टोरण्टो गये हुए थे किन्तु उस दिन हम लोगोंके साथ भोजनमें शामिल होनेके लिए वे हवाई जहाजसे पहुँच गये थे। हम लोगोंने दूर्वाक्षेत्रपर पेड़ोंकी फैली हुई शाखाओंके नीचे बैठकर भोजन किया। एक फ्रेन्च परिचारिका तथा अंग्रेज बटलर (खानसामा) भोजन परोस रहे थे और हमारे सम्मानमें 'शैम्पेन' नामक फ्रांसीसी मदिरा भी प्रस्तुत की गयी थी। भोजन करनेके बाद जब हम लोग तालाबके पास घासपर लेटी हुई थीं, तब शैम्पेनके साथ धूपकी मिलावट हो जानेसे, जिसकी मुझे आदत नहीं थी, मेरे दिमागपर असर जरूर पड़ा होगा। मैं अपनी मेजबानके लम्बे, चमकीले, सुनहले बालों तथा उनके उज्ज्वल और गुलाबीपन लिये हुए गोरे वदनका निरीक्षण कर रही थी कि मेरे मनमें तरह-तरहकी उपमाएँ आने लगीं।
"तुम सोच क्या रही हो?" मुझे विचार-निमग्न-सी देखकर सेसिलने पूछा।
मैंने जवाब दिया—"मैं सोच रही थी कि आपको देखकर मुझे स्वादिष्ठ, लाल, पके टमाटरकी याद हो आती है।"
"हे भगवान्, यह क्या कहा तुमने?" वे ठहाका मारकर हँस पड़ीं। मैं चकरा गयी और मैंने झूठ बोलनेकी अपनी असमर्थतापर अफसोस प्रकट किया। मेरा मस्तिष्क कुछ अधिक तेजीसे काम नहीं करता, इसलिए सच्ची बात चाहे जो भी हो, प्रकट हो ही जाती है।
"हाँ, अब मैं भी उसके बारेमें सोचती हूँ," सेसिलने कहा—"तुम

बहुत कुछ सेमके सदृश लगती हो।"

इसके बाद इस खेलमें सभी लोग शामिल हो गये और हम लोगोंने खूब शारगुल मचाते हुए तीसरा पहर बिता दिया। हम लोगोंने एक दूसरीकी तथा अन्य लोगोंकी तुलना वनस्पतियोंसे की। हमने निश्चय किया कि लेखा हरी मटरकी तरह थीं, क्योंकि वे छोटी तथा गोल थीं, हमारी ममेरी बहिन इन्दिरा सेलेरी पौधेके डंठल-सी तथा सेसिलके पिता कद्दूके समान थे।

"मेरी इच्छा होती है कि जब मैं जेलमें थी, तब मुझे यह खेल मालूम होता," लेखाने कहा—"समय बितानेमें निश्चय ही इससे मदद मिलती। जेलकी हमारी रक्षिका बहुत कुछ बड़ी पातगोभी जैसी लगती थी और आसपासमें एक दो शतावरी जैसी (लम्बी-पतली) औरतें भी थीं।

सेसिलको धक्का-सा लगा और वे दोहरा उठीं, "जेल? तुम्हारी जैसी नन्हीं-मुन्नीको काई क्यों जेलमें ठूँसना चाहेगा?"

लेखाने अपनी लाचारी प्रकट करते हुए शान्तिपूर्वक कहा—"मैं नहीं जानती, आजतक नहीं जानती। कभी कोई कारण बताया नहीं गया और न मामलेकी सुनवाई ही हुई।"

"जेलमें तुम कितने दिन रहीं?"

"सात महीने। मेरा सौभाग्य था कि मैं अपनी माँ तथा ममेरी बहिनके साथ एक ही बारिकमें रखी गयी थी, नहीं तो मैं नहीं जानती कि मैंने क्या कर डाला होता।"

"किन्तु मेरी दयनीय बच्ची, यह बड़ी ही भयानक बात रही होगी?" सेसिलने आश्चर्य तथा भयका भाव जारी रखते हुए कहा।

"जी नहीं, स्थिति बुरी न थी", लेखाने उसी महत्त्वहीन उदासीनता-से कहा—"केवल एक बारको छोड़कर जब कि मैं सो रही थी और एक चमगादड़ पटसे मेरी छातीपर आ गिरा। उस समय मैं सचमुच चिल्ला उठी थी। सौभाग्यसे मुझे चूहों और मुस्टियोंका डर नहीं लगता। यदि (मेरे स्थानपर) तारा रही होती तो उसके प्राण ही कूच कर गये होते।"

सेसिल सिहर उठीं—"किन्तु तुम क्या किया करती थीं?"

"मैं और मम्मी साथ-साथ बैठकर रामायण पढ़ती थीं और वे मुझे तेलसे जलनेवाले स्टोवपर भोजन बनाना सिखलाती थीं। जेलमें हम लोगोंको सीधा मिलता था और हमें अपना भोजन स्वयं तैयार करना पड़ता था। वह संतुलित भोजन न होता था। मेरा वजन लगभग ५ सेर घट गया और कई दिनोंतक मैं फोड़े-फुंसियोंसे पीड़ित रही। जीवन-में मैं पहले कभी बीमार नहीं पड़ी थी, इसलिए बीमारीके ये दिन मुझे अच्छे नहीं लगे। किन्तु इसकी पूर्ति अन्य रूपसे हो जाती थी। एक स्त्री-कैदी, जो हत्याकी सजा काट रही थी, अपने साथ एक बच्चा लिये हुए थी। मैं उसे स्नान कराती और उसके लालन-पोषणमें मदद देती थी। वह बड़ी प्रिय बच्ची थी और जब मैं जेलसे मुक्त हुई तो उसे छोड़ने-की मेरी जरा भी इच्छा न थी।"

इस प्रकार हम फिर राजनीतिके प्रश्नपर आ गयीं और सेसिलने भारतके सम्बन्धमें सब तरहके प्रश्न हमसे पूछे। ऐसा लगता था कि सब रास्ते राजनीतिकी ओर ही जाते हैं किन्तु इस तरहके अवसरोंपर, जैसा कि इस समय उपस्थित था, हम अपने मित्रोंसे इन प्रश्नोंके सम्बन्ध-में बातचीत करनेके अवसरका स्वागत करती थीं। भारतकी क्या स्थिति है, क्या विचार हैं, आदि बातोंका यदि अधिक स्पष्ट चित्र हम उन लोगोंके सामने खींच सकीं तो हमारी यह मेहनत सफल हो गयी समझना चाहिये।

सेसिलको बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने कहा—"किन्तु तुम दोनों इतनी लापरवाहीसे इसकी बातचीत करती हो मानो जेल जाना जल-पानमें चुरमुरी केक प्राप्त करनेके समान हो।"

"हाँ, हमारे लिए वह ऐसा ही है जैसे चायके साथ चाकलेट केकका दिया जाना", लेखाने कहा और सेसिलको हक्का-बक्का-सी देखकर हम-लोग हँस पड़ीं।

"इस अत्युक्तिसे तुम्हारा मतलब क्या है?" उन्होंने जोर देकर पूछा।

हम लोगोंने उन्हें बतलाया कि किस तरह हमें राजनीतिमें प्रवेश करना पड़ा और तभीसे हमारे लिए उसका क्या महत्त्व रहा है।

"गांधीजीका विश्वास रहा है कि तुम्हारे दिलमें यदि घृणाका भाव

है तो तुम सत्यके लिए संघर्ष नहीं कर सकते," लेखाने कहा—"वे महसूस करते हैं कि तुम्हारे शब्दोंमें, तुम्हारे विचारोंमें और तुम्हारे कार्योंमें क्रोध या द्वेषका कोई भाव नहीं रहना चाहिये। यदि तुम जेल जाते हो तो तुम्हें खुशीके साथ ही जाना चाहिये और इसे अपने लिए विशिष्ट सम्मानकी वस्तु समझना चाहिये। नहीं तो तुम अहिंसाके सच्चे अनुयायी नहीं।"

"आजके दिन और इस युगमें," सेसिलने कहा—"जब सारा संसार हिंसासे व्याप्त हो रहा है, अहिंसाकी बात करना एक अनसुनी-सी चीज है।"

"आजके दिन और इस युगमें," लेखाने दोहराया, "अहिंसामें विश्वास करनेके लिए और भी अधिक साहस एवं चरित्रबलकी आवश्यकता है।"

"इसके लिए स्वाभाविक प्रतिभा भी चाहिये," सेसिलने कहा—"और हम अमेरिकनोंमें राष्ट्रके रूपमें, इसकी कमी है। हममें बुद्धि है, उत्साह है और चरित्रबल है, किन्तु प्रतिभा हममें नहीं है।"

हम लोगोंमें भी यह नहीं है, हमने उन्हें समझानेकी चेष्टा की। करोड़ोंमें एक आदमी, एक कलाकार ऐसा पैदा हुआ जिसने साधारण आदमियोंमेंसे ही महापुरुष उत्पन्न कर दिये और राजनीतिको ईश-प्रार्थनामें परिणत कर दिया। उसीके पास प्रतिभा थी, भारतके पास नहीं।

× × ×

अगली ग्रीष्म ऋतुके आनेपर मम्मी तथा रीताको संयुक्तराष्ट्र अमेरिकामें आये छः महीने हो चुके थे। मम्मी अप्रैलमें सैनफ्रैंसिस्को गयी थीं। वे अपने देशकी गैरसरकारी प्रतिनिधि बनकर सैनफ्रैंसिस्को सम्मेलनमें शामिल हुई थीं। जब वे सम्मेलनमें गये हुए भारत सरकारके प्रतिनिधियोंके नाकों दम किये हुए थीं, तब हम लोग न्यूयार्कका चक्कर काट रही थीं, ऐसे मकानकी खोजमें जिसमें उनके वहाँसे लौटनेपर हम सब साथमें रह सकें। हमें ऐसा एक गृहखंड मिल भी गया जो हमें पसन्द था किन्तु वह मम्मीको अच्छा नहीं लगा और वे अवसर मिलते ही जल्दसे जल्द वहाँसे हट गयीं। उसे स्मरण करनेका एकमात्र

कारण यह था कि उस गृह-खण्डमें ही हमें मामूके कारावाससे मुक्त होनेका मंगलसमाचार युद्ध समाप्त होनेपर अगस्तमें प्राप्त हुआ था, जब काफी उमस पड़ रही थी।

सन् १९४५ का वर्ष समाप्त होनेके करीब मम्मीको ऐसा गृह-खंड मिल गया जो उन्हें ज्यादा आरामदेह मालूम हुआ। जब मैं बड़े दिनकी छुट्टियोंमें घर आनेवाली थी, उसके दो-चार ही दिन पहले उन्होंने टेलीफोनपर मुझे वेलेस्लीमें ठिकाना बदल देनेकी सूचना दी।

एक दिन दिसम्बरमें शामके वक्त जब मैं कालेजसे चलकर घर पहुँची तो थोड़ी-थोड़ी बर्फ गिर रही थी। टैक्सी कुरसीके पत्थरके पासतक जाकर रुक गयी और ड्राइवरने अँधेरेको भेदकर देखनेकी चेष्टा की।

"क्या आपको इस बातका निश्चय है कि यही वह स्थान है जहाँ आप जाना चाहती हैं?" उसने संदिग्ध दृष्टिसे देखते हुए पूछा।

मैं नीचे उतर पड़ी और फिर मैंने चारों तरफ नजर दौड़ायी। टैक्सी एक शराबकी दूकानके सामने खड़ी थी। जिन, स्कॉच तथा अन्य किस्मकी शराबकी बोतलें खिड़कीमें सजाकर रखी गयी थीं जिनके बीच-बीचमें बेरीके फूलोंकी मालाएँ लहरियादार ढंगसे लटका दी गयी थीं। दूकानकी दाहिनी तरफ, उससे दो चार कदमके फासलेपर, एक दरबान जाड़ेका कोट पहने हुए, जिससे उसके कानतक ढँक गये थे, बड़ेसे संकेतपट्टके नीचे खड़ा था जिसपर लिखा हुआ था—'मंकी बार' (बंदर निशानवाला मादरालय)। सड़कके उस पार क्रम-क्रमसे जलने-बुझनेवाली लाल रोशनीमें ये अक्षर चमक उठते थे, 'बिल्स गे नाइन-टीज'। मैंने कई बार आँखें खोलीं और बन्द कीं। गृहखण्डवाली इमारतका वहाँ कहीं कोई निशानतक न था।

"क्या कहूँ, पता तो मुझे यही दिया गया था," मैंने स्वयं संदेह-पूर्वक कहा।

"मुझे आशा है कि वह ठीक है देवीजी," ड्राइवरने कहा और उसने गाड़ीमेंसे मेरा सूटकेस निकाल लिया।

इसी समय शराबकी दूकानके पासका एक काला-सा दरवाजा खुला और लेखा तथा रीता एक अँधेरेसे बरामदेके भीतरसे निकल पड़ीं।

"ओफ ! आखिर किसी तरह तुम पहुँच ही गयीं । हम लोग धुकधुकमें पड़ी हुई थीं कि तुम अभीतक आयीं क्यों नहीं । रेलगाड़ी तो बहुत पहले ही आ चुकी रही होगी ।"

वे मुझे ऊपरके बैठकखानेमें लिवा ले गयीं जो आँखोंको अच्छी लगनेवाली रोशनीसे प्रकाशित था और जहाँ अँगीठीमें आग जल रही थी जिसकी हिलती-डुलती प्रतिच्छाया सामनेकी दीवारपर पड़ रही थी ।

"हमारा यह नया गृहखण्ड तुम्हें कैसा पसन्द आया ?"

अभीतक जितने भी ठहरनेके स्थान हमें मिले थे, उन सबसे यह बड़ा था—दो शयनकक्ष, एक बैठकखाना तथा एक भोजनकक्ष उसमें था । मम्मीने अपनी विशेष कुशलतासे उसे आरामदेह एवं स्वगृह जैसा बना लिया था । इसी समय वे भी कमरेमें आ गयीं ।

"कहो प्यारी बच्ची, तुम्हें पसन्द आया यह मकान ?"

"सुन्दर है, किन्तु इसकी अवस्थिति कुछ अजीब-सी मालूम होती है," मैंने कहा ।

"मैं जानती हूँ, किन्तु आजकल हम अपनी इच्छाके अनुरूप चुनाव कर ही कहाँ सकते हैं ? जो कुछ हमें मिल सका, वही हमने लिया । इसके सिवा, जब मैं लोगोंको यहाँ निमन्त्रित करती हूँ तब मैं उनसे कह देती हूँ कि मेरा यह स्थान पार्क एवेन्यूके करीब ही है जो कि वह सचमुचमें है ।"

"मैं हमेशा कह देती हूँ कि वह 'दि गे नाइंटीज' के सामने है," लेखाने कहा—"ऐसा कहना अधिक मनोरंजक मालूम पड़ता है ।"

"मैं ऐसा नहीं करती," रीताने पतली आवाजमें कहा—"मैं उन्हें बता देती हूँ कि वह शराबकी दूकानके ऊपर है ।"

मम्मीने कड़ी निगाहसे उसकी तरफ देखा ।

"बात तो सही है मम्मी, पर यह शराबकी दूकान भी मामूली दूकान नहीं है । इसके मालिक एक अर्ल (अमीर) हैं ।"

रीताकी यह विशेषता है कि जिन लोगोंसे उसकी भेंट होती है, उन्हें जाननेके कुछ ही दिनोंके भीतर उनके जीवनके सारे इतिहासका पता वह लगा लेती है और अब उसने अर्लके मुग्धकारी जीवनका जीता-जागता चित्र हमारे सामने प्रस्तुत कर दिया । अन्तमें गृहखंडका

वही नाम-पता रह गया जो उसने दिया था। उसीका प्रयोग हम लोग तथा हमारे मित्रगण करते थे। मद्यकी दूकानके ऊपरवाले खंडमें ही हम लोगोंने बड़े दिनका त्योहार प्रथम बार उचित तरीके से, पूरे ठाट-बाट तथा सजावटके साथ मनाया, जिस तरह हमने कभी अपने देशमें नहीं मनाया था। कुछ दिनोंके लिए यही हम लोगोंका एक साथ मनाया जानेवाला अन्तिम त्योहार था, क्योंकि चन्द महीनों बाद ही मम्मी और लेखा भारत लौट रही थीं।

× × ×

जबतक मैं और रीता १९४६ की गरमियोंमें लॉस एंजेल्स गयीं, तबतक हम लोग पक्की न्यूयार्कवासिनी बन चुकी थीं, इसलिए पश्चिम-की सारी आन-बान भी हमें उतनी अधिक अभिभूत न कर सकी जितनी वह इसके पहले कर सकती थी। नयी-नयी जगहें देखनेकी अपनी उत्सुकता और मनोरम दृश्योंके प्रति उत्कट अनुरागके कारण न्यूयार्कसे बिछुड़नेपर होनेवाली मेरी बेचैनी शीघ्र ही दूर हो गयी किन्तु रीता बराबर भुनभुनाती रहती थी, 'मैं घर जाऊँगी। यहाँसे लौट चलो।' गरमियोंमें बाहर जानेपर रीताका काम यही रहता था कि वह तिथिपत्र (कैलेण्डर) मेंसे धार्मिक व्यक्तियोंकी तरह क्रॉस (गुणित चिन्ह) बना-बनाकर दिन काटती चलती थी और वापस आ जानेतक घण्टोंतककी गिनती करती रहती थी। ऐसा शुरूमें होता था। बादमें घटनाओंने अधिक मनोरंजक रूप ग्रहण कर लिया।

अमेरिकाका पश्चिमी भाग पूर्वी तटसे उतना ही भिन्न था जितना एक देश दूसरेसे होता है। हमें ऐसा लगा मानो हम विदेशी सिक्कों और विदेशी भाषाका प्रयोग कर रही हों। वास्तवमें यह काई आश्चर्य-की बात न थी, यह देखते हुए कि न्यूयार्कसे कैलीफोर्निया प्रायः उतनी ही दूर है जितनी दूर लन्दन है।

पहली बार मैं जब लॉस एंजेल्स गयी, तब उसकी एक झलक ही पा सकी थी, उसे परिदर्शनकी संज्ञा नहीं दी जा सकती। उस समय मैंने जो कुछ देखा था या वहाँ जो कुछ किया था, उसका अधिकांश मुझे स्मरण नहीं रहा। इस बार हम ऐसे मकानमें रहीं जिसके साथ एक बड़ा उद्यान भी था। हमारी मेजबान दयालु महिला थी जिसने

हमारा वहाँ जानेका उद्देश्य सफल बनानेके लिए कोई प्रयत्न बाकी नहीं रखा। हमारी केवल एक ही शिकायत थी और वह यह कि वहाँ एक ऐसी हठीली बिल्ली थी जो मुझसे नफरत करती थी और हमेशा मेरे पीछे पड़ी रहती थी। रीताको अपना सुदृढ़ संरक्षक बनाकर मैं किसी तरह उससे अपनेको बचाये रखती थी और रीताके कुड़मुड़ाते रहनेका यह भी एक कारण था। गरमीकी छुट्टियाँ बितानेके लिए उसे एक असभ्य जगहमें ले आना, जब कि वह न्यूयार्कमें रहकर खुशी-खुशी अपना समय बिता सकती थी, और फिर उसे अपना अंगरक्षक बना लेना तथा जब-जब बिल्ली सामने आवे तब-तब चीख-चिल्लाकर उसे सहायताके लिए बुला लेना, ठीक उस समय जब वह धूपका आनन्द ले रही हो, यह सब ऐसी बात थी जिसे वह सौम्यभावसे बरदाश्त नहीं कर सकती थी।

लॉस एंजेल्स आनेवाले सभी पर्यटकोंकी तरह हमारी इच्छा भी हॉलीवुडकी रंगशालाएँ देखनेकी थी। पहले तो वहाँ जानेकी व्यवस्था करनेका कोई उपाय ही नहीं देख पड़ता था और एक या दो बार जब कुछ प्रबन्ध हुआ भी तो आखिरी वक्तपर उसे रद्द कर देना पड़ा। हम लोग निराश हो चुकी थीं और तब, जैसा कि अक्सर होता है जब आदमी स्थितिके सामने सिर झुकानेको तैयार हो जाता है, घटनाओंकी गतिविधि अधिक अनुकूल रूप ग्रहण करने लगी। कुल दो सप्ताहके भीतर ही हमें समस्त बड़ी-बड़ी रंगशालाएं देखनेका अवसर मिल गया।

प्रतिदिन सूर्यकी चमकतीं हुई धूपमें हम एक रंगशालासे दूसरीमें दौड़ती फिरती थीं। किस तरह दृश्यांके चित्र लिये जाते, यह हम देखतीं और अभिनेत्रियोंसे भेंट करतीं तथा उनके साथ फोटो भी उतरवाती थीं। ऐसी एक तसवीर, जिसमें डैनी कायेके एक तरफ मैं और दूसरी तरफ रीता हँसती हुई खड़ी थीं, भारतमें प्रकाशित हुई थी और तब हमें स्वदेशसे अनेक शुभचिन्तकोंके पत्र प्राप्त हुए जिनमें समझदारीके साथ यह बात बतलायी गयी थी कि यदि हम भारत लौट आना और यहाँ स्थिर रूपसे बसना चाहती हैं तो इस तरहके चित्रोंका प्रकाशित कराना कोई अच्छी चीज नहीं है। कहीं बस जानेका विचार उस समय हमारे मनसे बहुत दूर था और हमें कोई कारण नहीं प्रतीत हुआ कि

हम डैनी कायेके साथ खड़ी होकर चित्र न उतरवातीं, जो हमारे लिए एक मनोमोहक एवं स्वागतपटु आतिथेय था।

रंगशालाओंका परिदर्शन, जिसकी हम इतनी उत्सुकतासे प्रतीक्षा करती रही थीं, एक थका देने तथा उबिया देनेवाली चीज हो गयी। प्रत्येक रंगशालामें पहुँचनेपर हमारा प्रदर्शक (गाइड) समझता कि हम पहली ही बार वहाँ पहुँचा है अतः वह आशा करता कि हम उत्साह और दिलचस्पी, यहाँतक कि अपने दिलपसन्द अभिनेता-अभिनेत्रियोंसे मिलनेपर एक तरहका सभ्यजनोचित उन्माद-सा प्रकट करेंगी। एक दिन तीसरे पहर जब खूब गरमी पड़ रही थी और वदन पसीनेसे चिपचिप कर रहा था, जबतक हम वार्नर ब्रदर्सके पासतक पहुँचीं, हमारी साड़ियाँ सिकुड़-मुकुड़ गयी थीं, हमारे बाल हमारे माथेसे चिपक गये थे और कंधोंपर बेजान-से होकर लटक रहे थे। ऊँची एड़ियोंवाले जूतोंमें हमारे पैर दर्द करने और जलने लगे। हम बड़ी अस्तव्यस्त-सी हो रही थीं और हालीवुडमें हमारे लिए कोई आकर्षण नहीं रह गया था।

"अब कृपया इस तरफ चलें"—हमारे पथ-प्रदर्शकने प्रसन्नतापूर्वक कहा—"जिससे मिस क्रॉफर्डके साथ आपकी तसवीर ली जा सके।"

"हे प्रभु!" मैंने लम्बी साँस लेते हुए कहा—"अगर मैं उनके साथ फोटो उतरवाने न खड़ी होऊँ तो क्या इससे मिस क्रॉफर्डको बुरा लगेगा?"

मार्ग-प्रदर्शक भौंचक्का-सा होकर मेरे मुँहकी तरफ देखता रह गया। इसके पहले उसके सामने कभी ऐसा मौका नहीं आया था जब किसी आगन्तुकने किसी अभिनेत्रीके साथ फोटो खिंचवानेमें अनिच्छा प्रकट की हो। उसे इससे बड़ी परेशानी-सी हुई कि फोटो उतरवानेमें सबसे अधिक महत्त्वका व्यक्ति मैं अपने आपको ही समझ बैठूँ।

"देवीजी, आप कह क्या रही हैं!" वह हैरान होकर बोल उठा, मानो अपना क्षोभ प्रकट करनेके लिए उसे उपयुक्त शब्द ही न मिल रहे हों—"आप कहती हैं, मिस क्रॉफर्डको बुरा तो न लगेगा यदि आप उनके साथ खड़ी न हों? यह खूब रही! अरे, इसे मिस क्रॉफर्डकी कृपा समझिये जो वे आपपर कर रही हैं। नहीं तो वे हर किसीके

साथ जो यहाँ आता है, अपनी तस्वीर उतरवानेको तैयार नहीं होतीं।"

अब तबतक ठहरनेके सिवा और कोई चारा न रह गया जबतक मिस क्रॉफर्ड उस दृश्यसे फारिग न हो जायँ जिसे तैयार करनेमें वे सहयोग दे रही थीं। जब वे वहाँसे छुट्टी पा गयीं और तसवीर खिंचवाने हमारे निकट आ गयीं, तब हमने उन्हें सौहार्दपूर्ण एवं आकर्षक व्यक्ति पाया। हमें बड़ी शरम मालूम हुई कि हमने नाहक ही इतनी चीं-चपड़ की।

शामके वक्त बहुत देर हो जानेपर ही हम घर पहुँचीं, जब कि हम बिलकुल लस्त हो गयी थीं। हमारी मेजबान बड़े कमरेमें हमसे मिलीं।

"बच्चियो!" उन्होंने खुशी जाहिर करते हुए हमसे कहा—"मुझे तुमसे एक आश्चर्यजनक खुशोकी बात कहनी है। मुझे तुम्हारे लिए एक पास मिल गया है जिसे लेकर तुम कल तीसरे पहर 'पैरामाउण्ट स्टूडिओज' नामक रंगशाला देखने जा सकती हो।"

वे हैरान-सी होकर हमारी तरफ देखती रह गयीं जब हम उनकी मन्द मुसक्यानकी उपेक्षाकर बिना बोले ही लड़खड़ाती हुई-सी सीढ़ियोंके ऊपर चढ़ गयीं।

लॉस एंजेल्समें एक रामकृष्ण सेवाश्रम था। हमारी आतिथेया वहाँके 'स्वामी'को अच्छी तरह जानती थीं और वे हम लोगोंको उनके आश्रममें ले गयीं। हम वहाँ संन्यासियों तथा संन्यासिनियोंसे मिलीं, जिनमेंसे बहुत ऐसे नवजवान अमेरिकन थे जो कम उम्रमें ही अपने परिवारों और घरोंको छोड़कर, अध्ययन और उपासनाका जीवन बितानेके लिए यहाँ चले आये थे।

उनके जीवन-क्रमका अध्ययनवाला अंश मुझे अच्छा लगा और उनकी विद्याका आध्यात्मिक स्वरूप भी, किन्तु जहाँतक ईश्वरकी उपासनाका ख्याल है, मुझे लगा कि वह कहींसे भी की जा सकती है। मेरा यह बराबर विश्वास रहा है कि ईश्वरकी प्राप्तिके लिए मनुष्यको अपनी पूरीसे पूरी और ऊँचीसे ऊँची योग्यतासे जीवन बिताना चाहिये। आश्रमके संकुचित दायरेमें यह कैसे संभव हो सकता है? मेरी दृष्टिमें धर्म हमेशा ही सेवाभावसे अविच्छिन्न रहा है, क्योंकि यही चीज गांधीजीने अपने उदाहरणसे हमें सिखलायी थी। कोई आदमी, यदि वह

बुद्धका या अन्य कोई अवतार न हो, जो अपने आपको समाजसे पृथक् कर लेता है और पहाड़की चोटीपर या अपने द्वारा ढूँढ़े गये, बनाये गये निराले स्थानमें चला जाता है, वस्तुतः धर्मशील नहीं बन सकता। वैसा कर वह अपना कुछ लाभ भले ही करता हो किन्तु उससे दूसरेका हित नहीं हो सकता। उसे आप चिन्तन, मनन, समाधि—चाहे जो भी कहें, वह मनुष्यके धार्मिक जीवनका बहुत आवश्यक अंग है किन्तु वही धर्म नहीं है। पर्वतकी चोटीको हम अन्तिम लक्ष्य मान सकते हैं किन्तु वहाँतक पहुँचनेके लिए हमें खतरोंसे भरी हुई पहाड़ी सड़कपर यात्रा करनी पड़ेगी। ईश्वरका सामीप्य चाहनेके पूर्व हमें अपने आपको मानव-संगतिके योग्य बनाना होगा।

स्वामी उदारहृदय सज्जन थे जिन्होंने हमारे साथ ऐसा व्यवहार किया जिससे हमें प्रतीत हो कि हमारा हार्दिक स्वागत किया जा रहा है। वे बड़े विद्वान् आदमी थे और उन्होंने राजी-खुशीसे तथा विचार-पूर्वक मेरे अनेक अनोखे प्रश्नोंका उत्तर दिया।

"क्या तुमने अपने लिए उपासनाके जीवनपर विचार किया है?" उन्होंने पूछा—"तुम्हारे परिवारने देशकी सेवामें ऐसा अच्छा अंशदान किया है कि अब उसे धर्ममें भी अंशदान करना चाहिये। तुममें संन्यासिनियोंके योग्य गुण देख पड़ते हैं।"

"वाह!" रीताने बेढंगे तौरसे टोक दिया।

स्वामीजीके विचारोंसे असहमत होनेमें उसे बड़ा मजा आता था। वहाँ जानेका केवल यही एक पहलू था जिसमें उसे आनन्द मिला।

"इनमें संन्यासिनी बननेकी छायातक नहीं है जिस तरह गोल्डीलाकमें न थी," उसने बुदबुदाते हुए कहा—"इस तरह ये व्यर्थ ही लोगोंको भ्रममें डालनेका प्रयत्न करती हैं।"

स्वामीने सहनशीलताकी मुद्रामें मुसकरा दिया। "तुम्हारी बहिनमें कुछ विशिष्ट आध्यात्मिक गुण हैं," उन्होंने कहा।

मैंने रीताको कनखियोंसे देखा और उसने खिसियाकर नाक सिकोड़ ली।

"शायद, पर वे उन्हें बहुत छिपाकर रखती हैं." उसने व्यंग्यपूर्वक उत्तर दिया—"अभीतक एकमात्र आप ही ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने

उनका पता लगाया है।"

"यह तो मेरा काम ही है," स्वामीने सौहार्दपूर्ण भावसे कहा।

उस दिन रातमे हम लोग अपने बिस्तरेपर लेटीं, तब रीताने भृकुटी चढ़ाते हुए कहा—"आध्यात्मिक गुण, क्या कहना है! सुखी परिवारोंका इस तरह अंग-विच्छेद करना और लोगोंको अपने घरसे दूर, पृथक् रहनेको विवश करना लज्जाकी बात है। यह स्वाभाविक नहीं और मुझे विश्वास है कि ईश्वरको भी यह चीज पसन्द नहीं।"

"स्वामी उन्हें आनेके लिए नहीं कहते," मैंने दलील देते हुए कहा "वे अपनी खुशीसे आते है"

"खुशीकी बात इसमें कहाँ!" रीताने उसी लहजेमें कहा—"सम्मोहनके वशीभूत होकर कोई निर्णय करनेमें खुशीकी बात कहाँ?"

मैं अपनी बहिनकी तरफ आश्चर्यमय दृष्टिसे देखती रही जब कि वह लम्बेसे लम्बे शब्दोंका प्रयोग करनेके बाद, जैसे उसने जीवनमें शायद ही पहले कभी किये हों, पलंगपर लुढ़क गयी और निद्रागत हो गयी।

उस गरमीमें हमारी मेजबान हमें योजमाइट घाटीकी मोटर-यात्रामें ले गयीं। यह दैत्याकार रेडवुड वृक्षोंका विशाल और सुन्दर राष्ट्रीय पार्क है। हमारी मोटरगाड़ी उस सुरंगमेंसे होकर गुजरी जो उनमेंसे एक वृक्षके चौड़े तनेको कोलकर बनायी गयी थी। हम उन गिलहरियों, पालतू हिरनों तथा भालुओंको देखकर मुग्ध हो गयीं जो जंगलमें स्वच्छन्द विचरण करते और परिदर्शकोंके हाथसे तृणादि ग्रहण करते थे। हम एक ग्रीष्मकालीन शिविरमे ठहरीं, सबेरे जल्दीसे उठीं जिससे एक बरफीली, पहाड़ी झीलको मझा सकें और फिर हम जंगलमें दूर-दूरतक घूमने निकल गयीं। जब हम लोगोंके सैनफ्रैंसिस्को जानेका समय निकट आने लगा तब रीताके चेहरेपर खुशीके चिह्न स्पष्ट रूपसे झलक उठे।

"फिर एक बड़ा शहर!"—जब हम मोटरमें बैठी हुई सैनफ्रैंसिस्कोमें प्रविष्ट हुईं, तब उसने सन्तोषकी साँस ली—"ताजी हवा अच्छी होती है, यह तो ठीक ही है किन्तु वह (शहरोंमें भी) काफी मात्रामें मिल ही सकती है।"

अभीतक हम लोगोंने जितने शहर देखे थे, उनसे यह भिन्न था। पहाड़ियोंपर बसा होनेके कारण, जिनके कदमोंपर प्रशान्त महासागर-की उत्ताल तरंगें टकराती थीं, वह निरन्तर ही कुहरेके फैलावमें ढका रहता था जो बड़ा सुहावना मालूम होता था। वहाँ भी काफी चहल-पहल थी और न्यूयार्ककी ही तरह विभिन्न देशोंके लोग वहाँ देख पड़ते थे लेकिन न्यूयार्कके जैसा अविशिष्ट वातावरण वहाँ न था। वह सुन्दर, फैशन-परस्त और उन्नतिशील नगर था, फिर भी उसके चारों तरफ मानो पुरानी दुनियाकी हवा बह रह रही थी और लॉ एंजेल्सकी तड़क-भड़क भी वहाँ न थी। रीता तथा मैं आनन्दातिरेकसे अभिभूत हो गयीं और हमने अपने दिलपसन्द शहरोंमें उसका नाम भी जोड़ लिया।

हम लोग वहाँ अधिक समयतक नहीं ठहरीं, फिर भी कुछ चीजें खरीदनेके लिए हमारे पास काफी समय था और हम समुद्री खाद्य पदार्थ प्रस्तुत करनेवाले उन अनोखे उपाहारगृहोंका भी चक्कर लगा सकीं जो समुद्रतटकी ओर अवस्थित थे और जिनके लिए यह नगर विख्यात है। वहाँ हमने यह एक मनोरंजक बात देखी कि जितनी मोटरगाड़ियाँ वहाँ खड़ी थीं, वे सब सड़कोंसे समकोण बनाती हुई ठहरायी गयी थीं जिसमें वे पहाड़ी ढालपर नीचेकी ओर न सरक जायँ।

अध्याय १७

रीताका उपाधि-ग्रहण

मम्मी और लेखा कुछ ही सप्ताहोंके आगे-पीछे संयुक्त राष्ट्र अमेरिकासे चली गयीं—मम्मी जनवरी १९४६में और लेखा मार्चमें, इसलिए जब मईका महीना आया तब वरमांट (मेसेचुसेट्स)में स्थिर पुटनी स्कूलसे रीताके उपाधि-ग्रहणके अवसरपर उपस्थित रहनेके लिए परिवारके सदस्योंमेंसे मैं ही अकेली बच गयी थी। वहाँ जो अनुभव हुआ उसे मैं कदापि न भूल सकूँगी। मैंने देखा कि जब मैं कक्षाके कमरोंमें, पुस्तकालयोंमें या ऐसी ही अन्य बँधी हुई जगहोंमें बैठकर, रहकर शिक्षा प्राप्त कर रही थी, तब रीताकी शिक्षा दूसरे ही ढंगकी हो रही थी, अधिक कल्पनामय विधिसे वह चल रही थी।

मैं पुटनी एक बार पहले भी सप्ताहान्तमें जाड़ेके दिनोंमें हो आयी थी। उस यात्रामें मुझे कुछ परेशानी-सी उठानी पड़ी थी। स्टेशनपर ही मैंने एक टैक्सी किरायेपर ले ली थी, क्योंकि स्कूल वहाँसे काफी दूर था। टैक्सी चलानेवाला एक नवयुवक था जो खुद भी शहरमें नया आया था। हिमसे ढँके जंगलमें वह रास्ता भूल गया। रास्ता ढूँढ़नेके फेरमें हम लोग तीन घण्टेतक इधर-उधर चक्कर काटते रहे जब कि पेड़ोंकी नग्न एवं निष्ठुर-सी प्रतीत होनेवाली शकल हमारे चारों तरफ अनन्त रूपसे घूमती हुई नजर आती थी और जाड़ेकी मृत्यु जैसी भयावह नीरवता छायी हुई थी। अन्तमें काफी रात बीतनेपर हम किसी तरह स्कूल पहुँचे जब कि मैं ठंढ और स्नायविक दुर्बलताके मारे ठिठुर-सी गयी थी। इस बार मैंने उससे और पहले पहुँचा देनेवाली रेलगाड़ीसे जानेका निश्चय किया। इसके सिवा मैंने अपने आपसे विश्वासपूर्वक कहा "यह तो मईका महीना है जबकि सूर्य अच्छी तरह चमक रहा है, इस कारण इस समय कोई गड़बड़ होनेकी संभावना नहीं।" इसलिए

गाड़ीमें आरामसे बैठ जानेपर, जो उत्तरमें स्थित वरमाण्टकी तरफ भागी चली जा रही थीं, मैं निश्चिन्त होकर झपकी लेने लगी।

कुछ ही घण्टोंके बाद स्टेशन आ गया और मैं उठ खड़ी हुई। बढ़िया नयी और चुस्त, बसन्ती पोशाक मैं पहिने हुई थी। एक कन्धेपर सुगन्धित, पीला फूल खोंस लिया था ओर ऊँची एड़ीके नये, सुन्दर जूते पहिन लिये थे जो मैंने इसी अवसरके लिए खास तौरसे खरीदे थे। मैंने अपना हलका सूटकेस हाथमें उठा लिया और टैक्सीका इन्तजार करने लगी।

"अरे! तारा, तुम? अच्छी तो हो? क्या रीताको उपाधि लेते देखनेके लिए आयी हो?"

मैंने एक लाल सिरवाले, युवकको देखा, जिसके चेहरेपर छोटा-सा निशान था। उसने उत्साहपूर्वक मेरा स्वागत किया। मैंने यह दिखलानेकी चेष्टा की मानो मुझे उसके व्यवहारसे कोई अचम्भा न हुआ हो। पिछली बार जब मैं यहाँ आयी थी, तब इसी युवकने मुझे स्टेशन वापस पहुँचाया था। इस प्रकार स्मरण किये जानेसे मुझे बड़ी खुशी हुई किन्तु दूसरी बार ही मिलनेपर उसने जैसी बेतकल्लुफीसे बातचात की उससे मैं कुछ-कुछ अचकचा गयी।

"मैं तुम्हे स्कूल पहुँचा दूँगा", उसने कहा और मेरा सूटकेस हाथमें लेकर झटकेसे उसने टैक्सीका दरवाजा खोल दिया—"मैं तुम्हें बता दूँ कि नन्हीं रीताके यहाँसे चले जानेपर हमें बार-बार उसकी याद आयेगी। वह बहुत ही अच्छी लड़की है।"

मैंने यह बात स्वीकार की और कहा कि रीताको भी पुटनीकी याद भूल नहीं सकती।

जब मैं स्कूलकी मुख्य इमारतमें पहुँची, तब मैंने लड़कों तथा लड़कियोंकी भीड़ देखी जो हाफपैंट या जाँघिया जैसी चीज और खुले गले वाली कमीजें पहने हुए थीं। सामनेवाले कमरे तथा हाल (विशाल कक्ष) में वे घूम-फिर रही थीं। मैं अनिश्चित भावसे इधर-उधर खड़ी रही। मुझे लगता था कि मैं आवश्यकतासे अधिक कपड़े पहने हूँ और इसीसे मुझे कुछ झिझक-सी मालूम हो रही थी। एकाएक रीताने मुझे देखा, विद्यार्थियोंके एक समूहमेंसे अपनेको पृथक् कर वह तेजीसे मेरे

सामने आ खड़ी हुई।

"ओफ्, मुझे कितनी खुशी है कि आप आ गयीं", उसने लड़खड़ाते स्वरमें कहा, "मैं ही अकेली ऐसी लड़की हूँ जिसके माता-पिता यहाँ नहीं हैं।"

"चुप, पगली", मैंने दृढ़तापूर्वक समझाया, "उनका स्थान ग्रहण करनेके लिए मैं जो यहाँ हूँ!"

हम दोनों हँस पड़ीं और तब उसने उँगलीसे अपने मित्रोंकी ओर निर्देश करते हुए कहा—"वह जूली है, जिससे आपसे भेंट हुई थी जब पिछली बार आप यहाँ आयी थीं और वह है जौसे। इस छमाहामें वह अकसर इसके साथ आती-जाती रही है। क्या वह अद्भुत और असाधारण नहीं मालूम होता? वह कोलंबियन है।"

"वह कोलम्बियन हो सकता है," मैंने कहा, "किन्तु वह पूरा दो इंच उससे छोटा है।"

"जी नहीं", रीताने उसके पक्षमें बोलते हुए कहा—"दोनोंमें फर्क बिलकुल नहीं मालूम पड़ता, यदि वह सीधी, तनकर खड़ी न हो या ऊँची एड़ीके जूते न पहने।"

"यही उसकी विचित्र स्थिति का कारण है", मैंने अपने मनमें सोचा। मुझे जूलीके लिए अफसोस होने लगा कि उसे स्कूलके अन्तिम सत्रमें सपाट एड़ीके जूते पहनकर निहुरे-निहुरे-सा चलना पड़ता होगा जिसमें वह अपने युवक मित्रसे अधिक ऊँची न देख पड़े।

एकाएक मैंने रीताके ललाटपर एक लम्बी, पतली खरोंच देखी। "यह क्या हुआ?" मैंने पूछा।

"उँह, वह?" उसने उदासीनतासे कहा—"पिछले सप्ताह मुझे अस्तबल साफ करनेका काम दिया गया था। जब मैं उसके अंदर घुसी, तब घोड़े महाशय कूदने-फाँदने लगे। मैं डर गयी और भाग खड़ी हुई। मैं कुछ देख ता रही नहीं थी, इसलिए मैं अस्तबलके पास रखे हुए अंडोंके घोंसलोंपर चढ़ गयी। स्वभावतः मुर्गीने मेरे ऊपर हमला बोल दिया।

मैंने अपने मनकी शंकाको दबा दिया। पुटनी एक उन्नतिशील स्कूल था जो एक खेत (फार्म) के पास अवस्थित था। यहाँ विद्या-

थियोंको फार्मका सारा काम खुद ही करना पड़ता था। गायोंको दुहना, अस्तबल साफ करना, अंडे इकट्ठे करना, सुअरोंको खिलाना तथा ऐसे ही अन्य काम उन्हें स्वाभाविक रूपसे उसी तरह करने पड़ते थे जिस तरह गणितकी या भूगोलकी तैयारी। रीता उन्हें उतने स्वाभाविक रूपसे नहीं कर सकी और पुटनीमें सालभर रहते समय एक क्रुद्ध गायने उसका पीछा किया था, पुटनीके होटलमें रीताने कई तश्तरियाँ फोड़ डाली थीं और जब वह जाड़ेके दिनोंमे कुछ सामान लानेके लिए देहात गयी हुई थी, तब बरफपर चलनेवाली गाड़ीसे नीचे गिर पड़ी थी।

"अरे! मैं तो भूल ही गयी थी। भोजन करनेका समय अब हो ही रहा है। इसके लिए हमें के० डी० यू० जाना है," रीताने मुझे कमरेसे बाहर खींचते हुए कहा।

के० डी० यू० का मतलब था किचन-डायनिंगरूम-यूनिट (पाकशाला तथा भोजनगृह) और मैंने समझा कि वह थोड़ी ही दूर होगी पर बात दूसरी निकली। एक खतरनाक खड़ी चट्टानसे नीचे उतरना था और इतनी ही खतरनाक चढ़ाई चढ़नी थी, तब कहीं उस पहाड़ीपर पहुँचना हो सकता था जिसपर के० डी० यू० अवस्थित था। उतरनेमें मुझे कुछ देर ही नहीं लगी। बात यह हुई कि पहला कदम उठाते ही मेरा पाँव ढालके ऐसे डगमगानेवाले पत्थरपर जा पड़ा कि मैं लुढ़कती-पुढ़कती हुई सीधे पहाड़ीकी तलहटीमें जा पहुँची और मेरा सूटकेस भी छलाँग मारता हुआ वहीं जा गिरा। रीता हँसते-हँसते लोट-पोट हो गयी।

"आपको जानना चाहिये था कि पुटनीमें ऊँची एड़ीके जूतेसे बेहतर कोई चीज पहिननी चाहिये थी! आप जानती हैं कि यह वेलेस्ली नहीं है," उसने जल्दी-जल्दी साँस लेते हुए कहा और व्यंग्यपूर्वक इतना और जोड़ दिया "काश, स्वामीजी इस वक्त आपको देख सकते! आप इतनी आध्यात्मिक दीख पड़ रही हैं!" मैंने अपने जूते और मोजोंके बचे हुए अंश उतार लिये और नंगे पाँव ही ऊपर चढ़ी।

"पहले यहाँ आइये और अपने हाथ धो डालिये," रीताने मुझे स्नानगृहकी ओर ले जाते हुए कहा—"आप बड़ी अस्तव्यस्त-सी दीख

पड़ती हैं।" मैं भीतर गयी तो देखा कि एक लड़की नीला हाफपैंट और कमीज पहने हुए तथा बाहोंको ऊपरकी ओर मोड़े हुए अपने मैले हाथ बेसिनमें साबुनसे मल-मलकर धो रही थी। इस कदर मैल छूट रहा था मानो वह सदियोंसे जमा होता रहा हो।

"अरे? तुम यहाँ कर क्या रही हो?" मैंने चेहरेपर जबरन प्रसन्नता लानेकी चेष्टा करते हुए कहा, "क्या तुम अपनी माताके आनेसे पहले ही सारी सफाई कर डालना चाहती हो?"

लड़कीने ऊपर नजर उठायी और मनोरंजक ढंगसे मुसकराते हुए कहा, "मैं यहाँ अंग्रेजी लेखरचना विभागकी प्राध्यापिका हूँ," उसने कहा, "मैं स्नातिका बनने नहीं जा रही हूँ।"

मैंने बड़ी आजिजीसे विनती की कि धरती फट जाती तो मैं उसमें समा जाती पर वह नहीं फटी, इसलिए मैंने पुनः बुद्धि-स्थैर्य प्राप्त करनेका प्रयत्न किया।

प्राध्यापिकाने मेरी हैरानी समझ ली, इसलिए उसने अपने मित्रतापूर्ण ढंगसे बात पूरी करते हुए कहा, "कोई बात नहीं, वह सब ठीक है। अन्य लोगोंको भी ऐसी भ्रांति हो गयी है। यहाँ पुटनीमें हम लोग प्राध्यापिकाओं तथा छात्राओंके बीच अन्तर रखनेमें विश्वास नहीं करतीं। यदि छात्राएँ हमें अपना मित्र समझ ले सकें तो यह बहुत अच्छी बात होगी।"

मैंने बड़ी कोशिश की किन्तु मैं इस बातकी कल्पना नहीं ही कर सकी कि मैं और वेलेस्लीकी मेरी अंग्रेजीकी प्राध्यापिका एक जैसे नीले हाफपैण्ट पहनकर भोजनके पहले, एक ही जलाधारमें अपने हाथोंका मैल छुड़ा रही हों।

रीताने पुकार कर कहा, "जल्दी कीजिये, अन्यथा हमें भोजन न मिल सकेगा।"

जब हम लोग खाना खा रही थीं, उसने बतलाया कि "भोजन समाप्त हो चुकनेके बाद मुख्य प्रकोष्ठक (हॉल) में नाचका आयोजन किया गया है। यहाँ पुटनीमें बोहीमियन ढंगके पोलका नृत्य, बाल्स नृत्य तथा लोकनृत्य ही चलते हैं।"

"कितनी अच्छी बात है?" मैंने कहा, "अब तो कमसे कम मैं

अपनी रुचिके अनुसार प्रवृत्त हो सकूँगी।" नृत्य ऐसी चीज है जिसे मैं अच्छी तरह कर सकती हूँ।

"अगर मैं आपको नृत्यस्थलमें छोड़ दूँ तो आपको कोई असुविधा तो न होगी ?" रीताने व्यग्रतापूर्वक पूछा, "जूली और जोसे तथा अन्य संगी-साथी देहातमें होनेवाली बिदाईकी एक काफी-पार्टीमें जा रहे हैं और उन्होंने मुझे भी बुलाया है।"

"हाँ, हाँ तुम खुशीसे जा सकती हो। मेरे सम्बन्धमें तुम बिलकुल परेशान मत होओ। मुझे केवल इतना बतला दो कि आज रातमें मुझे कहाँ सोना चाहिये।"

रीताने होस्टलका नाम लिखकर मुझे दे दिया और वह कहाँ है, यह भी बतला दिया।

भोजन कर चुकनेके बाद हम मुख्य प्रकोष्ठमें छात्रों तथा उनके माता-पिताओंकी चारो तरफ घूमनेवाली भीड़में जा मिले। लकड़ीका चिकना फर्श बनाया गया था जो नृत्यके लिए सर्वोत्तम था और कमरेके एक तरफ दो आदमियोंका वृंदवाद्य था—एक तो 'एकॉर्डियन' बजा रहा था और दूसरा पियानोंपर बैठा था। एक धूसरबालों तथा रक्त कपोलोंवाले सज्जन हाथमें दफ्तीका बना भोंपा लिये खड़े थे। उनका काम लोकनर्तनके लिए अनुदेश (ईंस्ट्रक्शन) देना तथा समारोहकी अध्यक्षता करना था।

"अच्छा भाइयो," भोंपा लगाकर बोलते हुए उन्होंने कहा, "अब हम अपना काम यहाँसे शुरू करते हैं कि छात्रगण माता-पिताओंसे पोलका नृत्यमें उनके साथ सम्मिलित होनेकी प्रार्थना करें। माता-पिता एक तरफ हो जायँ और छात्र दूसरी तरफ। अब आप लोग पोलका नृत्यके लिए अपना-अपना जोड़ीदार चुन लें।"

एक हृष्ट पुष्ट, चौड़े कंधेवाला युवक दृढ़ संकल्पके साथ मेरी ओर बढ़ा। मेरे लिए यह विश्वास करना कठिन था कि वह विद्यालयका छात्र है।

"कहिये, क्या आप ही रीताके माता-पिताका स्थान ग्रहण करने जा रही हैं ?"

मैंने हलकी-सी मुसकयानके साथ जवाब दिया—"जी हाँ, मैं ही

वह स्थान ग्रहण करूँगी।"

"तो फिर आइये हम लोग यह पोलका नृत्य शुरू कर दें।" जाब्ते-से स्वीकृति देनेका मुझे समय भी नहीं मिल पाया कि मैं जहाँ खड़ी थी वहाँसे खींच ली गयी और कठपुतलीकी तरह कमरेमें यहाँसे वहाँ, वहाँ-से यहाँ नाचनेको विवश कर दी गयी। लकड़ीका फर्श नृत्य करनेवालों-के भारसे 'चटचट' आवाज करता और कराहता-सा जान पड़ता था और झुण्डके झुण्ड आदमियोंके चेहरे मेरी बगलसे प्रभावित होते प्रतीत होते थे। "नृत्यमें आपको आनन्द तो आ रहा है न?" उसने एका-र्डियन बाजेकी आवाज डुबाते हुए जोरसे पूछा।

"निश्चय ही मैं इससे आह्लादित हूँ," मैंने भी उसी तरह जोरसे जवाब दिया, "यह नृत्य तो अद्भुत है।"

एकाएक संगीत रुक गया और उस युवकने भी हठात् मुझे इस तरह छोड़ दिया कि यदि मैंने अपनेको सँभाल न लिया होता तो मैं फर्शपर सामनेकी ओर फेंका गयी होती। तबतक मेरा वह साथी भीड़में न जाने कहाँ अन्तर्धान हो चुका था और मैं लँगड़ाती हुई कमरेके उस ओर चली आयी जहाँ माता-पिताओंके बैठनेकी जगह थी। मैंने निश्चय कर लिया था कि मैं शीघ्र दूसरे नृत्यमें सम्मिलित न होऊँगी किन्तु समारोहके धूसरित बालोंवाले अध्यक्षने तो नृत्यमें हिस्सा लिया न था, अतः उसे आराम करनेकी जरूरत न थी। उसने तुरन्त आवाज दी—"अब आप सब लोग वाल्स नृत्यके लिए अपना-अपना जोड़ीदार चुन लें। वाल्स नृत्य, देवियो और सज्जनो!"

अभी दो-तीन सेकण्ड ही बीते थे कि एक और बड़े डील-डौलका युवक, जो असाधारण रंग तथा तर्जकी बुशशर्ट पहिने हुए था, मेरे सामने आया और मुझे तूफानी गतिसे वृत्ताकार घूमने तथा चकरा देने-वाले वाल्स नत्यमें घसीट ले गया। मेरी प्रतिरोधशक्ति दुर्बल थी मानो मैं मिट्टीकी या मामूली चूनेके मसालेकी बनी होऊँ। मैं शराबके नशेमें चूर एवं मस्तिष्क-विकृतिवाले व्यक्तिकी तरह अपने स्थानपर लौट आयी। इस बार मेरा जोड़ीदार भी मुझे पहुँचानेके लिये साथ-साथ आया।

"अच्छा, ठंडा शर्बत आप पसन्द करेंगी?" साथमें आये व्यक्तिने पूछा।

"हाँ, वह तो बहुत अच्छा पड़ेगा," मैंने लड़खड़ाती-सी जबानमें जवाब दिया।

वह मेरे लिए कोकाकोलाकी एक बोतल ले आया जिसमें पीनेके लिए एक नली पड़ी हुई थी। उसकी दो-तीन चुसकी लेनेके बाद मेरी तबीयत कुछ ठीक-सी हो रही थी कि उन निर्मम महोदयकी आवाज फिर गूँज उठी।

"देवियो और सज्जनो! अब वर्गनृत्य (स्क्वायर डांस)के लिए आप लोग अपना-अपना साथी चुन लें।"

वर्गनृत्य एक तरहका अमेरिकी लोकनृत्य है और मैं उसे जानती थी, क्योंकि वेलेस्लीमें होनेवाले वर्गनृत्योंमें मैं हिस्सा ले चुकी थी। किन्तु पुटनीमें उसका जो रूप प्रचलित था वह बिलकुल निराला था। वह वेलेस्लीके सभ्य तरीकेको पुराने, पिछड़े हुए प्रयत्नमें परिणत कर देता था। यदि मैं समझती थी कि पहलेके नृत्योंमें मुझे बड़ा आनन्द आता था तो वह उसकी तुलनामें कुछ भी न था जो अभीतक मेरे लिए अज्ञातके भण्डारमें सुरक्षित था। मैं एक झुंडमें खींच ली गयी और फिर इसके बादका आधा घंटा ऐसे व्यायामोंकी शृंखलामें बीता जिनमें काफी ताकत लगानी पड़ती थी। मैं अपने जोड़ीदारका लिहाज करते हुए इस तरह बिजलीकी गतिसे चारों तरफ थिरकती और हवामें उछलती थी, जैसा कर सकनेकी अपनी क्षमताके बारेमें मैं कभी विश्वास भी न करती थी। अधिक उत्साही नाचनेवाले बीच-बीचमें सीटी भी बजाते और किलकारी मारते थे।

बिलकुल थक जानेके कारण मैं सीधे कमरेके उस भागमें चली गयी जो माता-पिताओंके लिए था और लकड़ीकी एक कठोर बेंचपर लस्त होकर बैठ गयी। मैंने रीताके लिए चारों तरफ नजर दौड़ायी पर वह बहुत पहले ही अपनी काफी-पार्टीमें शामिल होनेके लिए खिसक गयी थी। करीब-करीब आधी रात हो चुकी थी। कभी हार न माननेवाला वृंदवाद्य फिर बज उठा और मुझे यह देखकर बड़ी निराशा हुई कि पुटनीके पुरुषत्वका एक हट्टा-कट्टा नमूना फिर भीड़मेंसे चक्कर काटते हुए मेरी ओर बढ़ रहा था।

"जी नहीं, अब नहीं", मैंने साँस लेकर कहा और मुझे लगा कि

मैं जोरसे बोल गयी। मैंने अपने पीछे किसीको हँसते हुए सुना। मैंने मुड़कर देखा तो एक साफ-सुथरे कपड़े पहिने, सुन्दर देख पड़नेवाला युवक मेरी तरफ देखकर मुस्करा रहा था।

"हे भगवान्! आप भी क्या पिता के स्थान पर आये हैं?" मैंने कमरेके अपनी तरफवाले हिस्सेमें अपनी पुश्तके एक और व्यक्तिको पाकर प्रसन्न होते हुए पूछा।

उसने सहानुभूतिपूर्वक सिर हिलाते हुए स्वीकृतिसूचक भाव प्रकट किया—"आजकल माता-पिता को कैसे-कैसे काम करने पड़ते हैं।" हम लोग एक साथ ही हँस पड़े। "मेरा भाई स्नातक कक्षामें है, उसने आगे कहा—"और मैं उसकी गर्दन ऐंठ दे सकता था। देखिये तो, उसने मुझे अकेले यहाँ छोड़ दिया जो एक अदने आदमीको भी नहीं जानता और आप खुद बिदाई में दी जानेवाली पार्टीमें सम्मिलित होनेको चला गया।"

"मेरी बहिन भी गयी है," मैंने कहा।

"देखिये, मेरे मनमें एक विचार आता है," उसने कहा, "हम लोग यहाँसे निकल चलें, इसके पहले कि कोई हमें विस्तरणी (स्ट्रेचर) पर ढोकर ले चलनेको बाध्य हो। मेरे पास मोटरकार है। उसीमें बैठकर हम लोग कहीं घूम आवें। आप रातमें जहाँ ठहरना चाहतीं हों वहाँ मैं आपको उतार दूँगा।"

हम लोग ढीले पुरजोंवाली, पुरानी फोर्ड गाड़ीमें सवार हो गये और धक्के खाते हुए वरमाण्ट पहाड़ीकी ऊबड़-खाबड़ ढालपर चल पड़े। स्वच्छ, शुभ्र चाँदनी छिटकी हुई थी। मैंने पहली बार देखा कि मेरे साथ चलनेवाला यह व्यक्ति उन युवकोंसे जिनके साथ मैं नाचती रही, भिन्न तरहका मालूम होता था।

"अच्छा, इसका तो मैंने ख्याल ही नहीं किया था कि आप ठिकाने-की पोशाक पहने हुए हैं।"

उसने मुसकराते हुए कहा "आप भी तो पहिने हैं? हम दोनों ही इस जंगलमें अजनबी हैं।"

मुझे पता चला कि वह हार्वर्ड विश्वविद्यालयमें छात्र है और मैंने उसे बताया कि मैं वैलेस्लीमें हूँ। मुझे सन्देह है कि स्टानली तथा

लिविंगस्टोनको भी एक दूसरेको खोज निकालनेपर इससे अधिक प्रसन्नता हुई होगी। वह मुझे मेरे होस्टलतक वापस ले गया, जहाँ रीता मेरी प्रतीक्षा कर रही थी।

"मुझे आशा है कि मेरे चले जानेके बाद आपको कोई दिक्कत नहीं हुई।"

"हाँ, इसमें क्या सन्देह? मैंने पहले ही कहा था कि मेरे लिए परेशान होनेकी आवश्यकता नहीं। मैंने उनींदी-सी होकर जँभाई ली। मैं अपने बिस्तरेकी प्रतीक्षामें थी।

"आपको सोनेके लिए बनी थैलीमें घुसकर सोना पड़ेगा," उसने सूचना दी, "यदि आप और पहले आ गयी होतीं तो आपको पलंग मिल जाता, किन्तु अब कोई फाजिल पलंग नहीं हैं। हाँ, यदि आप रुग्णालयमें सोना पसन्द करें तो बात दूसरी है।"

"नहीं, वहाँ नहीं, धन्यवाद," मैंने शीघ्रतासे जवाब दिया, "मैं सोनेकी थैली ले लूँगी।"

मैं पेटके बल लेटकर धीरेसे उसमें घुस गयी और गहरीसे गहरी नींदमें खो गयी। मैंने मुश्किलसे रीताके ये शब्द सुने—"मैं कल सबेरे आपको यथासमय उपाधिवितरणोत्सवके लिए ले चलूँगी।"

अध्याय १८

संयुक्त राष्ट्रसंघ

अतीतपर दृष्टि डालनेपर अब ऐसा प्रतीत होता है कि संयुक्त राष्ट्रसंघका पहला अधिवेशन बादके अधिवेशनोंसे मूलतः भिन्न था। अक्तूबर १९४६ में वातारण बाहुल्य तथा आशावादका था। अधिवेशनमें ऐसे लक्षण देख पड़ते थे जिनसे मालूम होता था कि इतिहासका सबसे बड़ा अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन होनेके सिवा वह कुछ और भी था। वह मानवीय सम्बन्धोंका सबसे बड़ा परीक्षण हाने जा रहा था जो कभी किया गया हो। उसकी सफलताके लिए राजनीतिक कुशलता, तीक्ष्ण बुद्धि एवं सच्चे सहयोगकी आवश्यकता होगी किन्तु किसी अन्य अनुष्ठानकी ही तरह जिसका सम्बन्ध मनुष्योंसे हो, इसके लिए भी उसके तत्वतः उचित माने जाने तथा उसके अन्तिम लक्ष्यमें श्रद्धाका होना आवश्यक होगा। प्रत्येक मनुष्य यह जानता था कि जो काम करना है वह विशाल है, फिर भी ऐसा प्रतीत होता था मानों सब राष्ट्र ऐसे सहयागी जादूगर बन गये हों जो महान चमत्कार उत्पन्न करनेके लिए शान्तिपूर्ण चर्चा तथा पारस्परिक समझौते द्वारा चिरन्तन शान्ति स्थापित करनेके लिए किये जानेवाले सामूहिक प्रयत्नमें संग्रथित कर दिये गये हों। जो हो, कम-से-कम उस आदर्शवादी १९ वर्षीया लड़कीको (मुझे) तो ऐसा ही प्रतीत होता था जो आश्चर्य तथा भयके साथ वहाँकी काररवाई देखती थी।

फ्लशिंग मीडोज, न्यूयार्क का कमरा, जहाँ खुला अधिवेशन हुआ था, स्वयं ही बड़ा सम्मानोत्पादक था। वह सुन्दर था और प्रतिनिधियोंकी आवश्यकताएँ पूरी कर सकने योग्य उपादानोंसे युक्त था। मंचके पीछे संसारका विशाल मानचित्र दीवारपर यहाँसे वहाँतक फैला हुआ था, जो निरन्तर इस बातका स्मरण दिलाता रहता था कि दुनिया एक है। 'कनसर्ट ऑफ यूरोप' (यूरोपके एक गुट) द्वारा या तीन महान्, चार महान्, या पाँच महान् द्वारा शासनके दिन अब लद चुके

थे। फिलहाल इसका कोई महत्त्व नहीं रह गया था कि बड़े राष्ट्रोंकी संख्या कितनी थी, क्योंकि बड़ा राष्ट्र हो या छोटा सबके समवेत भाग्यमें प्रत्येकको उलझना पड़ता था। परिणाम चाहे जो हो, हम सभी-को उसे वहन करना होगा। व्यापक आशावाद तथा उत्साहके बीच अभिमानका वह भाव भी था जो रीताके तथा मेरे हृदयमें अपने देशके प्रतिनिधिमण्डलके लिए विद्यमान था। विदेशमें होनेवाले किसी अन्त-र्राष्ट्रीय सम्मेलनमें पहली बार भारतका प्रतिनिधित्व ऐसे लोग कर रहे थे जिन्हें खुद उसकी ही सरकारने चुना था। हमें इस बात पर और भी अधिक अभिमान होता था कि इस प्रतिनिधिदलका नेतृत्व मम्मी-को करना था। दक्षिण अफ्रिकामें भारतीयोंके प्रति होनेवाले व्यवहार-का कठिन प्रश्न महासमितिके सामने प्रस्थापित किया जानेवाला था। हम लोगोंका यह दृढ़ विश्वास था कि हमारे जीवनमें चमत्कार उत्पन्न कर देनेकी मम्मीकी क्षमता उनके शिष्टमण्डलके नेतृत्वमें भी देख पड़ेगी और स्वयं महासमितिके बीचमें भी उसका आभास मिलेगा।

विशुद्ध व्यक्तिगत दृष्टिसे वह अधिवेशन मेरे तथा रीताके लिए स्मरणीय था। इसका मतलब होता था कि न्यूयार्कका साप्ताहान्त हम सुन्दर और सजीले हैम्पशायर हाउसमें बिताती थीं। उसका यह भी अर्थ होता था कि संघ भवनके बरामदोंमें या उन्नयनयन्त्रों (लिफ्टों) में संसारके सभी तरहके प्रसिद्ध व्यक्तियोंसे हमारी देखादेखी हो जाती थी। और सबसे अधिक महत्त्वकी बात यह है कि उससे हमें अपने समयके सर्वख्यात राजनीतिक व्यक्तियोंसे बातचीत करनेका, महान् और सुप्रसिद्ध राजपुरुषोंके रूपमें नहीं वरन् साधारण मित्रतापूर्ण व्यक्तियोंके रूपमें, अवसर मिल जाता था।

श्री बेविन, जिनमें अट्टहासपूर्ण एवं आश्चर्यजनक विनोदशीलता थी, और जो निर्भीक वक्ता थे, अत्यन्त औपचारिक भोजोंके समय भी गम्भीर और शिष्ट बने रहनेसे इनकार कर देते थे। एक अधिक खर्चीले स्वागत-समारोहके समय उन्होंने मुँह बनाकर कह दिया था, "इतनी सब शैम्पैनका मैं क्या करूँगा? मुझे किसी भी समय व्हिस्की चाहिये।" श्री विशिंस्कीके व्यवहारने प्रतिनिधियोंके हृदयोंमें मिश्रित भाव उत्पन्न कर दिये हों किन्तु हमारे लिए वे मनोमोहक, सौहार्दपूर्ण महानुभाव

थे, जिनकी झपकती हुई हास्यपूर्ण नीली आँखें थीं, जिनकी एक लड़की मॉस्कोके कालेजमें पढ़ती थी और जो मेरे द्वारा रुक-रुककर बोली जानेवाली रूसी भाषाको शिष्टतापूर्वक तथा प्रोत्साहनात्मक ढंगसे सुन रहे थे। मम्मीने जो छोटा-सा भोज दिया था, उन्हें उस समय बड़ी खुशी हुई थी जब मैंने उन्हें एक रूसी राष्ट्रीय गान सुनाया था और जो एक-मात्र रूसी गीत था जो मैं जानती थी। बादमें रीताने कतिपय भारतीय गीत भी सुनाये जिसमें अच्छी सफलता मिली और जिससे प्रभावित होकर प्रसिद्ध राजनीतिज्ञोंके उस समूचे दलने यूरोपके आह्लादपूर्ण नृत्योंका प्रदर्शन किया। पार्टीमें उपस्थित एक महिलाने, जो डेनिश प्रतिनिधिदलकी एक सदस्या थीं तथा जो बादमें डेनमार्ककी ओरसे आइसलैण्डमें राजदूत नियुक्त हुईं, बादके एक अधिवेशनमें मम्मीसे कहा था "हमने कभी ऐसी अनौपचारिक या आह्लादपूर्ण दावत नहीं देखी जैसी वह सुखद संध्या जो हमने आपके तथा आपकी पुत्रियों-के साथ बितायी थीं।"

संयुक्त राष्ट्रसंघके कदाचित् सबसे सम्मोहक व्यक्ति सऊदी अरबके अमीर फैजल थे जिनके ढीले-ढाले कपड़े आगे-पीछे लहराते चलते थे और जिनका रंगढंग दरबारी होता था। बहुत दिनोंतक मम्मी यह देखकर आश्चर्य करती रहीं कि वे जब उनके सामनेसे या बगलसे निकलते तो उनका उस तरह स्वागत-सत्कार न कर जिस तरह वे अन्य महिलाओंका किया करते थे, नीची निगाह कर निकल जाते थे। एक बार जब मम्मीने हँसते हुए इस विषयकी चर्चा शुरू की, तब उन्होंने गम्भीर होकर इस प्रकार अपनी बात समझायी—"महोदया, वे सब तो महि-लाएँ मात्र हैं। आप मेरी बहिन हैं।"

मैं बोस्टनसे शुक्रवारकी रातवाले विमानमें न्यूयार्क पहुँचती थी और रीता इसके कुछ पहिले रेलगाड़ी द्वारा न्यूहोप, पैनसिलवेनियासे जहाँ वह कला (ड्राइङ्ग) सीखती थी, जा पहुँचती थी। अक्सर सप्ताहान्तके यात्रियोंसे गाड़ी खचाखच भर जाती थी, जिससे लोगों को उन चबूतरोंतक पहुँचनेकी कोशिश करनी पड़ती थी जहाँ गाड़ीमें जगह न रहनेपर दो अतिरिक्त डब्बे जोड़े जाते थे। ऐसे ही एक अव-सरपर रीता और उसकी सखी मारगरेट चबूतरेपर अपने सूटकेसपर

बैठी थीं और बहुतसे जहाजी अगल-बगलमें खड़े थे। आपसमें बातचीत शुरू हुई और शीघ्र ही संयुक्त राष्ट्रसंघ या राजनीतिक प्रश्नोंपर बहस छिड़ गयी।

मारगरेटने एक नाविकसे कहा—"आप जानते हैं, जवाहरलाल नेहरू इस लड़कीके मामा हैं?"

नाविकने अपने साथीकी तरफ देखकर आँखें झपकायीं और कहा—"अयँ! क्या कहा हैरी ट्रूमन मेरे इस संगीके पिता हैं!"

मारगरेटको इस परिहासपर बड़ा क्रोध आया किन्तु रीता रास्ते भर हँसती रही।

हम लोग कभी-कभी मम्मीके साथ सभाकी बैठकोंमें जाती थीं, विशेषकर उस समय जब कोई ऐसा विषय पेश होता जिसमें हमें विशेष दिलचस्पी होती। कभी-कभी हम प्रतिनिधियोंके आराम करनेकी जगहमें रह जातीं, जहाँ बैठकर हम अखबार पढ़ती रहतीं, काफी पीतीं और आने-जानेवाले मित्रोंके साथ बातचीत करतीं। वहाँ काफी हलचल रहती और लोग विविध विषयोंपर विवाद करते तथा गप्प हाँकते। दो बैठकोंके बीचके समयमें वहाँ बेहद भीड़ हो जाती, जिसमें रहते प्रतिनिधि, रिपोर्टर, फोटोग्राफर, दुभाषिये तथा सचिव, जिन सबका सम्बन्ध विश्वको हिला देनेवाली घटनाओंसे रहता है। यदि मम्मी भी वहाँ बैठी रहतीं तो अक्सर मैं उनसे इतनी ही दूरीपर रहती जिसमें यदि उन्हें सन्देश आदि पहुँचानेके लिए मेरी जरूरत हो तो वे मुझे पुकार सकें। एक दिन मैं अपने कुछ मित्रोंके साथ खड़ी हुई थी जब कि असेम्बली भवनमें फ्रांसीसी अनुवाद किया जा रहा था। इतनेमें मैंने देखा कि मम्मी जो एक सोफेपर बैठकर किसी रिपोर्टरसे बातचीत कर रही थीं, भौंहें चढ़ाकर ऊपरकी ओर ताकने लगीं।

उन्होंने मेरी ओर संकेत किया। निकट आनेपर बोलीं—"जरा रीताको जाकर मना तो कर दो कि वह इधरसे उधर मत दौड़ा करे। यह दूसरी बार है कि वह इस विश्रामकक्षके आरपार दौड़कर गयी है।"

मैंने देखा कि इस ओर पीठ किये हुए रीता भीड़मेंसे निकली जा रही है। मैंने उसका पीछा किया और देखा कि वह बरामदेमें बिना किसी उद्देश्यके टहल रही है और उदास-सी है।

"क्या तुम्हारे लिए यह जरूरी है कि तुम विश्रामकक्षमें इस ओरसे उस ओर दौड़ा करो ?" मैंने पूछा।

"मेरी दीदी, क्षमा करें। मैं विवश हो गयी थी। क्या मम्मी नाराज हैं ? मैं टेलीफोनकी तलाशमें थी।"

"जो हो, जरा-सी ही कसर रह गयी थी नहीं तो तुमने धक्का मारकर जनरल रोम्यूलीके हाथसे टमाटरका रस गिरा दिया होता। और यदि तुम थोड़ा और तेज चलतीं तो तुमने एक अन्य सज्जनके घट्टेको रौंद डाला होता और उसने अपना वोट हम लोगोंको न दिया होता।"

"आप कैसे जानती हैं कि उनके पाँवमें घट्टा था ?"

"उनके चेहरेसे प्रतीत होता था कि उनके पैरमें घट्टा है," मैंने जवाब दिया।

रीताने क्षमा-याचना सी करते हुए कहा—"मैं कुछ परेशान-सी हूँ। जेरीकी पत्नीको बच्चा होनेवाला है जो किसी भी समय हो सकता है और मैं यह जाननेके लिए अस्पतालमें टेलीफोन करना चाहती थी कि उसके अभी कुछ हुआ या नहीं। सभी टेलीफोनोंपर कहीं न-कहींसे बातचीत हो रही है और मैंने सोचा कि शायद विश्रामकक्षमें भी एक टेलीफोन हो।" जेरी मम्मीका शोफर (मोटर ड्राइवर) था।

मैं उत्तेजित हो उठा। "नादान लड़की ! तुम अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धोंपर पानी फेरती और विश्व-शान्तिको खतरेमें डालती हुई इस तरह नहीं चल सकती; केवल यह कारण बताकर कि जेरीकी पत्नीके बच्चा होने वाला है। क्या तुम यह समझ पा रही हो कि तुम्हारी हरकतके ही ही कारण दक्षिण अफ्रिकाके भारतीयोको अधिक अच्छे व्यवहारकी आशा छोड़ देनी पड़ी ? फिर, तुम परेशान किसलिए हो रही हो ? मेरा तो विश्वास है कि ऐसी घटनाओका अनुभव उसे पहले भी हो चुका है। उसके कई बच्चे होने चाहिये।

"जी नहीं," रीताने गम्भीरतापूर्वक कहा—"कई बच्चे उसके नहीं, वरन् जस्टिस चागलाके शोफर फ्रेडके हैं—दो लड़के तथा एक लड़की। जेरीके अभी कोई बच्चा नहीं है यही उसका पहला बच्चा होगा और उसकी स्त्रीका तीसरा। यह उसका दूसरा पति न हैं"।

मनुष्योंमें तथा उनकी समस्याओमें अत्यधिक दिलचस्पी लेना और

जिन-जिन लोगोंको हम जानते हैं, उन सबके बारेमें अनन्त जानकारी रखना, रीताकी ऐसी विशेषता है जो मुझे आश्चर्यचकित किये बिना नहीं रहती। इसी समय जेरी दरवाजेपर आकर खड़ा हो गया।

"राता जी! कोई खबर मिली?"

"नहीं, अभीतक कुछ नहीं मालूम हुआ किन्तु ज्यों ही कोई खबर मिलेगी, मैं तुम्हें सूचित करूँगी।"

स्पष्ट था कि रीताके हृदयको विश्व-शान्तिका प्रश्न उतना प्रिय न था जितना यह कि जेरीको अपने प्रथम नवजात शिशुकी खबर तुरन्त मिलनी चाहिये। इसके लिए सचेष्ट होनेमें यदि किसीके हाथसे टमाटरका रस टपककर गिर पड़ता है तो गिर जाय, किसीका घट्ठा रौंद दिया जाता है तो परवाह नहीं और यदि मम्मीकी भृकुटि चढ़ जाती है तो वह भी उपेक्षणीय है।

अन्तमें हम लोगोंके घर पहुँच जानेके बाद ही इसका समाचार प्राप्त हो सका। रीताने अस्पतालको टेलीफोन किया और फिर बैठकखानेमें चली आयी—उसकी आँखें खुशीसे चमक रही थीं।

"लड़की हुई! ठीक वही जो जेरीकी इच्छा थी। तीन सेर छः छटाँक वजन है उसका

"बहुत ठीक," मम्मीने कहा—"अब हम लोग कुछ चैनसे रह सकेंगी।"

"जी, केवल उस समय तक जबतक कि उसके दाँत नहीं निकलने शुरू होते," मैंने उन्हें स्मरण दिलाया और जल्दीमें निहुर कर बैठ गयी, उस तकियेसे अपना सिर बचानेके लिए जो रीताने मेरी ओर तानकर फेंका था।

× × × ×

संयुक्त राष्ट्रसंघके अधिवेशनका सबसे महत्त्वपूर्ण विषय वह मामला था जो भारतने दक्षिण अफ्रिकाके विरुद्ध उठाया था। उस देशमें बसे भारतीयोंको मानवाधिकारोंसे वंचित रखनेके विरुद्ध भारतने अपनी आवाज उठायी थी और उसने 'एशियाटिक लैण्ड टैन्यूर ऐक्ट' तथा 'इण्डियन रिप्रेजेण्टेशन ऐक्ट' का भी विरोध किया था, क्योंकि उसका कहना था कि इनके कारण उसके तथा दक्षिण अफ्रिकाके बीच

मैत्री सम्बन्ध बनाये रखने में बाधा पड़ती है। उसने माँग की थी कि महासमिति दक्षिण अफ्रिकाको अपनी समूची नीति बदलने तथा इन विधानों एवं शासनिक व्यवस्थाओंमें संशोधन करनेकी सलाह दे और जो कारवाई उसने इस सम्बन्धमें की हो उसकी सूचना महासमितिके अगले अधिवेशनमें पेश करे।

मैं समझती हूँ कि दक्षिण अफ्रिकाके मामलेमें भारतकी विजय उस अधिवेशनके आदर्शात्मक रवैयेकी सूचक है। इस संग्राममें भारत अकेला न था। यह देखना बड़ी उत्साहजनक बात थी कि किस तरह दुनियाके अधिकतर राष्ट्रोंने उसके पक्षका समर्थन करते हुए दक्षिण अफ्रिकामें भारतीयोंके प्रति किये जानेवाले व्यवहारकी निन्दा की। समूचे प्रश्नपर संयुक्त कमेटीमें (राजनीतिक और सुरक्षा कमेटी तथा कानूनी कमेटीकी सम्मिलित बैठकमें) वाद-विवाद होनेवाला था।

वादविवाद शुरू होनेके पहले ही अध्यक्षने सुझाव दिया कि प्रश्न समीक्षाके लिए एक उपसमितिके सिपुर्द कर दिया जाय। किन्तु यूक्रेनके प्रतिनिधि श्री मैनुइल्स्कीने इसका विरोध किया। उन्होंने कहा कि यह प्रश्न अत्यधिक महत्त्वका है और इसे किसी उपसमितिके सिपुर्द करना ठीक न होगा। इसलिए वह संयुक्त समितिमें ही बना रहा। इस पर जब वाद-विवाद हुआ तो अनेक राष्ट्रोंने भारतके पक्षका समर्थन किया। पोलैण्डने कहा कि नात्सियोंने पोलैण्डवालोंके साथ जैसा व्यवहार किया था, उसीसे मिलता-जुलता यह मामला भी है। चीनने कहा कि 'एशियाटिक लैण्ड टेन्यूर ऐक्ट' केवल भारतीयोंके साथ ही भेदभाव नहीं करता वरन् वह समस्त एशियावासियोंके भी विरुद्ध है। इन तथा अन्य राष्ट्रोंने जिनका इस मामलेसे प्रत्यक्षतः कोई सम्बन्ध न था और जिनके साथ इनके समकक्ष कोई कठिनाइयाँ नहीं थीं और न जिनके लिए कोई खतरा ही था, केवल सिद्धान्तकी बात समझकर भारतका समर्थन किया, क्योंकि उन परिस्थितियोंमें केवल यही उचित और सम्मानित रुख था जो ग्रहण किया जा सकता था।

बहसके समय मम्मी तथा फील्ड मार्शल स्मट्स दोनोंने ही शान्ति-पूर्वक एवं संयमके साथ अपने विचार प्रकट किये। किन्तु दक्षिण अफ्रिकाके श्री हीटन निकोल्स क्रुद्ध होकर बहुत-सी बातें बक गये। उन्होंने भारतपर

यह आरोप किया कि वह अपने अस्पृश्योंके साथ उससे कहीं बदतर व्यवहार करता है जैसा दक्षिण अफ्रिकामें भारतीयोंके साथ होता है। (मैं कह नहीं सकती कि इसका उद्देश्य दक्षिण अफ्रिकाके रुखका औचित्य दिखलाना था या और कुछ)। उन्होंने बतलाया कि दक्षिण अफ्रिका जंगली निवासियों तथा बहुविवाह करनेवाली जातियोंसे आवासित काले लोगोके महाद्वीपमें ईसाई सभ्यताके परित्राणका प्रयत्न कर रहा था। इसके जवाबमें मम्मीने जब यह कहा कि बहुविवाह-की प्रथा, चाहे कानूनका समर्थन उसे प्राप्त हो या न हो, केवल पूरबके देशोंतक ही परिसीमित है, ऐसी मेरी जानकारी नहीं, तब पश्चिमी एशिया तथा उत्तरी अफ्रिकाके देशोंके प्रतिनिधियोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। और जहाँतक ईसाई सभ्यताका सवाल है, उन्होंने कहा, सो उस सम्बन्धमें इतना ही कहना अलम् होगा कि आज यदि स्वयं ईसामसीह दक्षिण अफ्रीका आना चाहें तो वे 'निषिद्ध आगन्तुक' ही समझे जायँगे।

विवाद समाप्त हो जानेके बाद श्रीमती विजयालक्ष्मी पंडित स्वयं फील्ड मार्शल स्मट्सके पास गयीं और बोलीं, "मुझे आशा है कि मैंने ऐसी कोई व्यक्तिगत बात नहीं कही जिससे आपको चोट पहुंचे। स्वदेशसे प्रयाण करनेके पूर्व गांधीजीने मुझे यही निर्देश दिया था कि मैं आपके पास आकर आपसे हाथ मिलाऊँ और अपने मामलेकी सफ-लताके लिए आपका आशीर्वाद प्राप्त करूँ।"

फील्ड मार्शल कुछ देरतक उनके मुँहकी तरफ देखते रहे। फिर बोले, "मेरी बच्ची, तुम जीत जा सकती हो किन्तु तुम्हारे लिए यह खोखली विजय ही होगी।"

उनके ये शब्द भविष्यवाणीके समान थे। उस बहसके बाद ही वे वहाँसे चले आये और प्रश्नपर जब अन्तिम मतगणना हुई तब वे वहाँ उपस्थित न थे।

विभिन्न देशोंके प्रतिनिधियों द्वारा प्रायः प्रति सन्ध्याको एक-न-एक पार्टी (दावत) दी जाती थी। उसमें मम्मी तथा फील्ड मार्शल स्मट्स अक्सर ही अन्य लोगोंसे पृथक् खड़े होकर परस्पर बातचीत करते रहते थे। एक बार मैं भी मम्मीके पास ही खड़ी थी और उन्होंने मेरा परिचय

उनसे कराया। सैनिककी तरह सीधा, अकड़कर उनका चलना और शानदार उनका व्यवहार था, जिससे उनके व्यक्तित्वका काफी प्रभाव पड़ता था।

उन्होंने पैनी दृष्टिसे मुझे देखा और कहा, "तुम सोचती होगी कि मैं भयोत्पादक बूढ़ा आदमी हूँ, है न?" उन्होंने मम्मीके हाथपर थपकी दी और बोले, "ये मेरी बेटीके समान हैं। क्या तुम यह समझ सकती हो? मुझे इससे बड़ी पीड़ा होती है कि मुझे उनके साथ संघर्ष करना पड़ता है।"

"तो फिर आप ऐसा क्यों करते हैं?" मैंने आश्चर्य करते हुए अपने मनमें ही कहा। मेरे अधीर मनमें यही बात आती थी कि जो चीज उचित है, वह उचित ही है और जो गलत है, वह गलत ही है, और उन दोनोंमें किसी तरहका मेल या समझौता नहीं हो सकता। यदि वे सचमुच ईमानदार और सच्चे थे, मैंने मन ही मन ख्याल किया, तो वे अपने देशका समर्थन कैसे कर सकते थे? लेकिन मेरे इस कठोर दृष्टिकोणके बावजूद, मेरे मनमें हलकी-सी यह धारणा भी थी कि इस सैनिकके व्यवहारमें भी, दूरतक देखने पर थोड़ासा गांधीपन या गांधी-विचारधाराकी छाया विद्यमान थी। हो सकता है कि इस प्रश्नके सम्बन्धमें वे हमारे शत्रु रहे हों किन्तु फिर भी वे एक ग्लानिपूर्ण, पश्चात्तापपूर्ण शत्रु थे।

अक्सर तो मैं रविवारकी शामको ही वेलेस्ली लौट जाया करती थी किन्तु रविवार ७ दिसम्बरको अन्तिम मतदान होनेवाला था और मैं उसे बिना देखे छोड़ना नहीं चाहती थी, इसलिए मैं सभामें ठहर गयी। मैं एक फिलिपिनो मित्रके पार्श्वमें बैठी थी और हम दोनों ही सम्भावित परिणामकी प्रत्यपेक्षा एवं चिन्तासे व्यग्र हो रहे थे। अधिवेशन रातमें देरतक होता रहा। कोई दो बजे वह समाप्त हुआ। जबतक काररवाई जारी रही, मैं अपनी कुरसीमें जरा भी हिली-डुली नहीं। मम्मीने भाषण करते हुए कहा—

"मैं भारतके लिए किसी कृपाकी माँग नहीं करती'.....'दक्षिण अफ्रिकाकी भारतीय आबादीके लिए कोई रियायत नहीं चाहती। मैं संयुक्त राष्ट्रोंके समयक (चार्टर) की प्रमाण-सिद्ध अवहेलनापर इस

महासमितिका निर्णय चाहती हूँ; उस प्रश्नके सम्बन्धमें, जिसके कारण दो सदस्य राज्योंमें गहरा झगड़ा खड़ा हो गया है, ऐसे प्रश्नपर जो अकेले भारत या दक्षिण अफ्रिकातक ही सीमित नहीं है, और अन्तमें ऐसे प्रश्नपर जिसके सम्बन्धमें किया गया निर्णय विश्वकी सामान्य जनताकी उस निष्ठा एवं विश्वासको पुष्ट करेगा या नष्ट कर देगा जो उसने हमारे ऊपर रखा है। मेरी पुकार या अपील अन्तःकरणसे, संसारके अन्तःकरणसे है जिसको सूचक यह महासमिति है।"

अन्तिम मतदानसे भारतको आवश्यक दो-तिहाई बहुमत प्राप्त हो गया। अब मैं कुरसीपर बैठी मानो एकाएक जीवित हो उठी और मेरे लिए अपनी भावना एवं उत्साहको अपने भीतर समाये रखना मुश्किल हो गया। मैं मम्मीको बधाई देनेके लिए उनकी मेजतक दौड़ी गयी और जब मैंने उनका चुम्बन किया तो उसकी आवाज ध्वनिक्षेपक यन्त्र द्वारा सारे कमरेमें फैल गयी। प्रकोष्ठके प्रत्येक कोनेसे भारतके समर्थक उस स्थानको दौड़ पड़े जहाँ वे बैठी हुई थीं और उन्होंने उन्हें तथा भारतीय प्रतिनिधिमण्डलको बधाई दी। किन्तु मम्मीकी खुशी कुछ फीकी पड़ चुकी थी जिसका कारण कदाचित् फील्ड मार्शल स्मट्स-की उपरिलिखित अभ्युक्ति थी और जो बादमें इतनी सच्ची प्रमाणित हुई।

उस समयके बादसे दक्षिण अफ्रिकाका प्रश्न महासमितिके सामने बार बार आता रहा है। प्रत्येक बार समितिने कोई-न-कोई अभिस्ताव किया है किन्तु दक्षिण अफ्रिकाकी सरकारने बराबर उसकी अपेक्षा ही की है। इस घटनासे प्रत्येक व्यक्तिके मनमें यह बात अवश्य ही आयी होगी कि शब्दोंसे कोई काम नहीं निकलता, वे बड़ी वीरता और दृढ़तासे जिस बातका प्रतिपादन करते हैं, उसे ही पूरा करानेमें असमर्थ होते हैं। सत्य बात विश्वासपूर्वक कही जानेपर भी, दुःखमय परिस्थितिसे संसारकी रक्षा नहीं कर सकती।

शब्दोंका उपयोग ही क्या है? लाखों, करोड़ों शब्द, जोरदार और तथ्यपूर्ण, सुने-अनसुने कर दिये गये, हृदयकी गहराई और जोशके साथ अन्तःकरणको लक्ष्य कर की गयी पुकार व्यर्थ गयी ऐसे समय जब प्रत्येक व्यक्तिको उधर ध्यान देना चाहिये था। मनुष्यकी हठधर्मीकी

इससे बढ़कर टीका और क्या हो सकती है कि वह तबतक कोई बात नहीं सुनता जबतक उसका अवसर निकल नहीं जाता और फिर सुन-नेसे भी कोई लाभ नहीं होता। वह उन्मत्त भावसे, विवेकरहित होकर, आगे बढ़कर चला जायगा, ठीक उसी तरह जिस तरह बिना रोशनीकी शक्तिशाली मोटरकार अँधेरी सड़कपर तेज रफ्तारसे दौड़ती जा रही हो। ऐसी स्थितिमें यदि कोई दुर्घटना हो जाती है तो इसमें आश्चर्य ही क्या ? दक्षिण अफ्रिकापर हमारी जीत वस्तुतः शब्दोंकी ही जीत थी किन्तु इससे क्या वहाँके हमारे देश भाइयोंकी स्थिति सुधारनेमें सफलता मिली ? सचमुच ही वह एक खोखली जीत थी, जो मनुष्य जाति द्वारा की गयी स्वविवेककी उपेक्षाका एक और उदाहरण है।

अध्याय १९

स्वदेश लौटनेकी तैयारी

महाविद्यालयमें मेरा अन्तिम वर्ष मेरा सबसे सुखद वर्ष था किन्तु यतः उसके समाप्त होते ही मुझे अमेरिकासे प्रस्थान कर देना था, इसलिए वह एक दुःखपूर्ण वर्ष भी था। ज्यों ज्यों दिन बीतते जाते थे, मैं अनुभव कर रही थी कि मुझे अब शीघ्र ही घर लौटना होगा और यह विचार मेरे मनमें एक अनिश्चितता उत्पन्न कर देता था, जिस तरह सन् १९४३ में भारत छोड़ते समय हुआ था।

रीता और मैं सोच रही थी कि अमेरिकामें अपना बड़े दिनोंका अन्तिम त्यौहार हम लोग किस तरह मनावें कि इसी समय हमें अपनी दो सखियों, रोज़ा तथा मिगूएलसे यह निमंत्रण पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि हम यह छुट्टी मेक्सिकोमें उनके साथ रहकर बितावें।

मेक्सिको जाना कई मानोमें अपने घर जानेके समान था। जहाँ-जहाँ हम जाती थीं लोग हमें मेक्सिको-निवासी ही समझते थे, इसलिए पर्यटकोंकी संज्ञा हमें नहीं दी जाती थी। हमें कोवररुबियासके स्पेनिश ढंगके मकानमें रहना अच्छा लगता था जो लम्बे-चौड़े आँगनके चारों तरफ बना हुआ था और हम उसके उद्यानमें लगे हुए विदेशी जातिके कैक्टस पौधेकी प्रशंसा करते-करते नहीं थकती थीं। हमें बड़े तड़के सुनाई देनेवाली आवाजें, मुर्गेका बाँग देना तथा हमारे कमरेके बाहर पड़े कंकड़ोंपर चलनेवाली झाड़ूकी आवाज, सुनकर जागना अच्छा मालूम होता था—ये आवाजें हमने बहुत दिनोंसे सुनी नहीं थीं। हमें मेक्सिकोका आलस्यपूर्वक, मौजके साथ धीरे-धीरे चलना ज्यादा पसन्द था। यह भारतके ही समान था और इससे मनुष्यको सोचने तथा ख्वाब देखनेका अवसर मिल जाता है। रोज़ा तथा मिगूएलने स्नेहपूर्ण आतिथ्यमें हम लोगोंको सराबोर कर दिया और उनके कितने ही कलाकार-साहित्यिक तथा राजनीतिक मित्रोंके घरोंमें हम लोगोंका स्वागत-सत्कार बड़े प्रेमके साथ किया गया।

मेक्सिको परस्परविरोधी बातोंका भारी सम्मिश्रण-सा मालूम होता था। वह प्राचीन तथा अर्वाचीनका, पूरब तथा पश्चिमका, काले और गोरेका, सौन्दर्य और सादगीका, मननपूर्ण रहस्य तथा लहरें लेती हुई चेतनाका, शान्तिपूर्ण आत्मसमर्पण एवं उत्तेजनापूर्ण विद्रोहका मेल था। वह इन सब चीजोंका संघर्षमय मिश्रण था, उस संवेदनशील आदमीकी तरह जिसकी निष्ठा परस्पर विरोधी चीजोंके प्रति बँट गयी हो, और इसी कारण जो परम उत्तेजनशील एवं आकर्षक था। उस सचेतन देशमें ऐसी अनंत गहराइयाँ विद्यमान थीं, जिनका पता लगाना था। हम उसके केवल पृष्ठ भागको ही छू सकीं। हम बड़ी व्याकुलतासे न्यूयार्कके लिए रवाना हुईं। बड़े दुःखके साथ हम अपने आपका वहाँसे पृथक् कर पायीं, क्योंकि मेक्सिकोके रहस्यमय जादूने हमारे ऊपर प्रभाव डाल रखा था।

विमानमें रीता तथा मैं परस्पर हिन्दुस्तानीमें बातचीत करती थीं। एक अमेरिकन महिला जो बरामदेके उसपार बैठी हुई थी, मेरी तरफ कुछ झुकी, मुसकिरायी, फिर बोली, "मैं हमेशासे कहती रही हूँ कि स्पेनिश बहुत ही सुन्दर भाषा है।"

बड़े दिनोंकी छुट्टियाँ समाप्त होनेपर हमारे संयुक्त राज अमेरिकासे प्रस्थान करनेका समय और भी निकट आ गया और एक बार फिर मेरे मनमें शंका उत्पन्न हो गयी। भारतमें अब वैसा प्यारा घर हमें न मिलेगा जैसा हमने यहाँ आनेके पहले छोड़ा था, क्योंकि पापू अब वहाँ न रहेंगे। मैं अब स्वतंत्र भारतमें जा रही थी। जिस संघर्षके समय मेरा जन्म हुआ था और जिसके बीचमें मैं बड़ी हुई वह आखिर-कार समाप्त हो चुका था किन्तु उसने मेरे देशके दो टुकड़े कर दिये थे और वह अपने साथ मेरे पिताको भी लेता गया था।

अब कभी मैं उन्हें बड़े तड़के ओससे भींगी घासपर टहलते, जो उन्हें विशेष प्रिय था, न देखूँगी—वे उस समय अपनी सफेद खादीकी पोशाकके ऊपर लाल-सा कश्मीरी दुशाला ओढ़े रहते थे। अब कभी मैं उनसे पुस्तकों और संगीतके सम्बन्धमें, तारों, वृक्षों तथा विभिन्न देशों-के लोगोंके सम्बन्धमें और उन हजारों वस्तुओंके सम्बन्धमें बातचीत न कर सकूँगी जिन्हें समझना उन्होंने हमे सिखलाया था। अब कभी मैं

उनके साथ चीड़के वृक्षोंकी गंधसे सुवासित खालीकी हवामें न रह सकूँगी, हिमाच्छादित गिरि-शिखरोंपर होनेवाले सूर्यास्तका अवलोकन उनके साथ न कर सकूँगी और बागमें काम करते समय उन्हें गाना गाते हुए न सुन सकूँगी।

यह बड़ी विचित्र और दुःखद बात है कि मेरे वीर और हास्यप्रिय पिताको इस संसारसे चले जाना पड़ा, जिन्हें यह जीवन पराक्रम एवं साहसकी वस्तु प्रतीत होता था, प्रतिदिन दी जानेवाली एक तरहकी चुनौती जिसे उन्होंने लगन और उत्साहके साथ स्वीकार कर लिया था। राजनीति तथा कारागारोंकी नीरस दुनिया उनकी दुनिया न थी, यद्यपि इसीके भीतर उन्होने अपने आपको सीमित-सा कर रखा था। उन्होंने एक बार अपने आपको "अभिमानी स्वच्छन्द धर्मी" कहा था। उन्हें स्वतंत्र एवं बंधनहीन होना चाहिये था जिसमें वे सृजनात्मक ढंगसे सोच सकते और लिख सकते और जीवित रहनेकी अपनी विशाल प्रतिभाको कार्यान्वित कर सकते। स्वतन्त्र भारत उनकी विद्वत्ताका साभिमान प्रदर्शन करता जो उचित ही होता और विदेशोंमें भेजे जा सकनेवाले भारतीय संस्कृतिके राष्ट्रदूतकी तरह उनका सम्मान करता। किन्तु पराधीन भारतने उन्हें अपने शहीदोंकी टोलीमें काम करनेके लिए चुना और अन्तमें कारागारमें ही उनकी मृत्यु हुई—कारागार जो उन सबका धूसर संकेत था जो उनकी प्रकृतिके विरुद्ध था। मेरे लिए तो भारत उनके बिना शून्य ही रहेगा, प्रत्येक परिचित स्थान उनकी सुखद वाणी-से गूँजता और उनकी मुसक्यानको प्रतिफलित-सा करता जान पड़ेगा। मैं चाहती थी कि समयको पारकर मैं पीछे लौट जाऊँ जब उनकी मौजूदगी तथा उनके बुद्धिमत्तापूर्ण नियंत्रणमें मैं अपनेको सुरक्षित समझती थी, और उन सब वर्षोंको जिन्होंने उन्हें मुझसे छीन लिया था, रद्द कर दूँ; किन्तु पीछे जाने के बजाय मुझे आगे बढ़ना पड़ा। लेखा पहले ही भारत चली गयी थीं और रीता भी पापूकी मृत्युके समय तथा बादमें वहीं थी। मेरे लिए अकेले ही अग्निपरीक्षा देना अभी शेष था।

उन्हें ऐसे समय मरना पड़ा इससे मेरे मनमें कटुता भर गयी। तबतक मुझे स्मरण हो आया कि कटुतासे वे हमेशा नफरत करते थे

और उसे अपना शत्रु समझते थे। उन्होंने हमें इसीलिए बाहर भेज दिया था जिससे हम कटुतासे मुक्त रहकर बड़ी हो सकें, सुदृढ़ और स्वाभिमानिनी बनें, 'प्रकाश एवं तेजकी सन्तानकी तरह' जैसा कि उन्होंने एक बार कहा था। इस समय उसके सामने सिर झुकानेका मतलब होगा उस सबकी अवहेलना कर देना जिसके लिए वे जीवित रहे और जिस उद्देश्यके लिए उन्होंने अपने प्राण दिये।

पापूकी मृत्युका समाचार सुनकर गांधीजीने एक सुन्दर संदेश मेरी माताके पास भेजा था—

> "लोग समवेदना प्रकट करने तुम्हारे पास आयँगे किन्तु मैं तुम्हारे लिए दुःख प्रकट न करूँगा। मैं तुम्हारी स्थितिसे दुःखी हूँ, ऐसा कहनेका साहस ही कैसे कर सकता हूँ? साहसी पिताकी पुत्री, साहसी भाईकी बहिन और साहसी पतिकी स्त्रीके लिए कोई भी आदमी अफसोस जाहिर नहीं करता। तुम्हें अपने हृदयके भीतरसे ही साहस प्राप्त होगा।"

और सचमुच ही मम्मीने उसे प्राप्त किया, यद्यपि उस समय वे बिलकुल अकेली रह गयी थीं। मामू जेलमें होनेके कारण उनके पासतक पहुँचनेमें असमर्थ थे। उन्हें केवल अपनी ही शक्तिका भरोसा था जिसका वे सहारा ले सकती थीं। उनका उदाहरण मेरे सामने था।

मुझे वापस जाकर किस घरमें रहना चाहिये? वह एक मात्र जगह जो मेरा 'घर' थी, आज वीरान-सी थी। उसमें ताला लगा था, क्योंकि अब कोई वहाँ रहता न था। आनन्दभवन अब मानो भूतोका डेरा और स्मृतियोंका आगार ही रह गया था। मामू दिल्लीमें थे और मम्मी मास्कोमें भारतकी राजदूतिका थीं। निस्सन्देह मैं दिल्ली जा सकती थी और मामूके साथ रह सकती थी किन्तु दिल्ली मेरे लिए केवल एक नाम था, ऐसा शहर जहाँ मैं कभी गयी नहीं थी और जिसे मैं अपना घर कदापि नहीं समझ सकती थी।

जैसे-जैसे मैं घर जानेकी बात सोचती गयी, वैसे-वैसे मैं क्रमशः उसकी अभ्यस्त होती गयी। मेरे अमेरिका चले आनेके बाद कितनी घटनाएँ घट चुकी थीं और अब मामू प्रधान मंत्री थे, स्वतंत्र भारतके प्रथम प्रधान मंत्री। मैंने विस्मय तथा सम्मानसे बार-बार उसे दोहराया,

उसपर पूरा-पूरा विश्वास जो नहीं होता था। वह एक चकाचौंध पैदा कर देनेवाली दूरकी उपाधि थी। उसका अर्थ होता था एक लम्बी, कठिन और दुःखमय लड़ाईके बाद विजय का प्राप्त होना किन्तु मेरे लिए उसमें कोई वास्तविकता न थी। जो सचाई थी, वह यह थी कि जवाहरलालके साथ, जो मेरे मामा थे, मैं खेली थी, मैं उन्हें जानती थी और उनसे स्नेह करती थी। उनसे मुझे भारतके प्रधान मन्त्रीकी अपेक्षा अधिक स्फूर्ति प्राप्त होती थी। एकाएक मैं फिर उनके साथ रहनेके लिए उत्सुक तथा उतावली हो उठी। मैं उत्साह से भरी हुई छोटी-सी वीर-पूजक थी, जो खेलमें निकाले गये राजनीतिक ढंगके जुलूसोंमें हमेशा उनके पीछे-पीछे चलती थी। अब मैं उनके साथ साथ उस भविष्यकी ओर आगे बढ़नेको तैयार थी जो नूतन भारतके निर्माणमें हमारे सामने आनेवाला था।

अध्याय २०

क्रोध और कटुताकी भावना

सन १९४७ में अक्तूबरकी एक अँधेरी रातमें मेरा विमान दिल्लीके पालम हवाई अड्डेपर उतरा। अमेरिकासे लौटनेके बाद मैंने कुछ दिन बम्बईमें बिताये, इस प्रकार स्वतन्त्र भारतकी एक छोटी-सी झलक मैं ले चुकी। परिवारसे परिचित लोगोंसे जब सात वर्षके बाद मैं मिली तो उन लोगों द्वारा पूछे जानेवाले प्रश्नोंकी बौछारसे हतबुद्धि-सी हो गयी। इन प्रश्नोंका सम्बन्ध उन राजनीतिक घटनाओंसे था जो मेरे बाहर चले जानेके बाद देशमें हुई थीं। भारतका स्वतन्त्र हो जाना एक समाचार था, विभाजन भी एक समाचार था और किसी भी हालतमें इन विषयोंकी ओरसे ध्यान हटाना सम्भव न था—हाँ, मंगल ग्रहसे एकाएक कोई आक्रमण हो जाता तो बात दूसरी थी। एक पार्टीमें चिड़चिड़े स्वभावके एक सज्जन मुझे मिले जिन्होंने मेरे सामने नयी सरकारकी तीव्र आलोचना शुरू की।

"मैं जो बात जानना चाहता हूँ," उन्होंने गुस्सेमें फरमाया, "वह यह है कि जवाहरलाल क्या सोचते हैं कि वे कौन-सा काम कर रहे हैं। ऐसा प्रत्येक आदमी जिसने ब्रिटिश राजके साथ सहयोग किया था, जेलमें बन्द कर दिया जाना चाहिये। बिलकुल नये सिरेसे, सही तरीकेसे काम शुरू कीजिये, यही मैं कह रहा हूँ। समझौतेकी नीतिसे चलना हास्यास्पद है।"

उन्होंने क्रोधभरी दृष्टि मेरे ऊपर डाली और मैंने तत्परतासे उन्हें विश्वास दिलाया कि धीरे-धीरे सब चीज ठीक हो जायगी।

"अच्छा! क्या तुम सचमुच ऐसा समझती हो? ऐसे आशावादका कारण या तो समझनेवालेकी कम उम्र हो या फिर वर्त्तमान स्थितिके सम्बन्धमें पूरा अज्ञान। तुम्हारे सम्बन्धमें दोनों बातें लागू होती हैं। फिर भी, छोटी लड़की," उन्होंने कहना जारी रखा, क्योंकि उनकी

कड़ी फटकारका मेरे चुपचाप सह लेनेपर भी उनका सन्तोष न हो सका, "तुम जवाहरलालसे मेरा यह संदेश कह अवश्य देना।"

मैंने ऐसा करनेका वचन दे दिया। किन्तु अभी मैं उस कोनेसे जहाँ उन्होंने मुझे ढकेल-सा दिया था, चतुराईसे हटने भी न पायी थी कि मैंने अपने सामने एक और क्रुद्ध व्यक्तिको खड़े पाया। इन महाशय-ने मानो मुझे ही भारतके विभाजनके लिए तथा उसके बादकी तमाम बुराइयोंके लिए जिम्मेदार ठहराया।

"व्यापार-रोजगार सब चौपट हो गया"—उन्होंने सामने रखे हुए नमकीन काजू खाते हुए क्रोधपूर्वक कहा।

"क्या सचमुच ?" मैंने क्षमा माँगने जैसी मुद्रा प्रकट करते हुए धीरेसे जवाब दिया।

"जरा अपने चारों तरफ देखिये—मकानोंकी कमी है, अन्नकी कमी है, प्रत्येक स्थानपर आवश्यकतासे अधिक आदमी भर गये हैं," उन्होंने ज़ोरदार शब्दोंमें भाषण-सा करते हुए कहा।

मैंने सुरुचिपूर्वक सजाये गये कमरेमें चारों तरफ दृष्टि डाली, जिसमें एक खिड़कीसे फेनमय समुद्रकी झलक दिखाई देती थी, सुवेशित एवं सुकेशित अतिथिगण बैठे हुए थे जिनके बीचमेंसे पगड़ीधारी बैरे (बेयरर=परिवेषक) चाय, गरम समोसे आदिसे भरी हुई रकाबियाँ थामे शिष्टतापूर्वक इधरसे उधर जाते थे।

"और सरकार इसके बारेमें क्या कर रही है, मैं आपसे पूछता हूँ ?" मुझे परेशान करनेवाले सज्जनने अपनी धुन कायम रखते हुए कहा।

"मैं सचमुच ही कुछ नहीं कह सकती," मैंने लाचार होकर जवाब दिया, "आप जानते हैं कि मैं अभी कल ही तो भारत पहुँची हूँ।"

सामान्य बुद्धिसे काम लेनेकी मैं जो अपील करुणा भावसे कर रही थी, उसमें उनकी जरा भी दिलचस्पी न थी।

"अच्छी बात है, तो मैं ही आपको बतलाता हूँ—एक फूटी कौड़ी भी नहीं," उन्होंने अभिनयात्मक ढंगसे गरजते हुए कहा।

"कितनी मनोरंजक चीज है यह," मैंने बिना सोचे-समझे; बच निकलनेका निष्फल प्रयास करते हुए कह दिया।

"मनोरंजक ?" वे सज्जन उबल पड़े, "अरे यह तो खून खौला देने-वाली बात है।"

उनके स्वरका न्यायबुद्धि-प्रेरित रोष देखकर मेरे मनमें एक नया भाव जाग्रत हुआ। अपने चारों ओर कमरे भरमें बैठे हुए इन स्वयंभुव आलोचकोंको देखकर एकाएक मेरे मनमें आनन्दकी लहर दौड़ गयी। वह निर्विवाद रूपसे स्वतन्त्र देश माना जायगा जहाँके लोग अपनी सरकारके प्रति अप्रसन्नता प्रकट कर सकें, उसकी शिकायत कर सकें। ऐसा वे क्यों न करें जब कि सरकार उन्हींकी है और उसके साथ वे चाहें जो करें ? यह कोई ऐसी भूमि न थी जहाँ विरोधियोंको फुसफुसा-कर बोलनेके लिए बाध्य होना पड़े।

कुछ दिनोंके बाद जब मैं दिल्लीके पालम हवाई अड्डेपर विमानसे उतरी तो मेरा मन कुछ हलचल और कुछ-कुछ भयकी भावनासे भर गया। इन्दिरा अपने बच्चेके साथ मेरी प्रतीक्षा कर रही थीं। तीन वर्षके इस नन्हें बालकका गम्भीर सा चेहरा, सुन्दर, काली तथा भावव्यंजक आँखें और अपनी माताकी ही तरह अविश्वसनीय रूपसे लम्बी घुँघराली बरौनियाँ थीं। यह राजीव था जिसका जन्म उस समय हुआ था जब मैं अमेरिकामें थी। हम लोग मोटरमें बैठकर साफ, शान्त तथा दोनों ओर पेड़ोंवाली सड़कोंसे होती हुई घर गयीं। यह घर, जैसा कि वहाँ पहुँचनेपर मुझे मालूम हुआ, एक मध्य आकार-का दो-मंजिला मकान था जो ऐसी ही एक सड़कके मोड़पर था। अक्तूबरकी हवा अधिक ठण्ढी मालूम होने लगी थी जब हम लोग मोटरकारसे उतरीं और मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि मैं एक मोटा-सा ऊनी कोट पहने हुई थी, जो न्यूयार्कसे चलनेके पूर्वकी मेरी आखिरी खरीद थी।

इन्दिरा मुझे अपने कमरेमें ले गयीं, दस महीनेके अपने दूसरे बच्चे संजयको दिखलानेके लिए जो अपनी चारपाईपर गहरी नींदमें सो रहा था। अपने हाथकी मांसल एवं छोटे-छोटे गड्ढोंसे युक्त मुट्ठियों तथा मुलायम, लालिमायुक्त घुँघराले बालोंके कारण वह इटालियन चित्रोंमें चित्रित दिव्य बालक-सा देख पड़ता था।

"जरा कल्पना तो कीजिए", मैंने बेवकूफीके साथ इन्दिरासे कहा,

"जब मैं यहाँसे गयी तब इन लोगोंका विचारतक हमारे मनमें नहीं आया था।"

एक अनदेखे शहरके अपरिचितसे मकानमें इन दो बहिनौतोंके साथ मैं खड़ी थी, जिन्हें मैंने पहले कभी नहीं देखा था। अपने घर वापस आनेका जो चित्र मैंने मनमें सोचा था, उससे इस घरमें किंचित् भी सामञ्जस्य न था। यह वह आनन्दभवन न था जिसमें वे सब प्रिय स्थान थे जहाँ हम लोग उठा-बैठा करती थीं और जिनकी मधुर स्मृति आज भी हमारे मस्तिष्कमें विद्यमान थी। और तभी एकाएक हरि नाचता हुआ वहाँ आ पहुँचा, जिससे अजनबीपनका वातावरण दूर-सा हो गया और मुझे ऐसा लगने लगा मानो मैं पहलेकी ही तरह गर-मियोंकी छुट्टीमें वुडस्टाकसे घर आयी होऊँ। पिछले साढ़े चार वर्षोंमें मैं तो कुछ अधिक सयानी तथा ऊँची हो गयी थी किन्तु मालूम होता था कि हरिमें अणुमात्र भी परिवर्तन नहीं हुआ था। वह अब भी वैसा ही छोटा-सा, गोलमटोल-सा और हँसी-मजाककी बेसिर-पैरकी बातें करनेवाला था जैसा उस समय था जब वह जेलखानेसे छूटकर आया था और आनन्दभवनकी बरसातीमें खुश होते हुए टाँगेमेंसे एकाएक कूद पड़ा था। उसने स्नेहपूर्वक मुझे भेंटा और मेरे आगे-आगे सीढ़ियों-पर चढ़ता गया मुझे उस कमरेतक पहुँचा देनेके लिए जिसमें मुझे ठह-रना था।

"मैंने आपके कमरेमें सिगरेट रख दिये हैं, उसने साभिमान उद्घो षित किया।

उसकी इस आधुनिकतापर आश्चर्य प्रकट करनेकी हिम्मत मैंने नहीं की जिससे उसकी भावनाओंको ठेस न पहुँचे।

"धन्यवाद है, हरि, किन्तु मैं तो धूमपान नहीं करती।"

"तुम अच्छी लड़की हो," उसने मुसकराकर कहा।

"मामू कहाँ हैं ?" मैंने व्यग्रतासे पूछा।

"थोड़ी ही देर पहले वे मंत्रिमण्डलकी बैठकसे होकर आये थे और इस समय वे स्नान कर रहे हैं।"

इन्दी (इन्दिरा) ने मुझे बता दिया था कि हम लोगोंको राजभवन-में भोजन करना था, इसलिए मैं भी स्नान करने चली गयी। मैं चाहती

थी कि मामूके बाहर निकलनेके पहले ही मैं उनके कमरेमें पहुँच जाऊँ।

वे काली अचकन पहने हुए, बिलकुल साफ-सुथरे, परिधानकक्षसे बाहर निकले। बटनके एक छेदमें लाल गुलाबकी कली खोंसी हुई थी। वे इतने अधिक थके हुए मालूम पड़े जितने मैंने उन्हें पहले कभी नहीं देखा था, किन्तु ज्यों ही मैं उनसे मिलनेके लिए बिस्तरेपरसे कूदकर उठी उनकी स्वागतसूचक आमोदपूर्ण मुसक्यानने थकावटके समस्त चिह्न उनके चेहरेपरसे दूर कर दिये। बिना किसी कारणसे मुझे रुलाई आने लगी। अब जब कि वे यहाँ थे, मुझे ऐसा लगा मानो मैं सचमुच अपने घर आयी होऊँ।

"अरे, तुम इतनी लम्बी कैसे हो गयी, तारा ?" उन्होंने पूछा।

"जी ऐसी लम्बी तो नहीं, असलमें ऊँची एड़ीके जूते जो मैं पहने हूँ" मैंने निर्लज्ज-सी होकर पतली आवाजमें कहा।

"उनके साथ-साथ कुछ अमेरिकन दूधका भी प्रभाव होगा, इसमें सन्देह नहीं," उन्होंने मुसकराते हुए कहा, "अच्छा, बेटी, तुम्हारी मम्मी तुम्हारे सम्बन्धमें चिन्तित हो रही होंगी। बेहतर होगा कि हम एक समुद्री तार उनके पास यह सूचित करनेके लिए भेज दें कि तुम यहाँ सकुशल पहुँच गयी;'। उन्होंने मेरा हाथ अपने हाथमें ले लिया और हम लोग बड़ा कमरा पारकर तार भेजनेके लिए उनके कमरेमें गये।

कुछ देरके बाद इंदी, मामू और मैं, तीनो राजभवन जानेके लिए मोटरगाड़ीमें सवार हुए। मैं मामूका हाथ पकड़े हुई थी और वे दिल्ली सचिवालयकी धुँधली-सी शकल हाथके इशारेसे मुझे दिखाते चल रहे थे। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ मानो दिल्ली नगर वाशिंगटनसे मिलता-जुलता हो। हाँ, मैंने मन-ही-मन कहा, इतना अवश्य है कि मैं वाशिंगटनसे दिल्लीकी अपेक्षा अधिक परिचित हूँ। और सबसे अद्भुत बात तो यह थी कि हम लोग रातमें मोटरमें बैठकर भारतके गवरनर-जनरल और उनकी पत्नीके साथ भोजन करने जा रहे थे। पराधीन भारतका शासन ब्रिटिश वाइसराय द्वारा होता था जिसकी नीति ब्रिटेनके आदेशसे निर्धारित होती थी। स्वतन्त्र होनेके प्रथम वर्षमें भारत सरकारका मुख्याधिकारी ऐसा गवरनर-जनरल था, जो ब्रिटिश होते

हुए भी भारतीय प्रधान मन्त्री तथा उसके मन्त्रिमण्डलके साथ सहयोग करते हुए शासन चलाता था।

पहली बार मुझे इस बातका अफसोस हुआ कि मैं उन घटनाओं-को देखनेके लिए क्यों भारतमें उपस्थित नहीं रही जिनके ही परिणाम-स्वरूप आजकी यह स्थिति उत्पन्न हुई जिसका सहसा विश्वास नहीं होता। इस तरह एकाएक उसका सामना होनेपर उसका पूरा-पूरा मर्म समझना मेरे लिए मुश्किल हो रहा था। मेरी हालत कुछ-कुछ रिप वान विंकिलके समान थी, जो गहरी और लम्बी निद्राके बाद जब उठा तो उसे पता चला कि पुराना राज बदल गया, अब नया राजा शासन कर रहा है। जेल जानेके दिन बीते अभी अधिक समय नहीं हुआ था, फिर भी इस बीच कितने महत्त्वपूर्ण परिवर्त्तन हो चुके थे! मैंने देखा कि मैं भारतीय स्वातंत्र्य संग्रामके नाटकका अन्तिम अंक देखनेके लिए ठीक समयपर यहाँ पहुँच गयी। बचपनमें मैंने जो भारत देखा था, वह अब इतिहासकी पुस्तकका एक अध्याय बन जायगा, पुराने समाचार-पत्रोंके पीले पड़ते जानेवाले पृष्ठोंमें तथा उन लोगोंकी बातचीतमें ही उसकी स्मृति शेष रह जायगी जो कभी-कभी उसके संस्मरण सुनाया करेंगे।

भोजनके लिए केवल हम लोग ही अतिथिके रूपमें उपस्थित थे और जब हम एक विशाल बैठकखानेमें बैठकर प्रतीक्षा कर रहे थे, मैंने प्रभूत रूपसे सजाये हुए ऊँची छतवाले कमरेके चारों तरफ एक नजर डाली, जिसमें टेबिल कुरसी आदि लकड़ीका ठोस सामान, सोनेके चौखटोंमें मढ़े हुए बड़े-बड़े चित्र तथा स्वच्छ, पारदर्शी झाड़-फानूस लगे थे जो उद्यानसे आनेवाली मन्द-मन्द हवामें झनझना उठते थे। मुझे आश्चर्य हुआ ब्रिटिश शासकोंके उस आडम्बरपूर्ण वैभवपर जिसका निर्माण उन्होंने अपने लिए कर रखा था। मैं अभी उसपर ठीकसे कुछ विचार भी नहीं कर पायी थी कि एक चुस्त अंगरक्षक अचानक सैनिक साव-धानताकी स्थितिमें खड़ा हो गया यह सूचित करनेके लिए कि अर्ल और काउण्टेस माउण्टबेटन आ रहे हैं। मैंने दो लम्बे, आकर्षक व्यक्ति-योंको कमरेमें प्रविष्ट होते देखा और मुझपर पहला प्रभाव यही पड़ा कि ये लोग कैसे शाही दम्पतिके समान देख पड़ते थे और कमरेकी रौनक

उन्हें कैसी फबती थी। किन्तु ज्यों ही वे लोग आकर हमारे पार्श्वमें बैठ गये, एक रहस्यमय परिवर्त्तन देख पड़ा। वे अब गवरनर-जनरल तथा उनकी पत्नी नहीं थे—वाइसरायों तथा वाइसरानियोंकी उस दर्पपूर्ण परम्पराके अन्तिम व्यक्ति, जिसने पिछले दो सौ वर्षातक भारतका शासन किया था। वे अनन्त मोहकतासे भरे हुए मेजवान थे। मामू तथा इन्दी उनके प्रथम नाम लेकर उनका सम्बोधन करते थे और और चारों आपसमें इस तरह हँसी मजाक करते थे मानो बहुत पुराने दोस्त हों।

मुझे मम्मीके वे शब्द स्मरण हो आये जो उन्होंने न्यूयार्कसे मेरे प्रस्थान करनेके ठीक पहले कहे थे—राजकीय परम्पराकी अवहेलनाके कारण माउण्टबेटन-दम्पति राजभवनके अन्य अधिकर्त्ताओं से भिन्न हैं। एक दिन शामको वे लोग अनौपचारिक रूपसे मामूसे मिलने पहुँच गये थे और दूर्वाक्षेत्रपर बैठकर उन्होंने स्ट्राबेरी आइसक्रीम खायी थी। उन्होंने राज-भवनका मैदान हफ्तेमें एक दिन सर्वसाधारणके लिए भी खोल देनेकी प्रथा आरंभ कर दी थी। इसके पहले राजभवनमें केवल अंग्रेज लोग या वे भारतीय ही जा सकते थे जिन्होंने अंग्रेजी शासनका साथ देनेका निश्चय कर लिया था। यह बात कभी सुनी नहीं गयी थी कि हर एक और सभी व्यक्तियोंको उसकी सीमाके भीतर घुसनेकी अनुमति दे दी जाय। इसी तरह वाइसरायका कहीं आना-जाना, उठना-बैठना भी शिष्टाचार-विभागके कठोर नियमोंसे बँधा हुआ था। वाइसराय किसी व्यक्तिके अपने निजी दूर्वाक्षेत्रपर क्षण भर की ही सूचनाके बाद आइसक्रीम नहीं खा सकते। फिर भी परम्परा तथा राजकीय शिष्टाचारकी इन दोनोंने चुपचाप उपेक्षा कर दी, क्योंकि ये भारतके शासक नहीं, उसके मित्र बननेको उत्सुक थे।

नेहरू परिवारके लोगोंके लिए मनोमुग्धकारी होना एक साधारण सी चीज है। उनमें यह गुण अपने विशिष्ट हिस्सेसे भी अधिक मात्रामें पाया जाता है और मैंने व्यक्तियोंपर तथा व्यक्ति समूहोंपर, ज्ञात रूपसे अथवा अज्ञात रूपसे, उसका प्रभाव पड़ते देखा है। परिवारको दृष्टिसे तो कहा जा सकता है कि इस क्षेत्रमें दो-एक परिवार ही उसकी टक्कर के निकलेंगे। फिर भी यहाँ (माउण्टबेटन दम्पतिमें) मैंने जो

आकर्षण पाया वह उन लोगोंकी मोहकताकी समता कर सकता था। उसके कारण माउण्टबेटन दम्पतिकी बातचीत भी स्नेह और सहानुभूतिके भावसे ओतप्रोत जान पड़ती थी, जिससे मन बरबस उनकी ओर झुक जाता था और उन्हें चाहने लगता था।

"यह मेरी छोटी भानजी है, जो अभी-अभी अमेरिकासे लौटी है", मामूने मेरा परिचय कराते हुए कहा। "वह वेलेस्ली कालेजमें पढ़ती थी।"

"वेलेस्ली?" लार्ड माउण्टबेटनने दोहराया। "हार्वर्ड विश्वविद्यालयके पास जो है, वही न? क्या वह किसी भी तरह हार्वर्डसे सम्बद्ध है?"

"केवल सामाजिक दृष्टिसे", मैंने बिना सोचे ही जवाब दे दिया। मेरे इस कथन पर जब लोग ठहाका मारकर हँस पड़े तो लज्जाके मारे मेरा चेहरा लाल हो गया। अब मैंने देखा कि इन्दी तथा श्रीमती माउण्टबेटन, दोनों ही सौम्य और शिष्ट परिधानमें थीं किन्तु मैं आसमानी रंगकी भड़कीली साड़ी पहने हुई थी जो हलकी रोशनीमें तितलीके पंखकी तरह नीला और हरापन लिये हुए चमकती थी। अपने सूटकेसमें उस समय वही एक साड़ी मैं पा सकी थी जो सिकुड़ी-फिकुड़ी न थी किन्तु मैंने जैसे कपड़े पहन रखे थे, वे एक शान्त भोजके योग्य न होकर नृत्यशालामें पहनकर जानेके लिए अधिक उपयुक्त थे।

भोजन प्रस्तुत होनेकी सूचना मिलनेपर हम लोग वैसी ही ऊंची छतवाले एक और कमरेमें गये जहाँ पाँच आदमियोंके बैठने लायक सजायी गयी एक छोटी गोलमेज चारों ओरकी शानदार चीजोंके बीच अपना उचित स्थान ग्रहण करनेका प्रयत्न कर रही थी। अभीतक अमेरिकन ढंगकी धीरे-धीरे बोली गयी और अस्पष्टसे उच्चारणवाली वाणी सुननेकी ही मेरी आदत थी, इसलिये मुझे अपने चारों ओर जल्दी-जल्दी उच्चरित शब्दावलीका आशय समझनेके लिये विशेष सावधान रहना पड़ता था। बातचीतमें मैं इतनी तल्लीन हो गयी थी कि मुझे इस बातका पता ही न चला कि कब हम लोगोंके सामने मिठाई, फल आदि रख दिये गये और हमारे आतिथेय तथा आतिथेया, मामू और इन्दी सम्राट्के नामका जामे-सेहत पीनेके लिए

अपने पैरोंपर खड़े हो गये। इसके पहले कभी मैं राजभवनके भोजमें सम्मिलित नहीं हुई थी, इसलिए मुझे इस प्रचलित परिपाटीका कोई ज्ञान न था। तुरन्त ही मैंने टेबिलके नीचे अपने जूते टटोलनेकी कोशिश की और जब मैं जल्दीमें उन्हें पा न सकी, तब मैं अपनी मूर्खताका अनुभव करती हुई नंगे पाँव ही खड़ी हो गयी। जब हम लोग पुनः आसनस्थ हो गये, तब लेडी माउण्टबेटन बिना किसी प्रसंगके यों ही कहने लगीं "मुझे हमेशा यह बात याद रखनी पड़ती है कि जामे-सेहतके लिए मैं ठीक वक्तपर अपने जूते पाँवमें डाल लूँ। मेरी यह बड़ी खराब आदत पड़ गयी है कि जब मैं टेबिलपर भोजन करने बैठती हूँ तो जूते उतार डालती हूँ। एक बार एक सरकारी भोजमें मुझे एकाएक धोखेमें खड़ा होना पड़ा और उस समय बड़ा भद्दा मालूम हुआ।"

भीतर ही भीतर मैंने उन्हें धन्यवाद दिया कि कितनी चतुरतासे उन्होंने सामाजिक शिष्टाचार सम्बन्धी मेरी भूलकी ग्लानि दूर करनेका प्रयत्न किया किन्तु उस रातमें जब मैं बिस्तरेपर लेटी तब मेरे मनमें इस बातका बराबर पछतावा बना रहा कि सामाजिक रीति-रस्मकी जानकारी में मैं अपनी दक्षता न प्रमाणित कर सकी।

× × × ×

बहुत दिनोंतक मैं दिल्लीको अजनबीकी तरह देखती रही। वह मुझे एक नयी जगह मालूम होती थी, फिर भी मैं बाहरी आदमीके समान उसके प्रति उदासीनभाव नहीं रख सकती थी, क्योंकि जो कुछ मैं देखती और सुनती थी, उस सबका गहरा प्रभाव मेरे ऊपर पड़ता था। यहाँ जो चहल-पहल और उत्कट सक्रियता मैं अपने चारों तरफ देखती थी, उसका अंग बन जाना चाहती थी। मैं केवल दर्शक नहीं बनी रहना चाहती थी। मैं महाविद्यालयका शैक्षणिक एकान्त छोड़कर आयी थी जहाँ सारा ज्ञान पुस्तकोंमें ही निबद्ध था। "बाहरी दुनिया" की भी झलक मुझे मिली थी, किन्तु यह ऊँचे दरजेके परिमार्जित राजनीतिज्ञों और राजपुरुषोंकी चुनी हुई दुनिया थी, भव्य चर्चा और वाद-विवादका वातावरण—संयुक्त राष्ट्रसंघका समस्त आकर्षक स्वरूप—था। मेरे लिए वह भी एक तरहका बौद्धिक अभ्यास था। वह बड़े-बड़े

तेज दिमागवालोंका एक दूसरेपर किया जानेवाला मौखिक घात-प्रति-घात-सा था। वह न्यूयार्कके समुन्नत वातावरणमें दूर-दूरके प्रश्नों सम्बन्धी विवाद था। संयुक्त राष्ट्रसंघके उन कमरोंमें जिनमें विविध समस्याओंपर वाद विवाद हुआ करता है, बौद्धिक चतुराईकी चाहे जैसी प्रतियोगिता चलती रही हो, न्यूयार्क शहरका जीवन बिना किसी विघ्न-बाधाके शान्तिपूर्वक चलता रहता था। दिल्लीकी स्थिति इससे भिन्न थी। यहाँकी लड़ाईका स्वरूप दूसरा था। उसका सम्बन्ध मनुष्य मात्रसे, उसके मानससे, उसके शारीरिक हितसे और उसके भावोंसे था। मैं ऐसा शायद इसलिए सोचती थी कि मैं स्वयं भी भारतीय थी और किसी तरह उसमें अपना भी छोटा-सा अंशदान करनेको उत्सुक थी। मैंने इसकी चर्चा मामूसे की और अपना अफसोस प्रकट किया कि मुझमें किसी विषयकी विशेष प्रतिभा न थी।

"तुम्हारी उम्र क्या है, तारू ?" उन्होंने पूछा।

"बीस वर्ष" मैंने जवाब दिया।

"तो फिर," उन्होंने मुसकिराते हुए कहा "तुम्हारी जगहपर मैं होता तो मुझे इस सम्बन्ध में कोई परेशानी न होती। तुम्हारे सामने निर्णय करनेके लिए बहुत समय पड़ा है। जब मैं तुम्हारी उम्रका था, तब मैं छात्रावस्थामें ही था। तुम्हारे लिए अभी इतनी नयी चीजें हैं कि तुम्हें अभी उनका अभ्यास करना है। क्यों नहीं इस अवसरसे लाभ उठाकर तुम सब चीजें देख समझ लेतीं ?"

"मुझे तो लगता है कि मैं शायद ही कोई महत्त्वका काम कर सकूंगी" मैंने असन्तोषका भाव प्रकट करते हुए कहा।

मामूने अपनी डेस्कपरसे आश्चर्यपूर्वक देखा। रात काफी जा चुकी थी और जैसा कि अक्सर होता था मैं उनका ध्यान हटानेके लिए ही वहाँ गयी थी, जिससे वे अपना काम छोड़ कर उठ बैठनेको बाध्य हों और सोनेके लिए चले जायँ। मेरी चाल कभी सफल नहीं होती थी, फिर भी मैं किये जाती थी।

"क्या तुम अपने बारेमें सचमुच निराशाका अनुभव कर रही हो ?" उन्होंने पूछा। "मुझे इसका कोई आभास नहीं मिला था। व्यक्तिगत रूपसे तो मैं तुम्हें बहुत अच्छा समझता हूँ और मुझे इसमें सन्देह नहीं

कि तुम ऐसा बहुत-सा काम करोगी जो उपयोगी होगा। किन्तु इन मामलोंमें बहुत जल्दी करनेकी आवश्यकता नहीं, इतना समझ लो।"

अन्तमें मैंने निश्चय किया कि बहुत साफ और स्वाभाविक काम इस समय मेरे लिए यही था कि मैं मामूके घरको उनके लिए सुखी स्वगृह (होम) बना दूँ। जब इन्दी लखनऊ चली गयीं, तब मामूके सुख एवं सुविधाका प्रबन्ध करनेके लिए मैं ही अकेली रह गयी।

मामूने भारतकी सच्ची जानकारी प्राप्त की थी कई वर्षों तक देशके एक छोरसे दूसरे छोरतक यात्रा द्वारा, उसके अतीतका चित्र अपनी कल्पनामें पुनरुत्थापित कर और उसीके आधारपर उसके भविष्यका स्वप्न खड़ा कर। मैंने भारतको जाना दूसरे ही तरीकेसे, खुद उन्हींके जरिये—दिन प्रतिदिन उस स्वप्नको जीवित सत्यके रूपमें परिणत करनेका प्रयत्न करते देखकर। मैं देखती थी मानो कोई दैत्य उनके भीतर बैठकर अद्भुत शक्तिसे काम करता हो जिसे विश्राम करना जरा भी पसन्द न हो। उनमें करुणाका ऐसा अथाह कूप भरा रहता था, जिससे उन्हें ऐसी स्थितिमें भी समय और स्फूर्ति मिल जाती थी जब इसकी गुंजाइश नहीं देख पड़ती थी। इन गुणोंके कारण वे अकेले एक व्यक्तिके बजाय व्यक्तियोंकी सेनाके समान काम करते थे। मुझे सर गैलेहडकी ये पंक्तियाँ स्मरण हो आयीं—"मेरी ताकत दस आदमियोंकी ताकतके समान है, क्योंकि मेरा दिल साफ है," और मैंने ख्याल किया कि किस तरह ये मामूपर लागू होती हैं। उनके सिरपर प्रधान मन्त्रीका जो नामपत्र (लेबिल) लगा है, उसका एक विशिष्ट और सीमित अर्थ होता है, जैसा कि किसी भी नामपत्रका होता है। वह विशिष्ट कर्त्तव्योंका द्योतन करता है। मामूमें मानवताका भाव नामपत्रसे हमेशा ऊँचा रहता था। वे अन्य कुछ होनेके पूर्व एक संवेदनशील व्यक्ति थे जो मानवतापूर्ण आदर्शपर दृढ़तासे कायम थे। मुझे वे प्रधान मन्त्रीसे भी अधिक ऐसे योद्धाके सदृश जान पड़ते थे जो उस तश्तरीकी खोजमें निकला हो जिसमें ईसाने अंतिम रातमें भोजन किया था, अथवा ऐसे कलाकारके सदृश जिसने अपना लक्ष्य पूरा करनेके लिए जान लड़ा दी हो। भारतीय स्वतन्त्रताके ठीक पूर्वकी (१४ अगस्तकी) रातमें मामूने इन सुन्दर शब्दोंसे राष्ट्रके नाम

सन्देश प्रसारित करना शुरू किया था—"कई वर्ष हुए जब हमने अपने भाग्यका निपटारा कर लिया था और अब वह समय आ गया है जब हम अपनी प्रतिज्ञा दोहरावेंगे।"—आधी रातका घण्टा बजनेपर जब सारी दुनिया सोती रहेगी, तब भारत जीवन एवं स्वतन्त्रताके क्षेत्रमें जागरित हो उठेगा। ऐसा लगता था मानो नयी स्वतन्त्रताकी रक्षाका समस्त भार उन्होंने अपने ऊपर ले लिया हो और वह समस्त जिम्मेदारी भी, जो दृढ़तासे और सगर्व धारण की गयी थी, कि भारत महात्माजीकी शिक्षाके पथपर ही चलेगा, अन्य किसी पथपर नहीं।

प्रत्येक व्यक्तिकी दृष्टिमें उसके अपने देशका एक विशिष्ट अर्थ होता है, कोई ऐसा असाधारण विचार या विशेषता जिसके कारण उसे उसका नागरिक होनेपर अभिमान होता है। वह ऐसा स्थान हो सकता है जहाँ उसने अपना सुखद बाल्यकाल बिताया हो, वह उसके देशका संविधान हो सकता है अथवा अपने देशवासियोंका ऐसा कोई प्रशंसनीय गुण जिससे वे अपनी विपत्तियोंपर विजय पानेमें समर्थ हो सके हों। उस जल-सैनिकने जिससे अमेरिका जाते समय १९४३ में मेरी भेंट हुई थी, कहा था कि मैं यह लड़ाई प्रिय अमेरिकन भोजनके लिए लड़ रहा हूँ। उसके लिए स्वदेशका क्या अर्थ होता है, यही उसने इस तरह प्रकट किया था। मेरा देश मेरे लिए मामूके तत्सम्बन्धी आदर्शसे अनिवार्यतः सम्बद्ध था। जब मैं छोटी बच्ची थी, तभी मुझे इसका कुछ आभास मिल गया था और अब मुझे इसका पूरा विश्वास हो गया है। उनके आदर्शका भारत ही वह देश था जिसके साथ मैं अपना सम्बन्ध बनाये रखना चाहती थी और जिसमें ही रहनेकी मेरी इच्छा थी।

सारा दिन मामूके कार्यक्रमसे ही भरा रहता था। सबेरे आश्रयहीन शरणार्थियोंकी भीड़, जो विभाजनकी देन थी, अपनी शिकायतें उन्हें सुनानेके लिए मकानके चारो तरफ जुटी रहती थी। प्रत्येक यूरोपियनने युद्धकालमें तथा उसके बाद ऐसे ही निराश क्षुधित चेहरे देखे होंगे किन्तु मैंने नहीं देखे थे, क्योंकि मैं अमेरिका जैसे सुरक्षित स्थानमें रहती थी। उनकी बातें सुनना मामूके कार्यक्रमका पहला विषय था। दोपहरमें

भोजन करनेका अवसर बहुधा देरमें ही मिल पाता था और वह भी जल्दीमें करना पड़ता था। उस थोड़ेसे बीचमें भी अक्सर लोग मामूसे मिलनेकी प्रतीक्षा करते रहते थे और कभी कभी तो वे रुककर भोजन करने भी बैठ जाते थे, जिससे इन्दीको और मुझे आमलेट बनाकर, खाकर ही रसोईका काम समाप्त करना पड़ता था। यह स्थिति कमसे कम उससे बहुत भिन्न न थी जो आनन्द भवनके पुराने दिनोंमें थी।

रातमें मामूके दफ्तरमें आधी रातके बाद तक भी रोशनी जलती रहती थी और जब वे सोनेके लिए जाते थे, तब और भी अधिक कागज-पत्र तथा फाइलें उनकी चारपाईके पास रखी रहती थीं। एक बार रातमें मैं भी देर तक पढ़ती रही और जब मामू दफ्तरसे उठे तथा उन्होंने मेरा लैम्प जलते देखा, तो मेरे कमरेमें चले आये।

"यहाँ हम लोग साथ-साथ एक ही मकानमें रहते हैं, फिर भी मैं कदाचित् ही तुम्हें देख पाता हूँ।" वे बड़े थककर बोल रहे थे और उनका चेहरा मुरझाया हुआ था। "अब तुम यहाँ आ ही गयी हो बेटी, तो मैं तुमसे बहुत-सी चीजोंके सम्बन्धमें बातचीत करना चाहता हूँ—किन्तु कब? व्यक्तिगत मामलोंको रोक ही देना पड़ता है। काम इतना अधिक है और समयकी है कमी।"

मुझे उस दिनकी बात स्मरण आ गयी जब मैंने पापूसे चिल्लाकर कहा था "ऐसी बहुत-सी चीजें हैं जिनके बारेमें मुझे आपसे बातें करनी हैं। उस दिनकी भी याद आयी जब लेखा, रीता और मैंने आनन्द भवनके ग्रन्थागारमें मामूसे कहा था "सब बातें सामान्य स्थितिमें कब आवेंगी?" अब मैंने देखा कि पारिवारिक बातोंके लिए अतीतमें अधिक समय मिल जाता था बनिस्बत उसके जो भविष्यमें मिल सकेगा और यह कि "सामान्य स्थिति" अभी तक पहलेसे और अधिक निकट नहीं आ सकी है।

मामू मुसकरा दिये और थोड़ी देरके लिए उनकी थकावट दूर हो गयी। "कल जब मैं बापूको देखने जाऊँगा, तब तुम मेरे साथ चल सकती हो। जबसे तुम वापस आयी हो, उनके पास नहीं जा सकी हो।"

यह ऐसी बात थी मानो बापूके पास जाना ही उनकी समय सम्बन्धी

समस्या एवं उनकी थकावटका समाधान हो, मानो बापूकी उपस्थितिसे ही प्रश्नोंका हल निकल आयेगा और जखम अच्छे हो जायेंगे।

दूसरे दिन मैं भी मामूके साथ गयी जब वे अपने प्रतिदिनके नियमके अनुसार बिड़ला भवन गये, जहाँ गांधीजी ठहरे हुए थे। हम लोग बरामदेके छोरपर एक कमरेमें गये जहाँ वे कुछ लोगोंके साथ फर्शपर बिछी चटाईपर बैठे हुए थे। मैंने दरवाजेपर अपने जूते उतार दिये और भीतर प्रविष्ट होनेपर बापूके चरण छुए। मुझे अपने गालपर हलकी-सी चपत लगनेका-सा अनुभव हुआ जब उन्होंने मुझे खींचकर अपने पास बैठा लिया और मैंने उनके अट्टहासकी ध्वनि सुनी, जो इतनी संक्रामक थी कि कमरेके अन्य लोगोंके चेहरोंपर भी मुसकराहट दौड़ गयी, ठीक उसी तरह जिस तरह बच्चेके स्वाभाविक रूपसे खिलखिलाकर हँस देनेपर बड़े लोग भी मुसकरा पड़ते हैं।

"अच्छा, तो तुम घर आ गयीं!" उन्होंने कहा, आँखें उनकी चमक रही थीं। "अब तुम क्या करना चाहती हो? मेरा खयाल है कि शायद तुम अभी इतनी बड़ी नहीं हुई हो कि इस सम्बन्धमें मुझसे बातचीत न करना चाहो?"

गांधीजीने हालमें ही देखा था कि उनके देशवासी, अहिंसाका सबक भुलाकर जो उन्होंने उन्हें पढ़ाया था, आपसमें कटुतापूर्वक तू-तू मैं-मैं कर रहे थे, क्योंकि देशके बँटवारेके साथ-साथ बड़ी दुःखद घटनाएँ एवं रक्तपात हुआ था। फिर भी इतना बड़ा आघात लगने एवं निराशा होनेपर भी वे उस छोटी लड़कीको नहीं भूले थे जो अमेरिका गयी थी। उन बहुसंख्यक प्रार्थनाओंके बावजूद जो उनसे प्रतिदिन पथ-प्रदर्शनके लिए की जाती थीं, उन्होंने उसके भविष्यके सम्बन्धमें दिलचस्पी दिखलायी।

"मैं आपसे बातचीत करना चाहती हूँ, बापू," मैंने गम्भीरताके साथ कहा, "जब आप अधिक कार्यव्यस्त न हों।"

"कार्यव्यस्त? मैं कभी अधिक कार्यव्यस्त नहीं रहता। मुझे बता भर देना कि कब आ रही हो।"

सन् १९४७ में जब दिल्लीमें शोरगुल या गड़बड़ शुरू हुई, तब बापू शान्त विचारोंके तीर्थ बने रहे। उन दंगोंके समय जो भारतके

कुछ हिस्सोंमें विभाजनके पहले तथा बादमें हुए थे, वे जहाँ संभव हो सका वहाँ निर्भयतापूर्वक दंगाइयोंके बीच चले जाते थे और उन्हें यह पागलपन छोड़ देनेकी सलाह देते थे। फिर भी तूफान एवं खतरेमें रहने के बावजूद वे बराबर अविचलित बने रहे। अब वे दिल्ली लौट आये थे और बिड़ला भवनके बगीचेमें प्रतिदिन संध्या समय प्रार्थना-सभा किया करते थे। पहले ही की तरह इन सभाओंमें भजन तथा मंत्रादि-का पाठ होता था और भगवद्गीताके अवतरण पढ़े जाते थे। इसके बाद वे कुछ उपदेश देते या भाषण करते थे।

जो उन्हें सुनते थे उन्हें ये भाषण पहलेके भाषणोसे भिन्न मालूम होते थे, क्योंकि बापू अपने सुननेवालोंपर प्रभाव डालनेकी इच्छासे कुछ बोलनेके बजाय ऊँची आवाजमें विचार ही करते थे। गांधीजी राजनीतिज्ञ नहीं थे। गांधीजी अपने मनके विचार बदलनेमें हिचकते न थे और न पहले कही गयी बातोंका खण्डन करनेसे ही चूकते थे, यदि उन्हें यह विश्वास हो जाता था कि मुझसे भूल हो गयी है। उन्हें यह घोषित करनेमें लज्जा नहीं मालूम होती थी कि धर्म ही मेरा मार्ग दर्शक है। अपने देश या समाजके लोगोंके कष्टोंकी ही चिन्ता उन्हें रहती थी और इसकी भी कि किस तरह वे उसे आसानीसे घटानेमें सहायक हो सकते हैं। भारतको स्वतंत्रता तो मिल गयी थी किन्तु भारत भरमें किसीपर भी उसका इतना कम प्रभाव न पड़ा होगा जितना गांधीजीपर जिनके कारण ही उसे प्राप्त करना देशके लिए संभव हो सका। उनके ध्यान और चिन्ताका यह मुख्य विषय कभी नहीं रहा। उनका मन बहुत पहलेसे ही नैतिकतामें व्यस्त रहता। इसलिए भारतके राजपुरुष जब देशके विकास और कल्याणके लिए बड़ी-बड़ी योजनाएँ तैयार कर रहे थे, तब बापूकी शान्तवाणी अपने इस नैतिक सिद्धान्तके प्रचारमे ही सन्तुष्ट थी कि अच्छे लक्ष्यकी प्राप्तिके लिए अच्छे साधनोंका ही प्रयोग करना चाहिये, किसी भी बड़ी और अच्छी चीजका निर्माण गंदी बुनियादपर नहीं किया जा सकता।

कुछ संख्यामें विदेशी परिदर्शक भी उन प्रार्थना-सभाओंमें उपस्थित रहा करते थे और मैं नहीं कह सकती कि वे उस प्रभावहीनसे देख पड़नेवाले, अर्द्ध वस्त्रावृत्त छोटेसे आदमीके सम्बन्धमें क्या सोचते होंगे

जो अपने चारों ओरके लोगोंपर ऐसा जादू डालकर उनकी श्रद्धा और भक्ति प्राप्त कर लेता है। क्या जो कुछ वे देखते थे, उसे वे एक मनोरंजक घटना समझते थे, किन्तु जो ऐसी थी जिसका होना इंगलैण्ड, अमेरिका, हालैण्ड या अन्य किसी देशमें, जहाँसे वे आये हों, संभव न था? मैं हैरान हूँ कि आखिर वे उसका क्या मतलब निकालते होंगे। मेरी अपनी प्रतिक्रिया एक तरहकी भय-मिश्रित श्रद्धा थी। क्या यह बात सच हो सकती थी कि कोई आदमी प्रेम, सत्य और अच्छाईके सम्बन्धमें बातचीत किया करे और इन धार्मिक या नैतिक बातोंका प्रयोग राजनीतिमें भी करे, फिर भी लोग उसपर हँसें नहीं? क्या सचमुच ऐसा हो सकता था कि इन सिद्धान्तोंके अनुसार ही वस्तुतः किसी राष्ट्रकी नीति निर्धारित की जाय? फिर भी भारतमें ये सब बातें सत्य थीं। मुझे अपने भारतीय होनेपर साश्चर्य अभिमान होने लगा और मैंने अनुभव किया कि गांधोजीके भारतमें भारतीय होनेका मतलब होगा विचार करनेके ऐसे सुन्दर और बुद्धिसंगत तरीकेसे हमेशाके लिए सम्बद्ध हो जाना।

जनवरी महीनेके एक सुहावने दिन तीसरे पहर इन्दी, राजीव और मैं बापूसे मिलने गयीं। मौसी और पद्मासी, श्रीमती नायडूकी पुत्री भी, जो कुछ दिनोंके लिए दिल्ली आयी थीं, हम लोगोंके साथ थीं। हमें वे उद्यानमे आतप-स्नानका आनन्द लेते हुए मिले। जाड़ेकी कठोरता कुछ कम हो गयी थी जिससे धूप बड़ी सुहावनी लगने लगी थी। उद्यानमें चारों तरफ फूलोंकी चादर-सी बिछी हुई थी, क्योंकि दिल्लीमें जाड़ा ही फूलोंका मौसिम है। राजीव दूर्वाक्षेत्रपर दौड़-दौड़ कर तितलियोंका पीछा कर रहा था और हम लोग बापूके कम ऊँचाईवाले तख्तके चारों तरफ बाँसकी गद्देदार कुर्सियोंपर बैठ गयीं। वे उस समय एक तरहकी बेफिक्रीकी मुद्रामें थे और उनके साथ हमने एक घण्टा बड़े आनन्दमें बिताया। हमने उनसे व्यंग्यमें कहा "महात्मा जी, यह बहुत अच्छा है कि आप अपनी सेहतका इतना ध्यान रखते हैं और जब अवसर मिलता है, तब पोषक तत्व 'डी' से लाभ उठानेका प्रयत्न करते हैं।"

जब हम उनसे विदा लेने लगीं तो उन्होंने कहा "यह अच्छा ही

हुआ कि तुम आज मुझसे मिलने चली आयीं, क्योंकि अगली बार जब तुम मुझे देखोगी, तब मैं भीड़से घिरा रहूँगा।"

हमने भौंचक्की-सी होकर एक दूसरीकी तरफ देखा। क्या बापू हमेशा भीड़में ही नहीं रहते? उनके लिए यह बात कहनेकी शायद ही कोई आवश्यकता रही हो, यह तो एक मानी हुई बात है। यों ही किये गये उनके कथनको हमने इस बातकी पूर्व सूचना नहीं माना कि अब हम फिर उन्हें जीवित अवस्थामें न देख सकेंगे। दूसरी बार सच-मुच हमने उन्हें भीड़में देखा, शोक प्रकट करनेवालोंकी वह भारी भीड़, जिसके भीतरसे उनकी अरथीका जुलूस जा रहा था। उस दिन सूर्या-तपसे प्रकाशित तीसरे पहर क्या बापूने अपनी आसन्न मृत्युकी भविष्यद्वाणी की थी?

×

"देशके निष्ठुर विभाजनके बाद दिल्ली व्यथित लोगोंका नगर रह गया था किन्तु वह महत्त्वकी नयी राजधानी भी थी जिसमें नया जीवन आ रहा था। विदेशोंसे आनेवाले पर्यटक बड़ी संख्यामें वहाँ पहुँचते थे और राजदूतोंके दलोंमें शीघ्रतापूर्वक वृद्धि हो रही थी। गांधीजीके इस भारतकी जानकारी प्राप्त करनेके लिए दुनियाके लोग उत्सुक थे। वे उस तरीकेके बारेमें जानना चाहते थे जिससे भारतने आजादी हासिल की थी। इससे भी अधिक वे यह जाननेके लिए इच्छुक थे कि यह नीति क्या आगे भी कारगर हो सकती है? मामूका निवास-स्थान, १७, यार्क रोड, भारतका नम्बर १० डाउनिंग स्ट्रीट, ह्वाइट हाउस तथा क्रेमलिन, इन तीनोंका* मिला-जुला रूप था। मामू जिन लोगोंसे मिलनेका वचन दे चुके रहते या जो लोग उनसे मिलने आते, उनकी व्यवस्था करनेके असफल प्रयत्नमें मैं बिना साँस रोके बराबर इधरसे उधर दौड़ती रहती थी। स्वतन्त्र हिन्देशियाके परराष्ट्र मन्त्री डा० शहरियार, जिनसे मैं कुछ समय पूर्व न्यूयार्कमें कुछ फुरसतके साथ मिल

* नम्बर १० डाउनिग स्ट्रीट—ब्रिटिश प्रधान मन्त्रीका कार्यालय, ह्वाइट हाउस—अमेरिकन राष्ट्रपतिका सरकारी निवास स्थान, क्रेमिनल—सोवियत रूसकी सरकारका केन्द्रीय कार्यालय।

चुकी थी, इस समय हमारे साथ ही ठहरे हुए थे। बैठकखानेकी आराम कुर्सीपर बैठे-बैठे वे मुझे इतना व्यग्र देखकर मुसकरा रहे थे।

"न्यूयार्कसे यहाँकी रफ्तार अधिक तेज है, क्यों न?" उन्होंने पलकें झपकाते हुए कहा, "यहाँ तुम्हें सब काम अधिक तेजीसे होता जान पड़ता है।"

नम्बर १७ यार्क रोडमें मैं स्वतन्त्र भारतमें नियुक्त होनेवाले कितने ही राष्ट्रोंके प्रथम राजदूतोंसे मिली। रूसी राजदूतकी पत्नी श्रीमती नोवीकोफ, जब वे पहली बार अपने पतिके साथ वहाँ भोजन करने आयी थीं, जाड़ेके मारे गनगन काँप रही थीं और विद्युत्तापकके निकट खिसकती जा रही थीं। बरामदेकी तरफके दरवाजे बन्द कर दिये गये थे और परदे गिरा दिये गये थे, फिर भी वे अपना रोयेंदार कोट उतारनेको तैयार नहीं हुईं।

"फिर भी, मान्य महोदया, यह निश्चित है कि यहाँकी ठंढ आपपर ज्यादा असर नहीं डाल सकती, क्योंकि आपको मास्कोकी ठण्ढमें रहनेका अभ्यास है।"

"वह बिलकुल दूसरी चीज है", उन्होंने हँसकर कहा। "वहाँ हम लोगोंके घर मध्य भागसे गरम किये जाते हैं और बिलकुल सुहावना लगता है। दिल्लीका यह जाड़ा तो भयंकर है। यहाँ कोई गरम नहीं हो सकता।"

वर्मी राजदूतकी पत्नी श्रीमती विन भी इससे अधिक अच्छी तरह ठण्ढ बर्दाश्त नहीं कर सकती थीं। गरमीके लायक अपने हलके कपड़ोंमें वे इस योग्य नहीं जान पड़ती थीं कि दिल्लीकी सर्द हवावाले मौसिमका सामना कर सकतीं। वे तथा उनके पति एक रात, अन्य लोगोंको साथ लिये बिना, अपने तईं भोजनके लिए चले आये थे। बादमें जब मैंने देखा कि राजदूत और मामू सोफापर बैठकर धीमे स्वरमें परस्पर बातचीत करनेमें व्यस्त हैं, तब मैं श्रीमती विनको ऊपर अपने सोनेके कमरेमें लिवा ले गयी। मैंने उन्हें सुभीतेके साथ एक आराम कुर्सीपर बैठा दिया और उनके चारों तरफ एक कम्बल लपेट-सा दिया और वहाँ हम बड़े आनन्दके साथ बैठी रहीं जब कि नीचे हिन्द-वर्माकी स्थितिपर बातचीत चल रही थी। वे शायद ही एक दो

शब्द अंग्रेजीमें बोलतीं थीं और मैं बर्मीमें नहीं बोल पाती थी, फिर भी इसके कारण हम लोगोंके लड़खड़ाते हुए और हँसते हुए एक दूसरेके मित्र बन जानेमें कोई रुकावट नहीं पड़ी।

एक दिन सबेरे मैं इन्दीके साथ अमेरिकन राजदूतकी पत्नी श्रीमती ग्रेडीसे मिलने गयी। हम उनके बैठकखानेमें मिलीं जहाँ वे बिजलीकी फिटिंग आदिके कामकी कुछ निगरानी कर रही थीं। मम्मीसे उनकी भेंट पहले ही हो चुकी थी और उन्होंने हाथ फैलाकर मेरा स्वागत किया।

"मिस्ट सिंघ !" कमरेकी दूसरी तरफ काम करनेवाले बिजलीके ऊँचे-तगड़े सिख मिस्त्रीको प्रसन्नतापूर्वक सम्बोधन करते हुए उन्होंने कहा, "यहाँ चले आओ और समुद्र पार रहनेवाली हमारी प्रिय सखी (श्रीमती विजयालक्ष्मी) की पुत्रीसे मिल लो।"

इस तरह प्रचलित परम्पराकी अवहेलना कर परिचय करानेसे श्री सिंघ चकपका गये और समझ नहीं पाये कि मैं कौन हूँ, फिर भी उन्होंने यह बात लक्षित नहीं होने दी। उन्होंने मेरी ओर देखकर शिष्टभावसे "नमस्ते" कहा और फिर अपने कामपर चले गये।

"तुम्हें इस दूतावासको अपना घर ही समझना चाहिये। आखिर, तुम हम लोगोंकी भी तो हो, यह तुम जानती हो," श्रीमती ग्रैडीने अपने स्नेहपूर्ण, स्वाभाविक ढंगसे कहा और फिर एकाएक बोल उठीं "प्रिय बच्ची, तुम्हें हम लोगोंके लिए कुछ स्वेटर आदि बुन देनेका काम करना होगा।"

बातचीतसे पता चला कि "हम लोगों के लिए" से उनका मतलब शहरमें आये हुए बहुतसे विस्थापित परिवारोंमेंसे किसी एकके लिए था। श्रीमती ग्रैडी उदार एवं दयालु हृदय महिला थीं जो प्रत्येक संकटग्रस्त व्यक्तिके पक्षका समर्थन करनेको तैयार हो जाती थीं।

"हाँ, मैं यह काम करना अवश्य चाहूँगी," कहकर मैंने हामी भर दी और हरे ऊनके कई बण्डल लेकर घर लौट आयी।

× × ×

क्या कभी कोई यह समझ सकेगा कि गांधीजीको गोली क्यों मार दी गयी, अथवा, उसी तरह, ईसा सूलीपर क्यों चढ़ा दिये गये या सुकरातको मृत्यु-दण्ड क्यों मिला? क्या इस तरहका पागलपनका काम

बुद्धि और समझदारीसे प्रेरित हो सकता है ? क्या इसका इसके सिवा कोई और अर्थ हो सकता है कि इन लोगोंके बाद जो लोग जीवित रहें वे अपने मानव-बन्धुओंके कुकृत्योंके लिए घोर पश्चाताप करें। गांधीजीकी मृत्युसे आखिर किसका लाभ हुआ ? उनके हत्यारेका नहीं क्योंकि वह पकड़ा गया, उसपर मुकदमा चला और फिर फाँसीपर लटका दिया गया। गांधीजीकी शिक्षाओंके विरोधियोंका भी नहीं, क्योंकि उनकी मृत्युसे उनका सन्देश पहलेसे भी अधिक तीव्र प्रकाशसे ज्योतित हो उठा। अपने जीवन कालमें वे महात्मा कहे जाने लगे थे। उनकी शहादतने उन्हें और भी अधिक गौरवमयी अमरतासे विभूषित कर दिया। वे क्यों मार डाले गये, इसका कारण पूछना ऐसे रहस्यको कुरेदना है जो अनादि है। इतिहासके सम्बन्धमें पूछे गये "क्यों" का उत्तर कदाचित् ही मिलता है।

इन्दी और मैं ३० जनवरी १९४८ की शामको घरमें बैठी हुई चाय पी रही थीं कि टेलिफोनपर जरूरी सन्देश मिला जिसमें हम लोगोंको तुरन्त बिड़लाभवन पहुँचनेको कहा गया था और यह भी बतलाया गया था कि प्रार्थना-सभामें जाते समय रास्तेमें किसीने गांधीजीको गोली मार दी। हम लोग मर्माहत होकर रह गयीं किन्तु तुरन्त सजग होकर कारमें बैठीं और शीघ्र ही वहाँ पहुँच गयीं। दूसरे लोग भी, उनके सम्बन्धी तथा अनुयायी जो बिड़ला भवनके उनके कमरेमें उनके शरीरके चारों तरफ इकट्ठे हो गये थे, हमारी ही तरह प्रभावित हुए जान पड़ते थे। गांधीजीने जब अन्तिम सांस ली, तब कमरेमें सन्नाटा छाया हुआ था।

मामूको एक सभामें समाचार मिला और वे हमारे बाद ही वहाँ पहुँच गये। मेरा ख्याल है कि उन्हें जो समाचार दिया गया था उससे अत्यन्त चिन्तित होकर जब उन्होंने कमरेमें प्रवेश किया, तब उन्होंने यह नहीं समझा था कि गाँधीजीके प्राण-पखेरू उड़ चुके हैं। मैं यह भी सोचती हूँ कि मामू इस बातका विश्वास ही नहीं कर सकते थे कि गांधीजीकी मृत्यु इतनी अचानक हो जायगी, बिना एक शब्द कहे ही वे उन्हें ऐसे समय अकेला छोड़कर चल देंगे जब उन्हें उनकी सलाह और सहायताकी पहलेसे भी अधिक आवश्यकता थी। कमरेमें खड़े वे लोग

जो मामूको भीतर आने देनेके लिए एक तरफ हट गये थे, चुपचाप देखते रहे कि अपने प्रिय नेताके शरीरके पास घुटने मोड़कर वे बैठ गये और दुःखके मारे क्षणभरके लिए अपनी सुध-बुध भूल गये। किन्तु जो कुछ हो गया था वह इतनी भारी घटना थी कि उसपर शोक निमग्न होकर बैठ रहनेका अवसर ही न था। मामू जब उठकर खड़े हुए तब उन्होंने फिर अपने ऊपर काबू पा लिया था और इसके बादके दिनोंमें अकेलेपन तथा व्यक्तिगत हानिकी कठिन परीक्षासे गुजरते हुए फिर उन्होंने कभी कमजोरियोंका कोई चिह्न तक प्रकट नहीं किया। जो लोग उन दिनों उनके चेहरेकी तरफ देखकर अपना धैर्य बनाये रख सकते थे वे उसपर एक खींची हुई-सी सफेद झिल्ली देखते थे, जिसके भीतरसे केवल आँखों द्वारा उनकी आन्तरिक वेदना प्रकट होती थी।

हत्याका समाचार तमाम दिल्लीमें वायु द्वारा प्रज्वलित अग्निशिखाके समान तेजीसे फैल गया था, क्योंकि शीघ्र ही मूक, संतप्त स्त्री-पुरुषोंकी भीड़ प्रहरियोंकी तरह बिड़ला भवनमें होने लगी और मकानोंकी प्रत्येक खिड़कीसे विषाद-क्लांत चेहरे ही दिखाई देते थे। किसीके भी मुँहसे आवाज नहीं निकलती थी और एक अस्वाभाविक-सी नीरवता चारों तरफ छायी हुई थी। ऐसा प्रतीत होता था मानों उन थोड़ेसे क्षणोंके लिए सारी पृथ्वी एवं समय रुककर चुपचाप खड़े रह गये हैं। यह शुरूकी स्थिति थी जब वे ऐसे हतबुद्धिसे हो गये थे कि उनके लिए एक शब्द भी बोल सकना मुश्किल था। बादमें वे अनियन्त्रित भावसे चीखने-चिल्लाने और एक दूसरेको धक्का देकर मकानके भीतर घुस पड़नेका प्रयत्न करने लगे। वे तभी कुछ शान्त हुए जब उन्हें बताया गया कि गांधीजीके शरीरके पाससे होकर वे कतार बाँधकर जा सकेंगे और उनके दर्शन कर सकेंगे। इसके बाद ही दूसरे दिन उनकी अन्त्येष्टिकी जायगी। कुछ अफसरोंकी राय थी कि शरीर मसालेमें डुबाकर कुछ दिनों तक सुरक्षित रहने दिया जाय जिससे देशके प्रत्येक कोनेसे आ-आकर लोग उनके प्रति, अन्तिम संकार होनेके पूर्व, अपना सम्मान प्रकट कर सकें। किन्तु गांधीजी ऐसी किसी सम्भावनाका पहलेसे ही ख्याल कर हमेशा कहा करते थे कि मैं यह नहीं चाहता कि मेरी मृत्युके बाद मेरा शरीर किसी भी कारणसे सुरक्षित रखा जाय।

यह एक ध्यान देने योग्य बात है कि किसी प्रिय व्यक्तिकी मृत्युका आघात लगनेपर पहला प्रश्न यह नहीं होता कि वे कहाँ चले गये ? उनका क्या हुआ ? यह विचार तो दुःखके साथ-साथ बादमें उत्पन्न होता है। पहले तो हलकी-सी आवाज मुँहसे यही निकलती है "अब मेरा क्या होगा जब कि वे मुझे छोड़कर चले गये हैं ?" उन शोकतप्त बहुसंख्यक हृदयोंमें निश्चितरूपसे यही प्रश्न सबसे ऊपर था, क्योंकि उनकी चेष्टाएँ और भाव बिलकुल अनाथ बच्चोंकी तरहके थे। यही प्रश्न हममेंसे बहुतोंके हृदयमें था जब हम शोक संतप्त तथा अभीतक घटनापर विश्वास न करते हुए बैठकर मामूका रेडियो-भाषण सुन रहे थे जिसमें वे भारतकी जनताको बतला रहे थे कि हम सबके बापू अब इस संसारमें नहीं हैं।

भय तथा अनिश्चय के उस वातावरणमें दूसरे दिन श्रीमती नायडू उत्तरप्रदेशसे जा पहुँची, जहाँ वे गवर्नर थीं। उनका चेहरा अस्तव्यस्त, और आँखें आँसुओंको रोके रहनेके कारण ज्योतिहीन-सी दीख पड़ती थीं किन्तु उनका साहस और धैर्य हमेशाकी तरह अजेय बना हुआ था।

"आखिर इतना रोना-धोना किसलिए ?" उन्होंने कठोरतापूर्वक पूछा। क्या आप लोग चाहते हैं कि उनकी मृत्यु वृद्धावस्थाकी कमजोरी या अजीर्ण रोगसे होती तो बेहतर होता। यही एक ऐसी मृत्यु थी जो उनके लिए काफी-काफी महान् थी।

गांधीजीकी अंत्येष्टि मृत्युके दूसरे दिन होनेवाली थी और कई घण्टों पहलेसे लोग उस मार्गके दोनों ओर कतार बनाकर खड़े होने लगे थे जिससे होकर उनकी शवयात्राका जुलूस निकलनेवाला था, जिसकी घोषणा मामू रेडियोपर कर चुके थे। मार्ग सम्बन्धी योजना बनानेमें न जाने कितनी चीजोंका प्रबन्ध करना आवश्यक था और मामू तथा अन्य लोग रात भर जागकर उसीको ठीक-ठाक करनेमें लगे रहे। सबेरे हमें मालूम हुआ कि जुलूसमें कुछ सवारी गाड़ियाँ भी उन लोगोंके लिए रहेंगी जो उतनी दूरतक पैदल चलनेमें असमर्थ थे।

पद्मासीने हम सबके मनका भाव ही प्रकट किया जब उन्होंने कहा कि "हम पैदल हो जायँगी। यह अन्तिम बार है जब हम बापूके साथ पैदल चल सकेंगी।"

यह बड़ी दर्दनाक यात्रा थी, क्योंकि उन हजारों आदमियोंके सिवा जो चुपचाप खड़े होकर अपने बगलसे जुलूसको निकलकर आगे बढ़ते देख रहे थे, ऐसे भी हजारों व्यक्ति थे,जो पागलसे होकर उस खुली मोटर गाड़ीको घेर लेनेका प्रयत्न कर रहे थे जिसपर महात्माजीका पुष्पमालाओंसे सज्जित शरीर रखा हुआ था। वे अत्यन्त करुणाभावसे रो रहे थे और एकबार फिर बापूके चरण छूनेकी चेष्टा कर रहे थे। उस समय एक छोटा-सा कदम भी आगे बढ़ाना असम्भव था, क्योंकि ऐसा करते समय चारों तरफसे भीड़ द्वारा कुचले जानेका भय था। जुलूस बिड़ला भवनसे सबेरे ही रवाना हुआ था और जब वह, तीन मीलकी दूरी तय कर, स्मशान भूमिमें पहुँचा तब शाम हो गयी।

जब मैं बड़ी कठिाईसे एक-एक इंच भूमि तय करती हुई आगे बढ़ रही थी, तब मैंने अनुभव किया कि मैं जिन लोगोंके बीचमें होकर चल रही ही थी, वह केवल शोक-कातर मनुष्योंकी ही भीड़ न थी। यह भारतके सबसे अधिक लोकप्रिय नेताकी शवयात्राके जुलूससे भी कुछ और था। मैं ऐसे लोगोंके बीचमें थी जिनके लिए बापूके साथ पैदल चलना एक विशेष महत्त्व की बात थी, क्योंकि भारतके हालके इतिहासमें ऊबड़-खाबड़ मार्गका बहुत-सा अंश उन्होंने बापूके साथ-साथ पैदल चलते हुए ही पूर्ण किया था। उनका हृदय अब यह स्थिति मान लेनेको तैयार नहीं हो रहा था कि जिस महान् व्यक्तिने अनेक कठिन रास्तोंपर चलते समय उनका नेतृत्व किया था, वह अब कभी उनके साथ पैदल न चल सकेगा। दुबले-पतले, छोटे शरीरवाले बापूने हाथमें डण्डा लिये, पाँव-पाँव चलते हुए अधिकांश ही भारतकी यात्रा की थी। पैदल चलनेका मतलब होता है मन्दगतिसे आगे बढना। उसमें स्पष्टरूपसे सोचने और अपने चारो ओरकी चीजोंको अधिक चेतनतासे देखनेका अवसर मिलता है, उन छोटे कीड़े-मकोड़ोंसे लेकर, जो रास्तेमें नजर आते हैं, दूरमें दृष्टिगोचर होनेवाले क्षितिज तक। तीर्थयात्री प्रायः पैदल ही चलता है और बापूके लिए प्रत्येक पैदल यात्रा तीर्थयात्रा ही थी, आत्मामें बलिदानकी तैयारीके लिए शरीरका अर्पितकर दिया जाना। पैदल यात्राको अपनानेका निर्णय उन्होंने सोच-समझकर ही किया था।

इसके सिवा औसत भारतीयके लिए बहुधा मात्र पैदल यात्राका सहारा लेना ही सम्भव होता है। इसमें अपने शरीरके सिवा अन्य किसी सवारीकी आवश्यकता नहीं पड़ती और अपनी शक्तिके सिवा और कुछ खर्च नहीं करना पड़ता। यह सीधी-सादी आवश्यकता गांधीजीने देख ली और उसे महत्व देकर ऊँचे उठा दिया, जैसी कि उनकी आदत थी कि वे सामान्य और स्पष्ट बातको अपना लेते थे और उसे सुखमय-रूपमें परिणत कर देते थे।

चिताकी लपटोंमें जब बापूका शरीर जल रहा था, तब हमलोग उसके चारो तरफ जमीनपर कुछ दूर बैठे हुए थे। विदेशी राजदूता-वासोंके सदस्य वहाँ थे और उन सबके सामने काउण्ट तथा काउण्टेस माउण्टबेटन भी हम सब लोगोंकी तरह जमीनपर पलथी मारे बैठे थे। गांधीजीने उन लोगोंमें भी हार्दिक श्रद्धाकी भावना उत्पन्न कर दी थी जिनकी सरकारने कितनी ही बार उन्हें जेलकी दीवारोंमें बन्द कर दिया था।

अंत्येष्टिके कुछ दिनों बाद एक विशेष रेलगाड़ी द्वारा उनकी भस्म इलाहाबाद भेज दी गयी, जहाँ हिन्दूप्रथाके अनुसार वह गंगामें प्रवाहित की जानेवाली थी। मामू तथा परिवारके अन्य सदस्य, भस्मका स्वागत करनेके लिए माउण्टबेटन दम्पति सहित, विमान द्वारा इलाहाबाद जानेवाले थे और मैं भी उन लोगोंमें थी जिन्हें उसमें यात्रा करनेकी विशेष अनुमति दी गयी थी। डब्बेके जिस हिस्सेमें राख रखी हुई थी, वह पुष्प-मालाओंसे सजाया गया था और उसमें सुगन्ध फैल रही थी। उसमें बैठे हुए लोग, गान्धीजीके सम्बन्धी तथा वे अनुयायी जिन्होंने जीवनभर उनकी सेवा की थी, रास्तेकी अधिकांश दूरीमें भजन गाते रहे। अब कोई रो नहीं रहा था, क्योंकि वे मानो उन फूलोंके तथा उन गीतों एवं गीताके श्लोकोंके बीचमें जो उन्हें बहुत पसन्द थे उपस्थित हों। हर स्टेशनपर प्लेटफार्म शोक-प्रदर्शनकारी जनताकी भारी भीड़से भर जाता था और कभी-कभी लोग डब्बेके उस खंडपर टूट पड़नेका प्रयत्न करने लगते थे जिसमें भस्म-पात्र रखा हुआ था। इस प्रकार भजन, प्रार्थना और लाखों देशवासियोंकी श्रद्धाके बीच रेलगाड़ी इलाहाबाद पहुँची। यही वह शहर था जहाँ मेरे परि-

वारके कितने ही सदस्योंकी अन्त्येष्टि क्रिया सम्पन्न हुई थी। अतः यह उचित ही था कि बापूकी अस्थियाँ भी यहीं लायी जायँ, क्योंकि उन्होंने उनके जीवन पर शासन किया था। अस्थियाँ गंगामें विसर्जित कर दी गयीं जहाँ जनताकी बेशुमार भीड़ तटपर इकट्ठी हो गयी थी। इसके बाद हम सबलोग दिल्ली वापस चले गये। उस समयके बादसे मुझे ऐसा मालूम पड़ने लगा मानो अपने कामके प्रति मामूकी निष्ठाका स्वरूप बहुत धार्मिक-सा हो गया हो, हलाँकि "धर्म" शब्द वे पसन्द नहीं करते और न वे यह ख्याल करते हैं कि यह कभी उनपर लागू हो सकता है। उनके चेहरेपर सन्तों जैसी आध्यात्मिक कान्ति छा गयी। ईसा मसीहके शूलीपर चढ़ा दिये जानेके बाद उनके शिष्योंकी भी यही हालत हुई होगी। और इसी तरह उनने भी धर्म प्रचारका भार अपने ऊपर ले लिया होगा।

दिल्ली वापस लौट जानेपर मैं किंकर्त्तव्यविमूढ़-सी हो गयी। यह बात सच थी कि मैंने गांधीजीके साथ काम नहीं किया था, न उनकी पुकार पर मैं जेल गयी थी और न मैंने अपने देशके लिए कोई आत्म-त्याग किया था। वह मुझसे पूर्वकी पीढ़ीका काम था। मेरी बहिनें और मैं, तथा मेरी जैसी उम्रके अन्य लोग, घटनाओंके परिदर्शक मात्र रहे थे। फिर भी मैं परेशान और असहाय-सी हो गयी। इसका कारण, मैं समझती हूँ, यह था कि क्षति सम्बन्धी मेरी भावना मेरी सज्ञानतासे अधिक गहरी थी। ऐसा लगता था मानो मेरे जन्मके पहले जो लम्बी प्रक्रिया शुरू हुई थी, उसका क्रम सूखी टहनीके सदृश एकाएक टूट गया हो, जिससे आगे क्या करना चाहिये, इसके निर्देशनकी क्षमता मुझमें न रह गयी हो। एक जादूके मण्डलके भीतर रहती हुई मैं बड़ी हुई थी और अब यह मण्डल तिरोभूत हो गया था जिससे मैं अरक्षित-सी रह गयी। सचमुच मैंने प्रयत्न करके अपने आपको अपनी कल्पनाओंसे ऊपर उठाया। क्या मैं सचमुच अपने बचपनको और उसका जो भी आशय होता है, उस सबको उस स्वप्नकी दुनियाके हवाले कर देना चाहती हूँ जिसका ख्वाब मैंने देखा था? क्या मेरा मूल्यांकन इतना नश्वर एवं भित्तिहीन न था, क्या बापू व्यर्थ ही जीवित रहे और व्यर्थ ही मरे जो उनके न रह जाने पर मैंने अनायास ही हिम्मत हार दी?

वे न हुए होते तो करोड़ों आदमी सामान्य जनताकी तरह रहते और अपना जीवन बिना किसी विघ्न-बाधाके बिताते रहते। वे उन्हें जोरोंसे हिला देनेके लिए, झँकझोरकर उदासीनतासे बाहर निकालनेके लिए तथा एक दूसरेके कष्टोंकी तरफ सजग बनाने तथा इस तरह उन्हें स्वर्गके सितारों तक पहुँचा देनेके लिए आये थे। वे सितारे आकाशमें अब भी चमक रहे थे, मानों संकेतसे बुला रहे हों। बापूकी अस्थियाँ गंगाजीमें बिखेर दी गयी थीं किन्तु यदि वे चले गये तो इससे क्या हुआ? हमलोग तो वहाँ थे, जवान, शक्ति-सम्पन्न तथा स्वाभिमानी, जो उनका झण्डा हाथमें सँभालकर आगे बढ़ सकते थे। जब हमारे सामने यह काम करनेके लिए मौजूद था तो हममेंसे कौन ऐसा था जो निराश हो जानेकी हिमाकत करता? एक बड़े नाटकका पटाक्षेप हो गया था, यह ठीक है किन्तु दूसरा शीघ्र ही शुरू होने जा रहा था। गांधीजीकी मृत्यु हो गयी थी किन्तु उनका भारत उनके बच्चोंके प्रयत्नसे बराबर जीवित रहेगा।